Bachelor of Arts (Sanskrit)

बैचलर ऑफ आर्ट्स (संस्कृत)

चतुर्थ सेमेस्टर - बी0ए0एस0एल (N)- 221

ज्योतिषशास्त्र के मूल सिद्धान्त

(Fundamentals of Jyotishashaastr)

Minor Vocational

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139

Toll Free : 1800 180 4025
Operator : 05946-286000
Admissions : 05946-286002
Book Distribution Unit : 05946-286001
Exam Section : 05946-286022
Fax : 05946-264232
Website : http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति **बी0ए0एस0एल (N)- 221**

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
प्रोफेसर ब्रजेश कुमार पाण्डेय, संकाय अध्यक्ष
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन केंद्र,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रोफेसर गिरीश चन्द्र पन्त,
संस्कृत विभागाध्यक्ष, जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रोफेसर जया तिवारी,
संस्कृत विभागाध्यक्षा, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

प्रोफेसर रेनू प्रकाश (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 देवेश कुमार मिश्र,
एसो0 प्रोफे0, इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
डॉ0 नीरज कुमार जोशी,
असि0 प्रोफे0-ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक एवं सम्पादन

डॉ0 नीरज कुमार जोशी
असि0 प्रोफे0-ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

मुख्य-सम्पादक

डॉ0 प्रभाकर पुरोहित
असि0 प्रोफे0-ए.सी.,ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

सह-सम्पादक

श्री राहुल पन्त
असि0 प्रोफे0-ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड इकाई संख्या
डॉ0 नीरज कुमार जोशी, असि0 प्रोफे0 ए.सी. संस्कृत विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	खण्ड 1 (इकाई 1)
श्री राहुल पन्त, असि0 प्रोफे0 ए.सी., संस्कृत विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	खण्ड 1 (इकाई 2)
डॉ0 विजय प्रसाद रतूड़ी, असि0 प्रोफे0 ए.सी., ज्योतिष विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	खण्ड 1 (इकाई 3) खण्ड 3 (इकाई 3) खण्ड 4 (इकाई 2)
डॉ0 रंजीत दुबे, असि0 प्रोफे0 ए.सी., ज्योतिष विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	खण्ड 1 (इकाई 4) खण्ड 4 (इकाई 1)
डॉ0 प्रमोद जोशी, असि0 प्रोफे0 ए.सी., ज्योतिष विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	खण्ड 2 (इकाई 1 एवं 3) खण्ड 3 (इकाई 1 एवं 2)
डॉ0 प्रभाकर पुराहित,	खण्ड 2 (इकाई 2 एवं 4)

असि0 प्रोफे0 एं.सी., ज्योतिष विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

खण्ड 4 (इकाई 3 एवं 4)

प्रकाशक: (उ0 मु0 वि0, हल्द्वानी) -263139

कॉपीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

पुस्तक का शीर्षक- ज्योतिषशास्त्र के मूल सिद्धान्त : BASL (N) 221

प्रकाशन वर्ष : 2025

ISBN No.

मुद्रक:

नोट:- यह पुस्तक छात्र हित में शीघ्रता के कारण, प्रकाशित की गयी है। संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण का प्रकाशन पाठ्यक्रम के पूर्ण लेखन व सम्पादन के पश्चात् किया जायेगा। इसका उपयोग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना अन्यत्र किसी भी रूप में नहीं किया जा सकता।

अनुक्रम

खण्ड- एक (Section-A) ज्योतिषशास्त्र का परिचय	**पृष्ठ संख्या 01-04**
इकाई-1 ज्योतिषशास्त्र का परिचय उद्भव एवं विकास	05-21
इकाई-2 ज्योतिषशास्त्र के प्रमुख आचार्य एवं ग्रन्थ	22-34
इकाई-3 राशि एवं ग्रह परिचय	35-47
इकाई-4 भाव एवं भावेश फल विचार	48-76
खण्ड- दो (Section-B) ज्योतिषशास्त्र : मुहूर्त विचार	**पृष्ठ संख्या 77**
इकाई-1 पञ्चांग परिचय	78-89
इकाई-2 मुहूर्त की परिभाषा एवं आवश्यकता	90-103
इकाई-3 विविध मुहुर्त विचार	104-116
इकाई-4 तिथि एवं नक्षत्र संज्ञा विचार	117-129
खण्ड- तीन (Section-C) ज्योतिषशास्त्र : मेलापक विचार	**पृष्ठ संख्या 130**
इकाई-1 अष्टकूट परिचय	131-144
इकाई-2 विवाह प्रकार एवं गुण दोष विचार	145-156
इकाई-3 मांगलिक विचार	157-168
खण्ड- चार (Section-D) ज्योतिषशास्त्र:गोचरफल विचार	**पृष्ठ संख्या 169**
इकाई-1 गोचर फल विचार	170-182
इकाई-2 शनि की साढेसाती एवं ढैय्या फल विचार	183-197
इकाई-3 चन्द्र बल विचार	
इकाई-4 दिक्शूल विचार	

खण्ड- एक (Section-A)
ज्योतिषशास्त्र का परिचय

इकाई-1 ज्योतिषशास्त्र का परिचय उद्भव एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 ज्योतिषशास्त्र का ऐतिहासिक क्रम
1.3.1 ज्योतिषशास्त्र का परिचय
1.4 ज्योतिषशास्त्र का उद्भव
1.5 ज्योतिषशास्त्र का विकास एवं काल विभाजन
1.6 ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक
1.7 ज्योतिषशास्त्र के भेद
1.8 सारांश
1.9 पारिभाषिक शब्दावली
1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों !

स्नातक चतुर्थ सेमेस्टर 'ज्योतिषशास्त्र के मूल सिद्धान्त' नामक व्यावसायिक पाठ्यक्रम के अन्तर्गत 'ज्योतिषशास्त्र का परिचय' नामक प्रथम खण्ड की यह प्रथम इकाई है। वेद के छः अंग हैं- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द एवं ज्योतिष। वेद के चक्षुरूपी अंग को आचार्यों द्वारा ज्योतिषशास्त्र की संज्ञा प्रदान की गयी है। भास्कराचार्य ने सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में ज्योतिष को परिभाषित करते हुए लिखा है कि - ज्योतिष वेद का निर्मल चक्षु है, जो दोषरहित है और इसके ज्ञान के अभाव में समस्त वेद प्रतिपाद्य विषय जैसे- श्रौत, स्मार्त यज्ञादि क्रिया की सिद्धि नहीं हो सकती। भारत देश के अलौकिक बुद्धिमान, महान तपस्वी व त्रिकालदर्शी महर्षियों ने अपने तपोबल के आधार पर आम जनमानस के लाभार्थ जो अनेक शास्त्र निर्माण किये, उनमें ज्योतिषशास्त्र का स्थान सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि सृष्टि के प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति, प्रगति व लयादि कालाधीन है और उस काल का सम्पूर्ण वर्णन तथा शुभाशुभ परिणाम आकाशस्थ ग्रहों की गति व स्थिति पर निर्भर है। इन्हीं ग्रहों की शुभाशुभ स्थितियों से जगत के प्राणियों का सुख दुःख, हानि-लाभ, जीवन-मरण पूर्णरूप से संबंधित है। अतः ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान मानव के जीवन में घटित होने वाली शुभाशुभ घटनाओं को जानने के लिये अधिक महत्वपूर्ण है। ज्योतिषशास्त्र का विकास मानव जीवन के विकास के साथ ही हुआ। मनुष्य स्वभावतः जिज्ञासु होता है। इस जिज्ञासा के फलस्वरूप वह प्रत्येक बात की गहराई में जाना चाहता है वह जानना चाहता है कि कब? क्यों? और कैसे? जगत् का समस्त विकास इसी जिज्ञासा का परिणाम है। मानव ने जब कभी आकाश की ओर दृष्टि डाली होगी तब उसके मस्तिष्क में यह उत्कण्ठा उत्पन्न हुई होगी कि ये तारे, ग्रह, नक्षत्र क्या वस्तु हैं ? तारे टूटकर क्यों गिरते हैं ? सूर्य प्रतिदिन पूर्व से ही क्यों उदित होता है तथा ऋतुओं का आगमन क्रमानुसार ही क्यों होता है ? आकाशीय घटनाएँ मानव को आकर्षित करती रही हैं। ज्योतिषशास्त्र की उत्पत्ति इसी आकर्षण का परिणाम है। आप लोगों को ज्योतिषशास्त्र के प्रति आकर्षण एवं जिज्ञासा का भाव होने के कारण ही आप इस शास्त्र के अध्ययन में प्रवृत्त हुए हैं। प्रस्तुत इकाई 'ज्योतिष शास्त्र का परिचय' नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। सामान्यतया आकाश में स्थित ग्रह, नक्षत्रादि पिण्डों की गति, स्थिति एवं उसके प्रभावादि निरूपण का अध्ययन हम जिस शास्त्र के अन्तर्गत करते हैं, उसे ज्योतिषशास्त्र कहा जाता है। भारतीय वैदिक सनातन परम्परा में ज्योतिषशास्त्र को सर्वविद्यामूलक वेद का अंग होने के कारण 'वेदांग' कहा गया है। इन्हीं वेदांगों को 'शास्त्र' भी कहा जाता है। यह शास्त्र हमारे प्राचीन ऋषियों की देन हैं। कालनियामक होने के कारण इसे कालशास्त्र भी कहा जाता है।इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप ज्योतिषशास्त्र से परिचित हो सकेंगे तथा उसके मूलभूत विषयों को समझने में समर्थ हो सकेंगे।

इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकेंगे कि ज्योतिषशास्त्र का उद्भव किस प्रकार हुआ। साथ ही ज्योतिषशास्त्र का विकास क्रम के विषय में विस्तार से विश्लेषण कर सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- ज्योतिष किसे कहते है यह जान सकेंगे।
- ज्योतिषशास्त्र के ऐतिहासिक क्रम को जान सकेंगे।

- ज्योतिषशास्त्र के प्रमुख स्कन्धों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लेंगे।
- ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तकों के सन्दर्भ में ज्ञान जानेंगे।
- ज्योतिषशास्त्र के इतिहास का संक्षिप्त परिचय प्रदान कर सकेंगे।
- ज्योतिषशास्त्र की उपयोगिता को प्रस्तुत कर सकेंगे।

1.3 ज्योतिषशास्त्र का ऐतिहासिक क्रम

1.3.1 ज्योतिषशास्त्र का परिचय

संस्कृत साहित्य भारतीयों की अमूल्य निधि है। यह जितना व्यापक है उतना ही व्यावहारिक भी। इस पुण्य भारत भूमि में ही सर्वप्रथम ज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ, जिसके प्रमाण स्वरूप विश्व के आदि ज्ञान से परिपूर्ण वेद मिलते हैं। सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा इस जगत् के पितामह हैं, जिन्होंने यज्ञ साध्न निमित्तार्थ अपने चारों मुखों से चारों वेदों का निर्माण किया, अतः वेद ही विद्या के मूल आधर हैं। वेदों की गूढार्थ युक्तता तथा दुर्बोधगम्यता के कारण ही षड्वेदागें की उत्पत्ति हुई, यह वेदांग ही वेदों के यज्ञात्मक स्वरूप हैं। इसी सिद्धान्त के लिए सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा ने कालावबोधक ज्योतिषशास्त्र की रचना की तथा नारद जी को इसका ज्ञान दिया। नारद जी ने इस शास्त्र के महत्त्व को अंगीकृत करके तीनों लोकों में प्रसारित किया—

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां चयः।
ज्योतिषामयनं चैव, वेदागनि षडेव तु।।
छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथपठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।।

इन षडगें में भी व्यवहारिक दृष्टि से परम उपयोगी, प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष की अनुभूति कराने वाला शास्त्रा ज्योतिषशास्त्रा सभी प्रकार से अपनी विलक्षणता, उपस्थितिद्ध को दर्शाता है। जैसा कि भास्कराचार्य ने कहा है—

वेद चक्षुः किलेदंस्मृतं
ज्योतिषं मुख्यता चाग्मध्येऽस्य ते नोच्यते,
संयुतोऽपीतरैः कर्ण नासादिभिः
चक्षुषांगेन हीनो न किञ्चित्कारः।।

जिस प्रकार शरीर के मुख, नेत्र, नासिका, कर्ण, कर और पाद आदि छः प्रमुख अग् होते हैं, ठीक उसी प्रकार वेदों के भी छः अंग व्याकरण, ज्योतिष, निरूक्त, कल्प, शिक्षा और छन्द स्वीकार किये जाते हैं। इस षड्गों में ज्योतिष को नेत्र कहा है 'ज्योतिषामयनं चक्षुः' नेत्रा शब्द 'निःप्रापणे' धतु से निष्पन्न होता है। वह इन्द्रिय जो सामने विद्यमान वस्तु या दृश्य को आत्मसात्कर मन-मस्तिष्क को उसके स्वरूप, रग्, गुण आदि से यथावत् परिचित कराये। नारदीयम् में सिद्धान्त, संहिता व होरा इन तीनों में विभाजित ज्योतिषशास्त्र को वेदभगवान् का निर्मल (पवित्र) नेत्र कहा है—

सिद्धान्त संहिता होरा रूप स्कन्ध् त्रयात्मकम्।
वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिः शास्त्रमकल्मषम्।।

वेदाग् ज्योतिष नामक बहुचर्चित व प्राचीन ग्रन्थ हमें प्राप्त होता हैं। जिसके रचनाकार ने ज्योतिष को काल विधयक शास्त्र बतलाया है, साथ में कहा है कि जो ज्योतिषशास्त्र को जानता है वह यज्ञ को भी जानता है—

तस्मादिदं कालविधानं शास्त्रंयो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्।।

वही सिद्धान्तशिरोमणि में यज्ञ विधन के लिए ज्योतिष के महत्त्व को शिरोधर्य माना है—

वेदास्तावद् यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञाः
प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण।
शस्त्रादस्मात् कालाबोधे यतः स्यात्
वेदांगत्वं ज्योतिषस्याक्त मस्मात्।।

ज्योतिष को सभी वेदांगों में शिरोमणि कहा गया है। जैसे- मयूरों के शिर में शिखा, सूर्य के शिर में मणि वैसे ही वेदाग्शास्त्रों में ज्योतिष शिरोभूषण है। इसके महत्व को वेदाग् ज्योतिष में इस प्रकार कहा गया है-

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदांगस्त्रणां ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम्।।

यह ज्योतिषशास्त्र अर्थकारी होने के कारण ही यश, पुण्य और मोक्ष को भी देती है। जो इसे जानता है वह सब कुछ जानता है—

यो ज्योतिषं वेद स वेद सर्वम्।।

शब्दकल्पद्रुम में ज्योतिषी के लिए कालज्ञ, त्रिकालवित्, त्रिकालदर्शी व सर्वज्ञ शब्दों का प्रयोग किया गया है। स्वयं सायणाचार्य ने ऋग्वेदभाष्य भूमिका में लिखा है कि ज्योतिष का मुख्य प्रयोजन अनुष्ठे यज्ञ के उचित काल का संशोधन है। उदाहरणार्थ कृतिका नक्षत्र में अग्नि का आधान करें— **कृत्तिकास्वाग्निमाधीत।।** कृत्तिका नक्षत्र में अग्नि का आधर ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान के बिना सम्भव नहीं। इसी प्रकार से एकाष्टका में दीक्षा होवें, फाल्गुन पूर्णमासी में दीक्षित होवें, इत्यादि श्रुति वचन मिलते हैं— **एकाष्टकामां दीक्षेरन् फाल्गुनीपूर्णमासे दीक्षेरन्।।** ज्योतिष के द्वारा निर्दिष्ट शुभ मुहूर्त्तों में कृषि, व्यापारादि कार्यों को करने से धन प्राप्त होता है। अतः सभी वैदिक एवं लौकिक व्यवहारों की सार्थकता, सफलता हेतु ज्योतिष का ज्ञान अनिवार्य है—

अप्रत्यक्षाणिशास्त्राणि, विवादस्तेषु केवलम्।
प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं, चन्दार्को यत्र साक्षिणौ।।

संसार में जितने भी शास्त्र हैं वे केवल विवाद (शास्त्रार्थ) विषयक हैं, अप्रत्यक्ष हैं, परन्तु ज्योतिष विज्ञान ही प्रत्यक्ष शास्त्र है, जिसकी साक्षी सूर्य और चन्द्रमा घूम-घूम कर दे रहे हैं। सूर्य, चन्द्रग्रहण, प्रत्येक दिन का सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, चन्द्रास्त ग्रहों की शृगोन्नति वेध, गति, उदय-अस्त इस शास्त्र की सत्यता एवं सार्थकता का प्रत्यक्ष प्रमाण है—

ज्योतिश्चक्रे तु लोकस्य, सर्वस्योक्तं शुभाशुभम्
ज्योतिर्ज्ञानं तु यो वेद, स याति परमां गतिम्।।

ज्योतिष चक्र ने हमारे संसार के लिए शुभ व अशुभ सारे काल बतलाये हैं, जो ज्योतिष के दिव्य ज्ञान को जानता है। वह जन्म-मरण से मुक्त होकर परमगति को प्राप्त करता है। संसार में

ज्ञान-विज्ञान की जितनी भी विधाएँ हैं, वे मनुष्य को ईश्वर की और नहीं मोड़ती, उसे परम गति का आश्वासन नहीं देतीं, परन्तु ज्योतिष अपने अध्येता को परम गति प्राप्त कराता है—

अर्थाजने सहाय पुरुशाणामादर्णवे पोतः।
यात्रासमये मन्त्री जातकमपहाय नास्त्यपरः।।

ज्योतिष वस्तुतः सूचनाओं और सम्भावनाओं का शास्त्र है। इसके उपयोग व महत्त्व को सही ढंग से समझने पर मानव जीवन और अधिक सफल व सार्थक हो सकता है। ज्योतिष का उपयोग मनुष्य के दैनिक जीवन व दिनचर्या से जुड़ा हुआ है, क्योंकि घड़ी की सुई के साथ-साथ चल रहा मानव जीवन का प्रत्येक पल ज्योतिष से जुड़ा हुआ है। यह तो मानव मस्तिष्क एवं बुद्धि की विलक्षणता है कि आप किस विज्ञान से क्या व कितना ग्रहण कर पाते हैं, क्योंकि ज्योतिष वह दिव्य विज्ञान है जो भूत, भविष्य तथा वर्तमान तीनों कालों को जानने समझने की कला सिखाता है। प्रकृति के गूढ़ रहस्यों को उद्घाटित करता है तथा इस देव विद्या के माध्यम से हम मानवीय प्राणी के शुभाशुभ भविष्य को सवाँरने की क्षमता भी प्राप्त करते हैं।

वेदव्यास अपनी वाणी से ज्योतिषशास्त्र का महत्त्व प्रकट करते हुये कहते हैं कि-काष्ठ का बना सिंह एवं कागज पर सम्राट का चित्रा आकर्षक होते हुये भी निर्जीव होता है। ठीक उसी प्रकार से वेदों का अध्ययन कर लेने पर भी ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन किये बिना निर्वीर्य (निष्प्राण) कहलाता है—

यथा काष्टमयः सिंहो यथा चित्रामयो नृपः।
तथा वेदावधीऽपि ज्योतिषशास्त्रं विनाद्विजः।।

1.4 ज्योतिषशास्त्र का उद्भव

'ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्राम्' अर्थात् जिस शास्त्र में सूर्यादि ग्रहों का नक्षत्र गति, स्थिति परिभ्रमण तथा नियमों का निरीक्षण, परीक्षण व समीक्षण की विवेचना होती है वह ज्योतिष है अर्थात् ग्रह, नक्षत्र, तारादि ज्योतिः पिण्डों की गति स्थिति आदि का वर्णन करने वाले शास्त्र को ज्योतिष पद से जाना जाता है। ज्योतिष शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में कहा गया है।

ज्योतिष शब्द की व्युत्पत्ति 'द्युतेरिसिन्नादेश्चजः' इस सूत्र से की गयी है अर्थात् 'द्युत् दीप्तौ' द्योतने अर्थ में द्युत् धतु भ्वदिगणीय, आत्मनेपदी है, जिसका अर्थ है- चमकना, जगमगाना, प्रकाश करना, व्याख्या करना, समझना, अभिव्यक्त करना, सुभाषित करना। द्युत् धतु से इसिन् प्रत्यय तथा दकार को जकारादेश करके ज्योतिष या ज्योतिः शब्द बना, पुनः 'आर्शआदिभ्योऽच' से अच् प्रत्यय करके ज्योतिष अकारान्त शब्द निर्मित हुआ है, पुनः 'तदधिकृत्य कृतो ग्रन्थः' इस पाणिनीय सूत्र से अण् प्रत्यय करके ज्योतिष शब्द निष्पन्न होता है।

शब्दकल्पद्रुम के अनुसार 'ज्योतिष' ज्योतिर्मय सूर्यादि ग्रहों की गति इत्यादि को लेकर लिखा गया वेदांग शास्त्र विशेष है।

वाचस्पत्यम् के अनुसार सूर्यादि ग्रहों की गति को जानने वाले तथा ज्योतिषशास्त्र का विधिपूर्वक अध्ययन करने वाले व्यक्ति को 'ज्योतिर्विद' कहा है।

हलायुध कोष में ज्योतिषी के लिए सांवत्सर, गणक, दैवज्ञ, ज्योतिषिक, ज्योतिषी, मौहूर्तिक, साम्वत्सरिक शब्दों का प्रयोग हुआ है।

मेदिनी कोष के अनुसार 'ज्योतिष' सकारान्त नपुंसक लिंग 'नक्षत्र' अर्थ में तथा पुल्लिंग में अग्नि और प्रकाश अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतः नक्षत्रों की गति स्थिति परिभ्रमण और नियम को प्रतिपादित करने वाले शास्त्र को ज्योतिषशास्त्र के रूप में स्वीकार किया गया है।

1.5 ज्योतिषशास्त्र का विकास एवं काल विभाजन

ज्योतिषशास्त्र अपने मूल रूप में अत्यन्त प्राचीन है। इस शास्त्र की व्यापकता वेद मन्त्रों में विस्तृत रूप में मिलती है। अतः ज्योतिष का अस्तित्व भी वेदमन्त्रों के समान ही पुरातन प्राप्त होता है। काल वर्गीकरण की दृष्टि से ज्योतिषशास्त्र के इतिहास को निम्न युगों में विभक्त किया गया है-

1. अन्धकार काल	-	आदिकाल से 10000 ई0 पू0 पर्यन्त
2. उदयकाल	-	10001-500 ई0 पू0 पर्यन्त
3. आदिकाल	-	501-500 ई0 पू0 पर्यन्त
4. पूर्वमध्यकाल	-	501-1000 ई0 पर्यन्त
5. उत्तरमध्काल	-	1001-1600 ई0 पर्यन्त
6. आधुनिक काल	-	1601 से अद्यतन

मानव स्वभाव से ही अन्वेषक प्राणी है। जिज्ञासा मानव की मौलिक प्रवृत्तियों में समाहित है। मानव मात्रा के स्वभाव में निरन्तर कुछ न कुछ जानने की इच्छा होती है। अपनी इसी प्रकृति के कारण वह शास्त्रीय एवं व्यावहारिक ज्ञान द्वारा प्राप्त अनुभवों को ज्योतिष की कसौटी पर कसकर देखना चाहता है कि ज्योतिष क्या है ? मानव-जीवन में उसका क्या स्थान है ? मानव उसमें अध्कि अभिरूचि क्यों लेता है ? इसको जानने की क्या साध्ना है ? साध्न है-ज्योतिष विज्ञान। इस विज्ञान के अन्तर्गत उस समूची प्रक्रिया का प्रतिपादन आ जाता है जिससे मनुष्य के जीवन में आने वाले हर्ष-विषाद, हानि-लाभ, उत्थान-पतन आदि को पहले से ही जाना जा सकता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि मानव की जिज्ञासा ने ही ज्योतिषशास्त्र की उत्पत्ति की तथा चतुखदक व्याप्त रहस्यों की शृंखला को जानने के लिये प्रवृत्त किया।

जिज्ञासा ही ज्ञान की जन्मदात्री है। ग्रह नक्षत्र विषयक जिज्ञासा ही ज्योतिषशास्त्र के प्रादुर्भाव का हेतु है। व्यवहारिक रूप में मानव अनादिकाल से ही दिवस-रात्री, अयनादि विषय को स्वल्प रूप में जानता था। वह सूर्य, चन्द्रादि अन्य तारा गणों के वैशिष्ट्य को नही जानता था। फिर भी उनकी स्थिति को जानकर वह कोई भी कार्य हो उसमें ज्योतिषशास्त्र का चिन्तन अवश्य करता था। वही चिन्तन व अनुभव वैदिक संहिताओं में प्रस्पफुटित (अंकुरित) हुआ। उसके पश्चात् नवीन-नवीन अनुभवों से लौकिक ग्रन्थों में भी प्राप्त होने लगा। इस हेतु से ज्योतिषशास्त्र का विकास पाँच अवस्थाओं में प्राप्त होता है—

1. प्राग्वैदिक काल
2. वैदिक संहिता काल
3. वेदाग् काल
4. सिद्धान्त काल
5. आधुनिक काल

1. प्राग्वैदिक कालः- वेद मंत्रों के संग्रह के पूर्व जो काल मिलता है वह प्राग्वैदिक काल के रूप में जाना जाता है। वैदिक संहिताओं में ज्योतिष का स्वरूप जिस रूप में मिलता है, उससे यह जाना जा सकता है कि इस से पूर्व भी ज्योतिष का स्वरूप कुछ न कुछ रूप में सुनिश्चित था।

2. वैदिक संहिता कालः- वैदिक संहिता काल ऋग्वेद काल से आरम्भ होकर लगधचार्य पर्यन्त मिलता है। वैदिक काल में सामवेद को छोड़कर वेदत्रायी में पृथक-पृथक रूप में ज्योतिष मिलता है। शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने वेदांग ज्योतिष का समय 1400 ई0 पू0 माना है। अध्ययन की सरलता हेतु वेदत्रयी के आधर पर तीन प्रकार के ज्योतिष ग्रन्थों की मीमांसा रख सकते हैं-

(क) ऋग्वेदीय ज्योतिष	-	36 पद्यों में
(ख) यजुर्वेदीय ज्योतिष	-	39 पद्यों में
(ग) अथर्ववेदीय ज्योतिष	-	162 पद्यों में

3. वेदांग कालः- वेदांग काल में कल्पसूत्रों के साथ-साथ निरूक्त, पाणिनीय व्याकरण, स्मृति एवं महाभारत में वखणत ज्योतिषीय पद्धतियों का वर्णन मिलता है। वेदांग काल का प्रारम्भ वेदांग ज्योतिष से पूर्व मध्यकाल से प्रारम्भ होकर आर्यभट्ट पर्यन्त तक रहता है।

4. सिद्धान्त कालः- सिद्धान्त काल में पञ्चसिद्धान्तों का विवरण मिलता है। 'पौलिशरोमकवशिष्ठसौरपैतामहास्तुपंचसिद्धान्ताः' पितामहसिद्धान्त, वशिष्ठ- सिद्धान्त, रोमनसिद्धान्त, पुलिशसिद्धान्त, सूर्यसिद्धान्तों के साथ वर्तमान सिद्धान्त पञ्चकों में सूर्यसिद्धान्त, सोमसिद्धान्त, वशिष्ठसिद्धान्त, रोमनसिद्धान्त, शाकल्योक्त ब्रह्मसिद्धान्त का वर्णन मिलता है । इसके साथ ही साथ आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, पद्मनाभ ज्ञानराज, ढुंढिराज आदि अनेक विद्वानों के ज्योतिषीय विवरणों का वर्णन इसी काल में समाहित है।

5. आधुनिक कालः- आधुनिक काल में भारतीय ज्योतिष की पूर्वगत प्रगति मध्ययुग में आकर अवरूद्ध हो गयी थी। उसका कारण यवन साम्राज्य की प्रतिकूल परिस्थितियाँ थीं। जिनके आघात और आक्रमणों से भारतीय ज्योतिषियों की सारी कामनाएँ एवं सारे उत्साह जाते रहे। यद्यपि कुछ हिन्दु, मुस्लिम विद्वानों ने इस युग में फलित ग्रन्थों की रचनाएँ की किन्तु आकाश निरीक्षण की प्रथा उठ जाने से वास्तविक ज्योतिष ग्रन्थों का विकास न हो सका। सन् 1780 में राजा जयसिंह का ध्यान ज्योतिष की और गया और उन्होनें काशी, जयपुर, दिल्ली में वेधशालाएँ बनवाई, जिनमें पत्थरों व ऊँची और विशाल दीवारों के रूप में बड़े-बड़े यंत्र बनवाये। इस प्रकार भारतीय ज्योतिष के आधर पर नवीन सारिणियाँ तैयार की गयी। सन् 1857 के पश्चात् तो नवीन आविष्कृत विज्ञानों का प्रभाव भारत के उफपर विशेष रूप से पड़ा। फलतः अंग्रेजी भाषा के जानकार संस्कृत के विद्वानों ने इस भाषा के नवीन गणित ग्रन्थों का अनुवाद संस्कृत में करके ज्योतिष की श्री वृद्धि की। त्रिकोणमिति के प्रणेता बापूदेव, नीलम्बर, सुधकर द्विवेदी व शंकर बालकृष्ण ने इस और विशेष प्रयत्न किया जिससे ज्योतिष जगत को नये आयाम प्राप्त हुये।

1.6 ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक

संस्कृत वाङ्मय में ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान गुरु-शिष्य परम्परा के द्वारा या श्रुत परम्परा से प्राप्त माना जाता है। इस प्राचीन वैज्ञानिकशास्त्र की उत्पत्ति ब्रह्मा जी के द्वारा हुई है। ऐसा माना

जाता है कि ब्रह्मा जी ने सर्वप्रथम नारद जी को ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान प्रदान किया तथा नारद जी ने इस लोक में ज्योतिषशास्त्र का प्रचार-प्रसार किया। मतान्तर से ऐसा भी स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है कि इस शास्त्रा का ज्ञान भगवान् सूर्य ने मयूर को प्रदान किया। आचार्य कश्यप अष्टादश आचार्यों को ज्योतिष का प्रवर्तक मानते हैं जो इस प्रकार है—

सूर्य पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरंगिराः।।
लोमशः पौलिशश्च च्यवनो यवनो भृगुः।
शौनकोऽष्टादशाश्चैते ज्योतिः शास्त्र प्रवर्तकाः।।

पराशर के मतानुसार ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक उन्नीस हैं—

विश्वसृड् नारदो व्यासो वशिष्ठोऽत्रिः पराशरः।
लोमशो यवनः सूर्यश्च्यवनः कश्यपो भृगुः।।
पुलस्त्यो मनुराचार्यः पौलिशः शोनकोऽगिंरा।
गर्गो मरीचिरित्येते ज्ञेया ज्योतिः प्रवर्तकाः।।

नारद के मतानुसार ज्योतिषशास्त्रा के प्रवर्तक इस प्रकार हैं—

ब्रह्माचार्यो वसिष्ठोऽत्रिर्मनुः पौलस्त्यरोमशौ।
मरीचिरंगिरा व्यासो नारदः शोनको भृगुः।।
च्यवनो यवनो गर्गः कश्यपश्च पराशरः।
अष्टादशैते गम्भीराः ज्योतिः शास्त्रप्रवर्तकाः।।

1.7 ज्योतिषशास्त्र के भेद

सामान्यतः ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त-संहिता-होरा रूपी तीन विभाग प्राचीन काल से उपस्थापित किये गए हैं। वराहमिहिर ने 'ज्योतिषशास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्टितम्' कहते हुए स्कन्ध् त्रयात्मक ज्योतिषशास्त्र को अनेक भेदों से युक्त माना है। कुछ आचार्यों ने केरलि एवं शकुन का पृथक ग्रहण करते हुए इस शास्त्र को पंचस्कन्धत्मक माना है—

पञ्चस्कमिदं शास्त्रं होरागणितसंहिताः।
कैरलिः शकुनश्चेति ज्योतिःशास्त्र मुदीरितम्।।

कुछ विद्वानों ने ज्योतिषशास्त्र को पहले-पहल गणित और फलित, इन दो रूपों में स्वीकार किया बाद में वह स्कंधत्रय के नाम से कहा जाने लगा, जिनको सिद्धान्त, संहिता और होरा इन तीन विभागों में विभाजित किया गया और संप्रति उसका पञ्चरूपात्मक होरा, गणित, संहिता, प्रश्न और निमित्त में विकास हुआ। आज ज्योतिष का क्षेत्र इतना बढ़ गया है कि, अन्तरिक्षविज्ञान-मनोविज्ञान-वास्तुविज्ञान-वृष्टिविज्ञान-सृष्टिविज्ञान-भूगर्भविज्ञान-रत्नविज्ञान-पदार्थविज्ञान-भौतिकविज्ञान मौसमविज्ञान-चिकित्साविज्ञान आदि अनेक विषयों तक उसका प्रवेश है।

मुख्यतः ज्योतिषशास्त्र को सिद्धान्त-संहिता-होरा इन तीन भेदों में स्वीकार किया गया है। ये तीन स्कन्ध ही ज्योतिष के 'त्रिस्कंध्' भेद कहलाते हैं। इस सन्दर्भ में वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में कहा है—

ज्योतिः शास्त्रमनेकभेद विषयं स्कन्धत्रयाधिष्टितम्।
तत्कात्स्न्योंपनयस्य नाम मुनिभिः संकीर्त्यते संहिता।।

स्कन्धेऽस्मिन गणितेन या ग्रहगतिस्तन्त्र भिधानस्त्वसौ।
होरान्योऽग्विनिश्चयश्च कथितः स्कन्धस्तृतीयोपरः।।

नारदसंहिता में श्री नारद कहते हैं-

सिद्धान्त संहिता होरा रूपं स्कन्ध त्रयात्मकम्।
वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिः शास्त्रमनुत्तमम।।

आचार्य पाराशर के अनुसार भी ज्योतिष त्रिस्कन्ध रूप में प्रतिपादित है—

भगवन् परमं पुण्यं गुह्यं वेदांगमुत्तमम्।
त्रिस्कन्ध ज्योतिषं होरा गणितं संहितेति च।।

आचार्य बृहस्पति का मत इस प्रकार है—

स्कन्धत्रयात्मकं शास्त्रमाद्यं सिद्धान्तसंज्ञितम्।
द्वितीयं जातक स्कन्धं तृतीय संहिताह्वयम्।।

नारदपुराण में भी ज्योतिष को त्रिस्कन्धात्मक रूप में स्वीकार किया है—

त्रिस्कन्धं ज्योतिषशास्त्रं चतुर्लक्षणमुदाहृयम्।
गणितं जातकं विप्र संहिता स्कन्ध् संज्ञितम्।।

मुख्यतः सिद्धान्त, संहिता, होरा स्कन्ध के अन्तर्गत ही ज्योतिष के सभी विषय समाहित हो जाते हैं। अतः प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीन काल तक आचार्यों ने ज्योतिष के तीन स्कन्धें को ही परिगणित किया है-

तालिका के माध्यम से स्कन्धय विभाजन को इस प्रकार से जान सकते हैं।

<table>
<tr><td colspan="6">वेदांग</td></tr>
<tr><td>1. शिक्षा</td><td>2. कल्प</td><td>3. व्याकरण</td><td>4. निरूक्त</td><td>5. छन्द</td><td>6. ज्योतिष</td></tr>
<tr><td colspan="5"></td><td>6.1सिद्धान्तस्कन्ध
6.2 संहितास्कन्ध
6.3 होरास्कन्ध</td></tr>
<tr><td colspan="6">6.3 होरास्कन्ध</td></tr>
<tr><td colspan="6">1. जातक 2. ताजिक 3. मुहूर्त्त 4. प्रश्न 5. शकुन</td></tr>
</table>

1. सिद्धान्त स्कन्ध—

सिद्धान्त खगोल विज्ञान है। इसमें गणित के नियम काल गणना का सूक्ष्म रूप से निरुपण किया गया जाता है। इसके अतिरिक्त ग्रह-गतियों का सूक्ष्म रूप में निरूपण, ग्रह-नक्षत्रा की स्थिति तथा अक्षांश-रेखांश के आधर पर उनकी सही स्थिति ज्ञात करने को सिद्धान्त कहा गया है। हलायुध कोश के अनुसार 'सिद्धःवादिप्रतिवादिभ्यां निर्णीतः अन्तः अर्थो यस्य' अर्थात् वादि-प्रतिवादि द्वारा निर्णीत सत्य ही सिद्धान्त कहलाता है। अमरकोष के अनुसार जिस विषय का अन्त निश्चित रूप से सिद्ध हो, वह विषय सिद्धान्त की श्रेणी में आता है।

आकाशीय ग्रह नक्षत्रादि विज्ञान के ज्ञान के लिए सर्वप्रथम गणितशास्त्र की आवश्यकता होती है। गणित को ही विज्ञान की आधर शिला माना है। क्योंकि गणित के ज्ञान के बिना किसी भी विकसित विज्ञान के विकास का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। यद्यपि

गणितशास्त्र के अनेक भेद हैं। परन्तु वे सभी भेद व्यक्ताव्यक्त रूप में ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त स्कन्ध् में ही समाहित हैं-

द्विविधगणितमुक्तं व्यक्तमव्यक्तयुक्तम्।
तदवगमननिष्ठः शब्दशास्त्रे पटिष्ठः।।
यदिभवति तदेदं ज्योतिषं भूरिभेदं।
प्रपठितुमधिकारी सोऽन्यथा नामधरी।

पुनः गणितशास्त्र की प्रशंसा करते हुए भास्कराचार्य ने कहा है—

ज्योतिःशास्त्रफलं पुराणगणकैरादेशः इत्युच्यते।
नूनं लग्नबलाश्रितः पुनरयं तत् स्पष्टखेटाश्रयम्।।
तेगोलाश्रयिणोऽन्तरेण गणितं गोलोऽपि न ज्ञायते।
तस्माद्यो गणितं न वेत्ति सकलं गोलादिकं ज्ञास्यति।।

काल गणना के विषय में भास्कराचार्य ने कहा है—

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलनामानप्रभेदः क्रमा-
च्चारश्चद्युषदां द्विध च गणितं प्रश्नस्तथा सोतराः।
भूमिष्णयग्रहसंस्थितैश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्रा गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः।।

अर्थात् ज्योतिषशास्त्र के जिस स्कन्ध के अन्तर्गत सूक्ष्मतम से महत्तम काल की गणना तथा मानों के भेद, ग्रहों के चार, द्विविध् गणित (व्यक्त, अव्यक्त) ग्रहों से सम्बन्धित सभी प्रश्नों के उत्तर, ग्रह नक्षत्रों की गति-स्थिति एवं यन्त्र परिचय आदि वर्णित हो, उसे सिद्धान्त स्कन्ध कहते हैं। इसके अतिरिक्त सिद्धान्त में प्रमेय-विवरण, सृष्टिविचार, खगोल एवं भूगोल-विषयक चिन्तन, ग्रह-नक्षत्रों के वेध-यन्त्रों के विज्ञान का विचार, ग्रहण-विचार, इत्यादि विषयों का सैद्धान्तिक एवं गणितीय विचार किया जाता है।

सिद्धान्त स्कन्ध के प्रसिद्ध ग्रन्थ—

1. सूर्यसिद्धान्त	-	'आर्ष'
2. आर्यभट्टीय	-	आर्यभट्ट
3. पञ्चसिद्धन्तिका	-	वराहमिहिर
4. ब्रह्मस्पफुटसिद्धान्त	-	ब्रह्मगुप्त
5. राजमृगांकम्	-	भोज
6. कारणप्रकाश	-	ब्रह्मदेव
7. सिद्धान्तशिरोमणि	-	भास्कराचार्य
8. ग्रहलाघवम्	-	गणेशदैवज्ञ
9. सिद्धान्ततत्वविवेक	-	कमलाकर
10. लीलावती	-	भास्कराचार्य
11. सिद्धान्तशेखर	-	श्रीपति

2. संहितास्कन्ध—

संहिता शब्द का अर्थ कोश ग्रन्थों में संचय-संयोग-मेल या संग्रहित करना है। संहिता शब्द वेदों की क्रमवद्ध मन्त्रणा के लिए प्रयुक्त होता था। हिन्दू धर्म कोश के अनुसार आचार-

नियम सम्बन्धी सुसंगृहीत साहित्यिक सामग्री, धर्मशास्त्र ग्रन्थों व स्मृतियों को भी संहिता कहा जाने लगा।

संहिता शब्द की व्युत्पत्ति-सम्-सम्यक प्रकारेण, धा-डुधञ्-धारणे धातो निष्ठायां क्त प्रत्यये 'दधतेहि' इति सूत्रेण हि इत्यादेशे सम+हि+क्त संहित् पदात् स्त्रीलिंगविवक्षायाम् 'अजाद्यतष्टाप' अनेनसूत्रेण टाप् प्रत्यये कृते संहिता शब्द-निष्पद्यते। 'सम्यक् हितं प्रतिपाद्यं यस्याः सा' संहिता 'बहुब्रीहि समास' अर्थात् सम्यक् हितकर शब्द ही संहिता है। अतः जो ग्रन्थ सामाजिक हितपरक लोकहितपरक, विचारों का प्रतिपादन करे वह संहिता कहलाती है। संहितास्कन्ध् में ग्रह नक्षत्रों के द्वारा भूपृष्ठ पर पड़ने वाले सामूहिक प्रभाव का विवेचन किया जाता है। इस स्कन्ध को भौतिक एवं वैश्विक ज्योतिष भी कहा जाता है। इस सन्दर्भ में वराहमिहिर ने लिखा है-

ज्योतिः शास्त्रमनेकभेद विषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितम्।
ततकात्स्न्योपनयस्य नाम मुनिभिः संकीर्त्यते संहिता।।

अर्थात् सिद्धान्त और होरास्कन्धों का संक्षेप में संक्षेप विवेचन ही संहिता है। भगवान गर्गाचार्य का मत इस सन्दर्भ में इस प्रकार है—

गणितं जातकं शाखां यो वेति द्विजपुड्व।
त्रिस्कन्धे विनिर्दिष्टः संहिता पारगश्च सः।।

वराहमिहिर ने संहिता की प्रशंसा करते हुए कहा है कि निःशेष तत्वार्थ को जानने वाला दैव चिन्तक होता है—

संहितापारगश्च दैवचिन्तकोभवति।।

संहिता स्कन्ध में ग्रहों की गति, ग्रहयुति मेघलक्षण, वृष्टि-विचार, उल्का-विचार, भूकम्प-विचार, जलशोधन विभिन्न शकुनों का विचार, वास्तुविद्या तथा ग्रहणादि का समस्त चराचर जगत् पर पड़ने वाला सामूहिक प्रभाव इत्यादि का विचार किया जाता है। अतः जो ग्रन्थ सामाजिक हितपरक लोकहितपरक, विचारों का प्रतिपादन करे वह संहिता है। संहिता के विषयों को भी तीन प्रकार से विभाजित किया जा सकता है। यथा—

1. पञ्चाड्गविषयक
2. राष्टविषयक
3. व्यक्तिविषयक

1. पंचांग विषयक— इसके अन्तर्गत तिथि-वार-नक्षत्र-योग-करण के द्वारा समष्टि चिन्तन पञ्चाग् विषयक संहिता के विषय होते हैं।

2. राष्ट्रविषयक— इसके अन्तर्गत प्राकृतिक उत्पात भूकम्प, वर्षा इत्यादि विषयों का चिन्तन किया जाता है।

3. व्यक्ति विषयक— इसके अन्तर्गत यात्रा-शकुन, स्त्री-पुरुष लक्षण का चिन्तन किया जाता है।

संहिता स्कन्ध के प्रमुख ग्रन्थ—

1. नारदसंहिता	2. वसिष्ठसंहिता
3. गर्गसंहिता	4. भृगुसंहिता
5. वादरायणसंहिता	6. गौतमसंहिता
7. भद्रबाहुसंहिता	8. सूर्यसंहिता

9. अरूणसंहिता 10. बृहत्संहिता
11. कालकसंहिता

3. होरास्कन्ध—

होराशास्त्र ज्योतिषशास्त्र का प्रमुख अंग है। मानव-जीवन के जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त सभी प्रश्नों का समाधन जन्मकालिक एवं प्रश्नकालिक ग्रह स्थिति के आधर पर होरास्कन्ध के द्वारा किया जाता है। इस सन्दर्भ में कल्याण वर्म ने लिखा है—

विधता लिखितायाऽसौ ललाटेऽक्षरमालिका।
दैवज्ञस्तां पठेद्व्यक्तं होरा निर्मल चक्षुषा।।

होराशब्द की व्युत्पत्ति अहोरात्र से होती है, जो कि दिन सूचक शब्द है। अहोरात्र के पूर्व व पर वर्ण को लोप करने से 'होरा' शब्द बनता है। होरा शब्द व्याकरण के 'हुल' संवरणार्थक धतु से बनता है। मेदनीय कोश में इसे 'होरा तु लग्ने राश्यर्धे रेखाशास्त्रभिदोरपि' कहा गया है—

होरात्यहोरात्राविकल्पमेके वाञ्छन्ति पूर्वापरवर्णलोपात्।
कर्मार्जितं पूर्वभवे सदादि यत्तस्य पंक्ति समभिव्यनक्तिः।।
होरत्यहोरात्राविकल्पमेके वाञ्छन्ति पूर्वापरवर्ण लोपात्।
अहोरात्रस्य पूर्वान्त्यलोपाद्धोराऽवशिष्यते।।

होरा स्कन्ध् में मेषादि द्वादश राशियों, सत्ताईस नक्षत्रों एवं सूर्यादि नवग्रहों की परस्पर स्थिति-गति-दृष्टि योगसम्बन्धवशात् मानवमात्रा पर पड़ने वाले शुभाशुभ फल का पूर्ण विवरण समाहित है। अतः इसे जातकशास्त्र भी कहा जाता है—

जातकमिति प्रसिद्धं यल्लोके तदिहकीर्त्यते होरा।
अथवा दैवविमर्शन पर्यायः सल्वयं शब्द।।

आचार्य पराशर का मत इस प्रकार है—

अहोरात्रास्य पूर्वान्त्यलोपाद् होरावशिष्यते।।

आचार्यवराहमिहिर ने होराशास्त्र को कर्म सूचक शास्त्र कहा है—

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं कर्मणः तस्य पंक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव।।

अग्निपुराण में होरा शब्द, अंग्रेजी के (Hour) शब्द की टक्कर का है। 24 होराएँ एक दिन-रात में आधी रात के बराबर घूमती हैं—

चतुर्विंशतिवेलाभिरहोरात्रं प्रचक्षते।
पश्चिमादर्धरात्रादि होराणां विद्यते क्रमः।।

भावकुतूहलकार ने होराशास्त्र को शुभाशुभ कर्मपफल प्राप्ति सूचक शास्त्रा कहा है—

त्रिंशद्भागात्मकं लग्नं होरातस्यार्धमुच्यते।।

कल्याणवर्म ने लग्न या लग्नार्थ, राशेश्चार्ध(15 अंश) को होरा शब्द रूप में प्रस्तुत किया है—

कर्मपफललाभहेतुः चतुराः संवर्णयन्त्यन्ये।
होरेतिशास्त्र संज्ञा लग्नस्य तथार्धराशेश्च।।

आचार्य बलभद्र ने स्पस्ष्ट लिखा है- होराशास्त्र के उपदेश के अनाधिकारी, लोगों से ईर्ष्या रखने वाले व कुटिल व्यक्तियों, ज्योतिषियों से द्रोह रखने वाले, अल्पकाल तक रूचि रखने वाले, दुष्टात्मा और दुर्जन व्यक्ति के लिए इस शास्त्र को नहीं कहना चाहिए। इस प्रकार होराशास्त्र

का स्थान हमारे जीवन में प्रत्येक शुभाशुभ सूचनाओं को जानने में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। जैसे—

अर्थार्जने सहायः पुरुशाणामापदर्ण वे पोतः।
यात्रासमये मन्त्री जातक मपहाय नास्त्यपरः।।

अतः होराशास्त्र वह शास्त्र है। जिसके माध्यम से मनुष्य भूत, वर्तमान, भविष्य के शुभाशुभ प्रभावों को जानने का प्रयास करता है। इसी समय होराशास्त्र का विकाश पञ्चरूपात्मक हो गया। इसे निम्न प्रकार से आसानी पूर्वक समझा जा सकता है।

पञ्चरूपात्मक होराशास्त्र वर्णनः—

यद्यपि ये स्कन्धत्रय के अन्तर्गत ही आते हैं, परन्तु विस्तृत व्याख्या हेतु इसका विभाजन पृथक-पृथक किया गया है। उनका संक्षेप में विवरण इस प्रकार है-

1. जातकशास्त्र—

जातक शास्त्र के अन्तर्गत जन्मकालिक ग्रह स्थिति, दृष्टि-बल इत्यादि द्वारा मानव जीवन में घटने वाली शुभाशुभ घटनाओं का निर्धरण किया जाता है। अर्थात् जन्मजन्मान्तरों के संचित कर्मों का प्रतिपादन जातकशास्त्र के माध्यम से होता है।

2. ताजिकशास्त्र—

ताजिकशास्त्र के माध्यम से क्रियमाण कर्मों का प्रतिपादन किया जाता है। गोचरीय ग्रहों का मानव जीवन में प्रभाव का अवलोकन इसी शास्त्र के माध्यम से देखा जाता है।

3. मुहूर्त्तशास्त्र—

'कालः शुभक्रियायोग्यो मुहूर्त्त इत्यभिधीयते तिथि-वार-नक्षत्र-योग और करण ये पंचांग के पाँच अंग माने जाते हैं, इन्ही के आधर पर शुभाशुभ मुहूर्त्त का निर्णय किया जाता है। जातकर्म, नामकरण इत्यादि मानव जीवन में षोड्श संस्कार को करने लिए शुभकाल का निर्माण जो शास्त्र करता है उसे मुहूर्त्त शास्त्र कहते हैं।

4. प्रश्नशास्त्र—

प्रश्नशास्त्र ज्योतिषशास्त्र का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। प्रश्नशास्त्र के माध्यम से प्रश्नकर्ता के प्रश्नों का उत्तर तात्कालिक ग्रह स्थिति के द्वारा किया जाता है। इस शास्त्र के मुख्य तीन सिद्धान्त है।

1. प्रश्नाक्षर सिद्धान्त
2. प्रश्नलग्न सिद्धान्त
3. स्वरविज्ञान सिद्धान्त

5. शकुनशास्त्र—

शकुनशास्त्र को निमित्तशास्त्र भी कहा जाता है। मानव द्वारा आचरित पूर्वजन्म एवं वर्तमान जीवन के शुभाशुभ कार्यों की सूचना तत्काल में व्यक्ति के आसपास हो रहे क्रिया-कलापों के द्वारा शकुनशास्त्र के माध्यम से दी जाती है-

अन्यजन्मान्तरकृतं कर्म पुंसां शुभाशुभम्।
यत्तस्य शकुनः प्रोक्तं निवेदयेत पृच्छताम्।।

शकुनशास्त्र के अन्तर्गत ही स्वप्नादि दर्शन, पिल्लीपतन, पशु-पक्षियों के शब्द करने से शुभाशुभ शकुनों का विचार किया जाता है।

होरास्कन्ध् के प्रसिद्ध ग्रन्थ—

1. फलदीपिका	-	श्रीमन्त्रेश्वर
2. बृहज्जातकम्	-	बराहमिहिर
3. होरारत्नम्	-	बलभद्र
4. बृहद्पाराशरहोराशास्त्रम्	-	महर्षि पाराशर
5. जातकपारिजात	-	वैद्यनाथ
6. सारावली	-	कल्याणवर्म
7. लघुपाराशरी	-	‘आर्ष’
8. जातकपद्यति	-	केशव
9. जातकालटार	-	गणेश
10. भावकुतूहलम्	-	जीवनाथ
11. ताजिकनीलकण्ठी	-	श्रीनीलकण्ठ
12. मानसागरी		
13. ज्योतिषकल्पद्रुम		
14. जातकाभरणम्		
15. यवनजातकम्		
16. जैमिनीसूत्राम्		
17. जातकचन्द्रिका		
18. बृहद्यवनचन्द्रिका		

अभ्याय प्रश्न—

1. ज्योतिष शास्त्र के जनक कौन थे ?

क. महर्षि पराशर

ख. महर्षि कश्यप

ग. महर्षि वराहमिहिर

घ. महर्षि विश्वामित्र

2. ज्योतिषशास्त्र के प्रमुख स्तंभ कितने हैं ?

क. 2

ख. 3

ग. 4

घ. 5

3. ज्योतिष शास्त्र के बारे में सबसे ज़्यादा जानकारी किस ग्रंथ में मिलती है ?

क. जातकपारिजात

ख. सारावली

ग. बृहतपराशर होराशास्त्र

घ. लघुपाराशरी

4. महर्षि पराशर ने कोनसा ग्रंथ लिखा था।

क. सारावली

ख. लघुपाराशरी

ग. मानसागरी

घ. बृहतपराशर होराशास्त्र

5. भारतीय त्रिस्कंध ज्योतिषशास्त्र के पितामह कौन थे ?

क. आचार्य वराहमिहिर

ख. वैद्यनाथ

ग. कल्याणवर्म

घ. श्रीमन्त्रेश्वर

6. ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तक कौन थे ?

क. श्रीमन्त्रेश्वर

ख. आचार्य लगध

ग. बराहमिहिर

घ. वैद्यनाथ

7. पौराणिक कथाओं के मुताबिक, भृगु को ज्योतिष का ज्ञान किससे प्राप्त हुआ।

क. बराहमिहिर

ख. शुक्राचार्य

ग. गुरु बृहस्पति

घ. आचार्य लगध

1.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने ज्योतिषशास्त्र का संक्षिप्त परिचय उद्भव एवं विकास के विषय में जाना। जन्म अनेकों जन्मों में अर्जित कर्म के फल का निदर्शन ब्रह्माण्ड की स्थितियों के द्वारा ज्योतिषशास्त्र करता है। ज्ञात-अज्ञात अवस्था में भी ब्रह्माण्ड निरन्तर हमें किसी न किसी रूप में प्रभावित करता रहता है। सभ्यता के विकास के साथ मनुष्य ने आकाशीय स्थिति को देखकर ही काल की गणना का आरम्भ किया इसी कारण ज्योतिष शास्त्र का दूसरा नाम कालविधान शास्त्र भी है। काल का निरूपण आकाशीय ग्रह स्थितियों के द्वारा ही होता है, और उनमें भी सूर्य और चन्द्रमा सर्वप्रधान है। भारतीय वैदिक सनातन परम्परा में ज्योतिषशास्त्र को सर्वविद्यामूलक 'वेद' का अंग होने के कारण 'वेदांग' कहा गया है। वेद के छः अंग हैं - शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द एवं ज्योतिष। इन्हीं वेदांगों को 'शास्त्र' भी कहा जाता है। सामान्यतया आकाश में स्थित ग्रह, नक्षत्रादि पिण्डों की गति, स्थिति एवं उसके प्रभावादि निरूपण का अध्ययन हम जिस शास्त्र के अन्तर्गत करते हैं, उसे ज्योतिष शास्त्र कहा जाता है। यह शास्त्र हमारे प्राचीन ऋषियों की देन है। इसके मुख्यतः तीन स्कन्ध है - सिद्धान्त, संहिता एवं होरा। इस शास्त्र का प्रथम उपदेश ब्रह्मा जी ने नारद को दिया था। कश्यप संहिता के अनुसार इसके सूर्य से लेकर शौनकादि पर्यन्त अष्टादश प्रवर्तक हुये हैं।

1.9 पारिभाषिक शब्दावली

शब्द	-	अर्थ
ज्योतिष	-	वेद के चक्षरूपी अंग।
ग्रह	-	आकाशस्थ राशि मण्डल में वह पिण्ड जिसमें गति हो और जो उसे ग्रह कहते है।
नक्षत्र	-	'न क्षरतिति नक्षत्रम्'

वेदांग - वेद का अंग
सिद्धान्त - क्षण से प्रलयकाल पर्यन्त की गई काल गणना।
संहिता - ग्रह-नक्षत्रादिचार के शुभाशुभ लक्षण आदि का वर्णन
होरा - जन्म सम्बन्धित काल के आधार पर ग्रहों एवं नक्षत्रों की स्थिति का विवेचन

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.क 2.ख 3. ग 4.घ 5.क 6.ख 7.ग

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय ज्योतिष, श्री शिवनाथ झारखण्डी, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी,1975
2. भारतीय ज्योतिष, डॉ0 नेमीचन्द्र शास्त्री, उत्तरप्रदेश प्रकाशन, लखनऊ, 1976
3. सूर्यसिद्धान्तशिरोमणि, श्रीमरास्कराचार्य व्याखकार-प0 केदारदत्त जोशी, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1988
4. सूर्य सिद्धान्त, आचार्य विश्वनाथ, वैंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई वि0 स0, 2031
5. संस्कृत साहित्य का विशद इतिहास, डॉ0 ;श्रीमती पुष्पा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली भारत, 1994
6. बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, 'भाव बोधिनी' टीकाकार प0 पद्मनाभ शर्मा, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी,2012
7. भारतीय ज्योतिष, शंकरबालकृष्ण दीक्षित, उत्तरप्रदेश शासन, लखनऊ,1975
8. भारतीय ज्योतिषशास्त्र का इतिहास, डॉ0 गोरखप्रसाद, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान,संस्करण-3, 2004
9. बृहत्संहिता, वराहमिहिर, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1997

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ज्योतिष की परिभाषा प्रस्तुत कीजिये।
2. ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तकों का वर्णन कीजिये।
3. ज्योतिष के स्कन्धों का संक्षिप्त परिचय प्रदान कीजिये।
4 ज्योतिष के इतिहास का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।

इकाई 2 ज्योतिषशास्त्र के प्रमुख आचार्य एवं ग्रन्थ परम्परा

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 ज्योतिषशास्त्र के प्रमुख आचार्य एवं ग्रन्थ
2.3.1 ज्योतिषशास्त्र का अर्थ एवं महत्व
2.3.2 ज्योतिषशास्त्र की उपयोगिता
2.3.3 आचार्य लगध
2.3.4 आचार्य आर्यभट्ट
2.3.5 लल्लाचार्य
2.3.6 आचार्य वराहमिहिर
2.3.7 आचार्य ब्रह्मगुप्त
2.3.8 भास्कराचार्य
2.4 सारांश
2.5 पारिभाषिक शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों !

प्रस्तुत इकाई 'ज्योतिषशास्त्र के प्रमख आचार्य एवंग्रन्थ से सम्बन्धित है ।भारतीय वांगमय का मूल स्रोत वेद को माना जाता है। वेदपुरुष के प्रधान छः अंगों में ज्योतिषशास्त्र भी एक अंग के रूप में विख्यात है। ज्योतिष शब्द का अर्थ प्रकाश है। प्रकाश से तात्पर्य ईश्वरीय प्रकाश है, जिससे समस्त चराचर जगत प्रकाशित है। जगन्नियन्ता परमात्मा का नेत्र सूर्य है- **'चक्षोः सूर्जोऽजायत'** । और वेदांगों में ज्योतिषशास्त्र को वेद पुरुष का नेत्र कहा गया है**'ज्योतिषं वेद चक्षु'**। क्योंकि ज्योतिष काल विधान शास्त्र है ।वेदों में विहित कर्मानुष्ठान का समुचित काल जानने के लिए ज्योतिषशास्त्र का उपयोग होता है । यह शास्त्र मानव के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त उसके साथ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है । ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक के रूप में अट्ठारह आचार्यों का नामतः उल्लेख प्राप्त होता है। ज्योतिषशास्त्र रूपी ज्ञान गङ्गा अनेक आचार्यों के योगदान से सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हुई। ज्योतिषशास्त्र के प्रमुखआचार्य एवं उनके ग्रन्थों से परिचित करवाना इस इकाई का ध्येय है।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप—

- ज्योतिषशास्त्र के अर्थ एवं महत्व को जानेंगे ।
- ज्योतिषशास्त्र की उपयोगिता को जानेंगे ।
- ज्योतिषशास्त्र के प्रमख आचार्यों को जानेंगे ।
- ज्योतिषशास्त्र के प्रमखु ग्रन्थों से परिचित होंगे ।

2.3 ज्योतिषशास्त्र के प्रमुख आचार्य एवं ग्रन्थ

वेद शास्त्रों में ज्योतिषशास्त्र को उच्च स्थान प्राप्त है । ज्योतिषशास्त्र वेद पुरुष का निर्मल चक्षु है- **वेदस्य निर्मलं चक्षुः ।** इसके ज्ञान के अभाव में श्रौत, स्मार्त यज्ञादि क्रिया की सिद्धि नहीं हो सकती । ज्योतिषशास्त्र को **'कालविधान'** भी कहते हैं, क्योंकि काल का निरूपण ज्योतिषशास्त्र द्वारा ही होता है ।

कालोऽयं भगवान् विष्णुरनन्तः परमेश्वरः ।
तद्वेता पूज्यते सद्भिः पूज्यः कोऽन्यतमो मतः ।।

ज्योतिषशास्त्र को ज्योतिः शास्त्र भी कहते हैं। जिसका अर्थ है- प्रकाश देने वाला या प्रकाश के सम्बन्ध में बतलाने वाला शास्त्र । अर्थात जिस शास्त्र से संसार का मर्म, जीवन-मरण का रहस्य और जीवन के सुख-दुख के सम्बन्ध में पूर्ण प्रकाश मिले वह ज्योतिषशास्त्र है । ज्योतिषशास्त्र एक ऐसा शास्त्र है जो पूर्ण सफल है और जिसका साक्ष्य सूर्य चन्द्र स्वयं दे रहे हैं । यह शास्त्र मानव के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त उसके साथ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है।

ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक—

ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक के रूप में अट्ठारह आचार्यों का नामतः उल्लेख प्राप्त होता है, वे हैं- सूर्य, पितामह, व्यास, वसिष्ठ, अत्रि, पराशर, कश्यप, नारद, गर्ग, मरीचि, मनु, अंगिरा,

लोमश, पुलिश, च्यवन, यवन, भृगु एवं शौनक। इस सन्दर्भ में काश्यप का निम्न वचन उल्लेखनीय हैं-

सूर्य: पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः ।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिराः ।।
लोमशः पौलिश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः ।
शौनकोऽष्टादशाश्चैते ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकः ।।

2.3.1 ज्योतिषशास्त्र का अर्थ एवं महत्व

भारतीय वांगमय का आरम्भ 'वेद' से माना गया है । वेदों में विहित कर्मानुष्ठान का समुचित काल जानने के लिए ज्योतिषशास्त्र का उपयोग होता है। वेदपुरुष के छः प्रधान अंग हैं- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त और ज्योतिष इन छः अंगों में ज्योतिषशास्त्र को वेदपुरुष का नेत्र कहा गया है- **ज्योतिषं नेत्रमुच्यते।** सभ्य समाज में कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निर्धारण करने में शास्त्रों का महत्वपूर्ण स्थान है, अतः समाज के चक्षुरूप में शास्त्रों का स्थान प्रथमतः आता है। उन शास्त्रों का चक्षु वेद है, और वेद का चक्षु **'ज्योतिष'** है। ज्योतिषशास्त्र की व्युत्पत्ति **'ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रम्'** की गयी है । जिसका अर्थ है- सूर्यादि ग्रह और काल का बोध कराने वाले शास्त्र को ज्योतिषशास्त्र कहा जाता है। इसमे प्रधानतः ग्रह, नक्षत्र, धूमकेतु आदि ज्योति पदार्थों का स्वरूप, संचार, परिभ्रमणकाल, ग्रहण और स्थिति प्रभृति समस्त घटनाओं का निरूपण एवं ग्रह, नक्षत्रों की गति, स्थिति और संचारानुसार शुभ-अशुभ फलों का कथन किया जाता है। कुछ विद्वानों का अभिमत है कि नभोमण्डल में स्थित ज्योति सम्बन्धी विविधविषयक विद्या को ज्योतिर्विद्या कहते हैं, जिस शास्त्र में इस विद्या का सांगोपांग वर्णन रहता है, वह ज्योतिषशास्त्र है। संक्षिप्त में ज्योतिष शास्त्र को परिभाषित करते हुए आचार्यों ने कहा है- **'ग्रहगणितं ज्योतिषम्'।** अर्थात ग्रहों का गणित जिस शास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है उसे 'ज्योतिष' कहते हैं। ज्योतिषशास्त्र वेद का वह अंग है, जिसके द्वारा ग्रह, नक्षत्र एवं तारा आदि की स्थितियों को समझ करके संसार में घट रही, घट चुकी या घटने वाली घटनाओं का अध्ययन किया जाता है। जिस प्रकार नेत्र हीन पुरुष स्वकार्य सम्पादन करने में असमर्थ होता है, ठीक उसी प्रकार ज्योतिष ज्ञान विहीन पुरुष भी स्वकीय कर्तव्यों के निर्धारण में पूर्णतः अशक्य होता है । जिस तरह मयूर के मस्तक पर शिखा और नाग सर्प के मस्तक पर मणि विराजमान रहती है, ठीक उसी तरह वेदांग शास्त्रों के मस्तक परज्योतिषशास्त्र विराजमान है-

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।
तद्वेतद्वेदाङ्गशात्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ।।

ज्योतिषशास्त्र का सम्बन्ध समाज के प्रायः सभी वर्गों से है । इसका करण यह है कि अपने भविष्य को जानने की उत्कण्ठा मानव मात्र में समान भाव से है । आज के इस वैज्ञानिक जगत में भी इसके प्रति आस्था का होना स्वयं इसकी वैज्ञानिकता को सिद्ध कर देता है। ज्योतिषशास्त्र मानव के लिए प्रत्येक क्षेत्र में सहयोगी एवं कल्याणकारी है । इसका सम्बन्ध मनुष्य के जन्म-जन्मान्तरों से जुड़ा हुआ है । अतः ज्ञात-अज्ञात में भी निरन्तर ज्योतिषशास्त्र किसी न किसी रूप में प्रभावित करता रहता है। ज्योतिषशास्त्र रूपी ज्ञान गांगा तीन धाराओं में बह रही हैं । इसीलिए उन्हें त्रिपथगा या स्कन्धत्रय भी कहा जाता है। वे इस प्रकार से हैं-

सिद्धान्तसंहिताहोरारूपस्कन्धत्रयात्मकम् ।
वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिः शास्त्रमकल्मषम् ।।

ज्योतिषशास्त्र के वे तीन स्कन्ध हैं-, सिद्धान्त, संहिताऔरहोरा अथवा स्कन्धपंच सिद्धान्त, संहिता, होरा, प्रश्न और शकुन ये अंग माने गये हैं ।

सिद्धान्त- काल गणना में सूक्ष्म माप त्रुटि से लेकर प्रलय तक के कालों का आकलन, उनका मान, उनका भेद, उनका चलन, आकाश में ग्रहों की गति आदि के साथ-साथ दोनों प्रकार के गणित (बीजगणित व पाटीगणित) उनके प्रश्न तथा उत्तर जिसमें निहित हों, साथ ही, पृथ्वी और आकाश के मध्य स्थिति ग्रहों का जिसमे कथन और उनको जानने, उनका वेध करने के यन्त्र आदि का जिसमें ज्ञान निहित हो, उस शाखा को विद्वानों ने सिद्धान्त शाखा कहा है ।

संहिता- ज्योतिषशास्त्र के जिस स्कन्ध में ग्रहों की चाल, वर्ष के लक्षण, तिथि-वार-नक्षत्र-योग-करण-मुहूर्त-चन्द्रबल, ताराबल, सभी प्रकार के संस्कार, पशु-पक्षियों की चेष्टा का ज्ञान, शकुन विचार, रत्न-विद्या, प्रकृति की असामान्य चेष्टाओं का चिन्तन 'संहिता शास्त्र' कहा जाता है ।वृहतसंहिता में आचार्य वराहमिहिर का कथन है- **"तत्कात्सन्योंपनस्य नाममुनिभिः संकीर्त्यते संहिता ।"**

होरा- इसकादूसरा नाम जातकशास्त्र है । जन्मकालीन ग्रहों की स्थिति के अनुसार व्यक्ति के लिए शुभाशुभ फलों का निरूपण इसमें किया जाता है । इस शास्त्र में जन्मकुण्डली के द्वादश भावों के फल उनमें स्थित ग्रहों की अपेक्षा तथा दृष्टि रखनेवाले ग्रहों के अनुसार विस्तार पूर्वक प्रतिपादित किये जाते हैं ।

प्रश्नशास्त्र- यह तत्काल फल बताने वाला शास्त्र है । इसमें प्रश्नकर्ता के उच्चारित अक्षरों पर से फल का प्रतिपादन किया जाता है ।५ वीं एवं ६ठी शताब्दी में केवल प्रश्न पूछने वाले के उच्चारित अक्षरों पर से फल बतलाना ही प्रश्नशास्त्र के अन्तर्गत था, लेकिन आगे जाकर इस शास्त्र में तीन सिद्धान्तों का प्रवेश हुआ, पहला प्रश्नाक्षर सिद्धान्त, दूसरा प्रश्न लग्न सिद्धान्त और तीसरा स्वर विज्ञान सिद्धान्त ।

शकुन- इस शास्त्र को निमित्तशास्त्र के नाम से भी जाना जाता है । पूर्वमध्यकाल तक इसने पृथक स्थान प्राप्त नहीं किया था, किन्तु संहिता के अन्तर्गत ही इसका विषय आता था ।

2.3.2 ज्योतिषशास्त्र की उपयोगिता

ज्योतिषशास्त्र मानव के लिए सहयोगी एवं कल्याणकारी शास्त्र है । सृष्टि के समस्त कार्य काल (समय) के आधीन होते हैं । ज्योतिषशास्त्र कालनियामक शास्त्र होने के कारण सर्वप्रथम काल नर्धारण में मानव के लिए सहायक व उपयोगी है। ज्योतिषशास्त्र की उपयोगिता 'वेदांगज्योतिष' में इस प्रकार से बतायी गयी है-

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालाभिपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः ।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम् ।।

अर्थात वेदों की प्रवृत्ति यज्ञ, अनुष्ठान के उद्देश्य से हुई है, और यज्ञों का विधान काल के अधीन है। अतः जो व्यक्ति काल का विधान करने वाले इस ज्योतिषशास्त्र को जानता है, वही यज्ञ का ज्ञान रखता है ।ज्योतिषशास्त्र के द्वारा ही मनुष्य अपने समस्त कार्यों का सम्पादन करता है। यह शास्त्र व्यवहार के लिए अत्यन्त उपयोगी है । जैसे दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, अयन, ऋतु, वर्ष एवं उत्सवतिथि आदि का परिज्ञान इसी शास्त्र से होता है। यदि मानव समाज को इस शास्त्र का ज्ञान न

हो तो धार्मिक उत्सव, सामाजिक त्यौहार, महापुरुषों के जन्मदिन, अपनी प्राचीन-गौरव-गाथा का इतिहास और किसी भी बात का ठीक-ठीक पता न लग सकेगा। न ही उचित कृत्य यथासमय सम्पन्न किये जा सकेंगे। ज्योतिष के ज्ञाताओं के साथ-साथ भारतीय कृषक भी व्यवहारोपयोगी ज्योतिष ज्ञान से परिचित होते हैं। एक कृषक भली-भाँति जानता है किस नक्षत्र में वर्षा अच्छी होती है, अतः फ़सल कब बोनी चाहिए जिससे फ़सल अच्छी हो। ज्योतिषशास्त्र के तत्वों से पूर्णतया परिचित हुए बिना विज्ञान भी असमय में वर्षा का आयोजन और निवारण नहीं कर सकता। वास्तविक बात यह है कि चन्द्रमा जिस समय जलचर राशि और जलचर नक्षत्रों पर रहता है, उसी समय वर्षा होती है। जहाज के कप्तान को ज्योतिष की नित्य बड़ी आवश्यकता होती है, क्योंकि वे ज्योतिष के द्वारा ही समुद्र में जहाज की स्थिति का पता लगाते हैं। घड़ी के अभाव में सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रों के पिण्डों को देखकर आसानी से समय का पता लगाया जा सकता है। ज्योतिष ज्ञान के बिना लम्बी यात्रा तय करना भी सरल नहीं होगा, क्योंकि ज्योतिष ज्ञान के द्वारा ही नये देशों और रेगिस्तानों में रास्ता निकाला जा सकता है तथा अक्षांश और देशान्तर के द्वारा उस स्थान की स्थिति और उसकी दिशा आदि का निर्णय लिया जाता है। जहाँ की सीमा पैमायश द्वारा निश्चित नहीं की जा सकती है, वहाँ ज्योतिष के द्वारा प्रतिपादित अक्षांश और देशान्तर के आधार पर सीमाएँ निश्चित की गयी हैं। ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान के बिना भूगोल का अध्ययन अधूरा ही समझा जायेगा। अतः भूगोल के विद्वानों के लिए भी ज्योतिष का अध्ययन भी महत्वपूर्ण है। इतिहास को भी ज्योतिषशास्त्र ने बड़ी साहयता पहुँचायी है। जिन बातों की तिथियों का पता अन्य साधनों द्वारा नहीं लगाया जा सकता है, उनका का पता ज्योतिष के द्वारा सहजता से लगाया जा सकता है। यदि ज्योतिष का ज्ञान नहीं होता तो वेद की प्राचीनता कदापि सिद्ध नहीं की जा सकती। श्रद्धेय लोकमान्य तिलक ने वेदों में प्रतिपादित नक्षत्र, अयन और ऋतु आदि के आधार पर ही वेदों का समय निर्धारित किया है। भूगर्भ से प्राप्त विभिन्न वस्तुओं का काल ज्योतिषशास्त्र के द्वारा जितनी सरलता और प्रामाणिकता के साथ निश्चित किया जा सकता है, उतना अन्य शास्त्रों के द्वारा नहीं किया जा सकता। सृष्टि के रहस्य का पता भी ज्योतिष से लगता है। आयुर्वेद को ज्योतिषशास्त्र का चचेरा भाई कहा जाता है। क्योंकि ज्योतिषशास्त्र के बिना औषधियों का निर्माण यथासमय सम्पन्न नहीं किया जा सकता। क्योंकि ग्रहों के तत्व और स्वभाव को ज्ञात कर उन्हीं के अनुसार उसी तत्व और स्वभाववाली दवा का निर्माण करने से वह दवा विशेष गुणकारी होती है। जो इस शास्त्र के ज्ञान से अपरिचित रहते हैं वे सुन्दर और अपूर्व गुणकारी दवाओं का निर्माण नहीं कर सकते। ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान के द्वारा रोगी की चर्चा और चेष्टा को अवगत कर बहुत कुछ अंशों में रोग की मर्यादा जानी जा सकती है। संवेगरंगशाला नामक ज्योतिष ग्रन्थ में रोगी की रोग मर्यादा जानने के अनेक नियम हैं। अतएव जो चिकित्सक आवश्यक ज्योतिष तत्वों को जानकर चिकित्सा का कार्य करता है, वह अधिक सफल होता है। साधारण व्यक्ति भी इस शास्त्र के ज्ञान से अनेक रोगों से बच सकता है, क्योंकि अधिकांश रोग सूर्य और चन्द्रमा के विशेष प्रभावों से उत्पन्न होते हैं। ज्योतिषशास्त्र की सबसे बड़ी उपयोगिता यह है कि यह समस्त मानव जीवन के प्रत्यक्ष और परोक्ष रहस्यों का विवेचन करता है। ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान के बिना मानव का व्यवहारिक कोई भी कार्य नहीं चल सकता। जिस प्रकार दीपक अन्धकार में रखी वस्तु को दिखलाता है, ठीक उसी प्रकार ज्योतिषशास्त्र भी मानव को उचित मार्ग दिखलाता है।

2.3.3 आचार्य लगध

आचार्य लगध का नाम ज्योतिषशास्त्र के प्रथम आचार्य के रूप में बड़ी मुख्यता के साथ लिया जाता है। आचार्य लगध वैदिक ज्ञान-विज्ञान के ज्ञाता थे। इनकी विश्व प्रसिद्ध रचना **'वेदांगज्योतिष'** है। इनका परिचयात्मक श्लोक ग्रन्थ के आरम्भ में मिलता है-

प्रणम्य शिरसा ज्ञानम् अभिवाद्य सरस्वतीम्।
कालज्ञानंप्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः ।।(वे.ज्यो.ऋक्पा.श्लोक.२)

अर्थात सरस्वती देवी का अभिवादन करके और शीश झुकाकर प्रणाम करते हुए महात्मा लगध के द्वारा कालज्ञान के विषय में कहूँगा। इससे यह ज्ञात होता है कि वेदांगज्योतिष के रचयिता वह स्वयं नहीं अपितु उनका कोई शिष्य है। **'वेदांगज्योतिष'**ग्रन्थ जा समय शंकर बालकृष्ण दीक्षित जी ने १४०० ई० पू० सिद्ध किया है। इसके तृतीय श्लोक में ज्योतिष की उपयोगिता इस प्रकार बतायी गयी है-

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालाभिपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्।।

अर्थातवेदों की प्रवृत्ति यज्ञ, अनुष्ठान के उद्देश्य से हुई है, और यज्ञों का विधान काल के अधीन है। अतः जो व्यक्ति काल का विधान करने वाले इस योतिषशास्त्र को जानता है, वही यज्ञ का ज्ञान रखता है।'वेदांगज्योतिष' पर काशी-निवासी किसी दाक्षिणात्य पण्डित सोमकर जी ने भाष्य लिखा था।

आचार्य लगध के ही प्रतिपादित सूत्रों का संकलन ऋक्ज्योतिष, याजुष ज्योतिष एवं अथर्व ज्योतिष इत्यादि नाम से उनके शिष्यों ने किया।

ऋक् ज्योतिष- वेदांग ज्योतिष का रचनाकाल के सम्बन्ध में अनेक मत प्रचलित हैं, पर भाषा, शैली और विषय के परीक्षण द्वारा विद्वानों ने ई०पू० ५०० रचनाकाल माना है। ऋक् ज्योतिष के प्रारम्भ में प्रतिपाद्य विषयों के बारे में बताया गया है-

पञ्चसंवत्सरमययुगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचिः ।।
ज्योतिषामयनं पुण्यं प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः।
सम्मतं ब्राह्मणेन्द्राणां यज्ञकालार्थसिद्धये ।।(ऋक्.ज्यो.श्लो.१-२)

अर्थात एक युग सम्बन्धी दिवस, ऋतु, अयन, मास और युगाध्यक्ष का वर्णन किया जायेगा। तात्पर्य यह है कि पंचवर्षात्मक युग के अयन नक्षत्र, अयन मास, अयन तिथि, ऋतु प्रारम्भ काल, पर्वराशि, उपादेयपर्व, भांश, योग, व्यतिपात और ध्रुवयोग, मुहूर्त प्रमाण, नक्षत्र देवता, उग्र तथा क्रूर नक्षत्र, अधिमास, दिनमान, प्रत्येक नक्षत्र का भोग्यकाल, लग्नानयन, चन्द्रर्तुसंख्या, वेधोपाय एवं कलादि लक्षण का संक्षिप्त निरूपण किया गया है। इसमे माघशुक्ला प्रतिपदा को युगारम्भ और पौष कृष्णा अमावस्या को युग समाप्ति बतायी गयी है।

याजुष ज्योतिष- यजुर्वेद ज्योतिष प्रायः ऋक् जोतिष से मिलता-जुलता है। विषय प्रतिपादन में कोई मौलिक भेद नही है।

अथर्व ज्योतिष- अथर्व ज्योतिष में फलित ज्योतिष की अनेक महत्वपूर्ण बातें हैं। वास्तव में इन तीनों वेदांग ज्योतिष में ज्योतिष का स्वतन्त्र ग्रन्थ यही कहा जा सकता है। विषय और भाषा

की दृष्टि से इसका रचनाकाल ऋक् और यजु ज्योतिष से अर्वाचीन है। इसमें तिथि, नक्षत्र, करण, योग, तारा और चन्द्रमा के बलाबल का सुन्दर निरूपण किया गया है।

तिथिरेकगुणाप्रोक्ता नक्षत्रं न चतुर्गुणम्।
वारश्चाऽष्टगुणः प्रोक्तः करणं षोडशान्वितम्॥९०॥
द्वात्रिंशद्गुणोयोगस्तारा षष्टिसमन्विता।
चन्द्रः शतगुणः प्रोक्तस्तस्माच्चन्द्रबलाबलम्॥७१॥
समीक्ष्य चन्द्रस्य बलाबलानि ग्रहाः प्रयच्छन्ति शुभाशुभानि।

अर्थात तिथि का एक गुण, नक्षत्र के चार गुण, वार के आठ गुण, करण के सोलह गुण, योग के बत्तीस गुण, तारा के साठ गुण और चन्द्रमा के सौ गुण कहे गये हैं। चन्द्रमा के बलाबलानुसार ही अन्य ग्रह शुभाशुभ फल देते हैं। तात्पर्य यह है कि अथर्व ज्योतिष की रचना के समय ज्योतिषशास्त्र का विचार सूक्ष्म दृष्टि से होने लग गया था। इस समय भारतवर्ष में वारों का भी प्रचार हो गया था तथा वाराधिपति भी प्रचलित हो गये थे-

आदित्यः सोमो भौमश्च तथा बुधबृहस्पती।
भार्गवः शनैश्चरश्चैव एते सप्त दिनाधिपाः॥

इसमें जातक के जन्म नक्षत्र को लेकर सुन्दर ढंग से फल बताया गया है। तीन-तीन नक्षत्रों का एक-एक वर्ग स्थापित कर फल बताया गया है।

2.3.4 आचार्य आर्यभट्ट

आचार्य आर्यभट्ट ने अपना विशेष एवं विस्तृत परिचय नहीं दिया है। ज्योतिषशास्त्र का क्रमबद्ध इतिहास आचार्य आर्यभट्ट के समय से मिलता है। इनका जन्म समय ई० सन् ४७६ माना गया है। इन्होंने ज्योतिष का प्रसिद्ध ग्रन्थ **'आर्यभट्टीय'** की रचना की है।कतिपय विद्वानों का मानना है कि आर्यभट्ट ने पटना में जिसका प्राचीन नाम (कुसुमपुर) था, वहाँ अपने अपूर्व ग्रन्थ 'आर्यभट्टीय' की रचना की है। आर्यभट्टीय के मुख्य दो भाग हैं। पहले भाग में गीति छन्द के १० पद्य हैं जिसमें ग्रहों के भगण (राशिचक्र-भ्रमण) के मान हैं। इस भाग को 'दशगीतिका' कहते हैं। दूसरे भाग में ३ प्रकरण हैं, इसमें आर्य छन्द में १०८ श्लोक हैं। इस ग्रन्थ में दशगीतिक, गणित, कालक्रिया और गोल ये चार पाद हैं। आर्यभट्टीय ग्रन्थ में सूर्य और तारों के स्थिर होने तथा पृथ्वी के घूमने के कारण दिन और रात होने का वर्णन है। इसमें पृथ्वी की परिधि ४९६७ योजन बतायी गयी है। आर्यभट्ट ने सूर्य और चन्द्रग्रहण के वैज्ञानिक कारणों की व्याख्या की है। बाल-क्रियापाद में युग के समान दो भाग करके पूर्व भाग का उत्सर्पिणी और उत्तर भाग का अवसर्पिणी नाम बताया है तथा प्रत्येक के सुषमासुषमा, सुषमा आदि छह-छह भेद बताये हैं।

उत्सर्पिणी युगार्ध्दं पश्चादवसर्पिणी युगार्ध्दं च।
मध्ये युगस्य सुषमाऽदावन्ते दुःषमाग्न्यंशात्॥

कालक्रियापाद में क्षेपक विधि से ग्रहों के स्पष्टीकरण की विधि विस्तार से बतलायी है तथा बुध, शुक्र को विलक्षण संस्कार से संस्कृत कर स्पष्ट किया है। गोलपाद में मेरु की स्थिति का सुन्दर वर्णन किया है तथा अक्षक्षेत्रों के अनुपात द्वारा लम्बज्या, अक्षज्या का साधन सुगमता से किया है। आर्यभट्ट ने १, २, ३ आदि अंक संख्या के द्योतक क, ख, ग आदि वर्ण कल्पना किये हैं अर्थात अ, आ इत्यादि स्वर वर्ण और क, ख, ग आदि व्यंजन वर्णों का १-१ संख्यावाचक अर्थ देकर बड़ी-बड़ी संख्याओं को प्रकाशित किया है। गीतिकापाद में कहा है –

वर्गाक्षराणि वर्गेऽवर्गेऽवर्गाक्षराणि कात् ङ्मौ यः ।
खद्विनवके स्वरा नववर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्गे वा ॥

इनकी गणित विषयक विद्वता का निदर्शन यही है कि उन्होंने गणितपाद में वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल एवं व्यवहार श्रेणियों के गणित का सुन्दर विवेचन किया है।

भूभ्रमण सिद्धान्त- ज्योतिषशास्त्रीय इतिहास में आचार्य आर्यभट्ट प्रथम ज्ञात थे जिन्होंने सर्वप्रथम भू (पृथ्वी) भ्रमण की बात कही है-

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत् ।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम् ॥

अर्थात चलती हुई नाव में बैठा हुआ व्यक्ति स्थिर वस्तुओं को नौका के विपरीत दिशा में जाता हुआ देखता है, ठीक उसी प्रकार चलती हुई पृथ्वी पर मनुष्य स्थिर नक्षत्रों को अपने पश्चिम क्षितिज की ओर जाते हुए देखता है।

2.3.5 लल्लाचार्य

लल्लाचार्यज्योतिष परम्परा के महान आचार्य हैं। इनका जन्म काल शक सं. ४२१ माना जाता है। इनके पिता का नाम भट्टत्रिविक्रम और पितामह का नाम शाम्ब था।इनके गुरु का नाम आर्यभट्ट बताया गया है। लल्लाचार्य ने **'शिष्यधीवृद्धि'** नामक ज्योतिष ग्रन्थ की रचना की। यह रचना इन्होंने आर्यभट्ट की परम्परा को लेकर की है-

आचार्याऽऽर्यभटोदितं सुविषमं व्यौमौकसां कर्म य-
च्छिष्याणामभिधीयते तदधुना लल्लेन धीवृद्धिदम् ॥
विज्ञाय शास्त्रमलमार्यभट्टप्रणीतं तन्त्राणि यद्यपि कृतानि तदीयशिष्यैः ।
कर्मक्रमो न खलु सम्यगुदीरितस्तः कर्म ब्रवीम्यहमतः क्रमशस्तु सूक्तम् ॥

लल्लाचार्य गणित, जातक और संहिता इन तीनों स्कन्धों के परम विद्वान थे। इसके ग्रन्थ 'शिष्यधीवृद्धि' में प्रधान रूप से गणिताध्याय और गोलाध्याय, ये दो प्रकरण हैं।

गणिताध्याय- में मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, चन्द्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, पर्वसम्भवाधिकार, भग्रहयुत्याधिकार, महापाताधिकार और उत्तराधिकार नामक उपप्रकारण हैं।

गोलायाध्याय- छेदाधिकार, गोलबन्धाधिकार, मध्यगतिवासना, भूगोलायाध्याय, ग्रहभ्रमसंस्थाध्याय, भुवनकोश-मिथ्याज्ञानाध्याय, यन्त्राध्याय और प्रश्नाध्याय नामक उपप्रकरण हैं। इनका एक **'रत्नकोष'** नामक संहिता ग्रन्थ भी है। भास्कराचार्य ने यद्यपि इनके सिद्धान्तों का खण्डन किया है, पर तो भी इनकी विद्वता का लोहा उन्होंने माना है।

त्रिस्कन्धविद्याकुशलैकमल्लो लल्लोऽपि यत्राप्रतिमो बभूव ।
यातेऽपि किंचिद् गणिताधिकारे पाताधिकारे गमनाधिकारः ॥

अर्थात् भास्कराचार्य भी लल्लाचार्य की विद्वता से प्रभावित थे। यदि सूक्ष्म निरीक्षण किया जाये तो ज्ञात होता है कि भास्कराचार्य की रचनाओं में लल्लाचार्य की अनेक बातें ज्यों की त्यों पाई जाती हैं। उत्क्रमज्या द्वारा साधित ग्रहप्रणाली इनकी मौलिक विशेषता है।

2.3.6 आचार्य वराहमिहिर

आचार्य वराहमिहिर प्रख्यात ज्योतिषशास्त्र के ज्ञाता थे। ज्योतिष की तीनों शाखाओं पर इनके ग्रन्थ हैं। इन्होंने स्वयं अपने काल का उल्लेख नहीं किया है पर अपने ग्रन्थ **'पञ्चसिद्धान्तिका'**

में गणितारम्भ वर्ष शके ४२७ माना है। यदि 'पञ्चसिद्धान्तिका' ४२७ में बनाई हो तो इनका जन्म शके ४०७ से पूर्व होना चाहिए क्योंकि २० वर्ष से कम अवस्था में ऐसा ग्रन्थ बनाना असम्भव है। बृहज्जातक में इन्होंने अपने सम्बन्ध में कहा है-

आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः काम्पिल्लके सवितृलब्धवरप्रसादः।
आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग्घोरां वराहमिहिरो रुचिरां चकार॥

अर्थात् काम्पिल्ल (कालपी) नगर में सूर्य से वर प्राप्त कर अपने पिता आदित्यदास से ज्योतिषशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की, अनन्तर उज्जैनी में जाकर रहने लगे और वहीं पर बृहज्जातक की रचना की। यह त्रिस्कन्ध ज्योतिषशास्त्र के रहस्यवेत्ता, नैसर्गिक कविता-लता के प्रेमाश्रय कहे गये हैं। इन्होंने ज्योतिषशास्त्र को जो कुछ दिया है, वह युगों-युगों तक इनकी कीर्तिकौमुदी को भासित करता रहेगा। इन्होंने अपने पूर्वकालीन प्रचलित सिद्धान्तों का 'पञ्चसिद्धान्तिका' में संग्रह किया है। इसके अतरिक्त बृहत्संहिता, बृहज्जातक, लघुजातक, विवाह-पटल, योगयात्रा और समास-संहिता नामक ग्रन्थों की रचना की है। वराहमिहिर के जातक ग्रन्थों का विषय सर्वसामान्य, गम्भीर और मत-मतान्तारों के विचारों से परिपूर्ण है। बृहज्जातक में मेषादि राशियों की यवन संज्ञा, अनेक पारिभाषिक शब्द एवं यवनाचर्यो का भी उल्लेख किया है। मय, शक्ति, जीवशर्मा, मणित्य, विष्णुगुप्त, देवस्वामि, सिद्धसेन और सत्याचार्य आदि के नाम आये हैं। ज्योतिषशास्त्र में अनेक संहिताएँ हैं, परन्तु इनकी संहिता जैसी एक भी पुस्तक नहीं। डॉक्टर कर्न ने बृहत्संहिता की बड़ी प्रशंसा की है। वास्तविक बात तो यह है कि फलित ज्योतिष का इनके सामन कोई अद्वितीय ज्ञाता नहीं हुआ। यह निष्पक्ष ज्योतिषी और भारतीय ज्योतिष के निर्माता माने जाते हैं। पाश्चात्य विद्वानों का कथन है कि वराहमिहिराचार्य ने भारत के ज्योतिष को केवल ग्रह-नक्षत्र ज्ञान तक ही मर्यादित न रखा, अपितु मानव जीवन के साथ उसकी विभिन्न पहलुओं द्वारा व्यापकता बतलायी तथा जीवन के सभी आलोच्य विषयों की व्याख्याएँ की। इनके मृत्युकाल के विषय में एक वाक्य प्रचलित है-

नवाधिकपञ्चशतसंख्यशाके वराहमिहिराचार्यो दिवं गतः।

2.3.7 आचार्य ब्रह्मगुप्त

आचार्य ब्रह्मगुप्त वेधविद्या में निपुण, प्रतिष्ठित और असाधारण विद्वान थे। इनका जन्म वर्तमान पंजाब के अन्तर्गत 'भिलनालका' नामक स्थान में हुआ। इन्होंने **'ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त'** नामक ग्रन्थ की रचना की। इन्होंने इस ग्रन्थ में लिखा है-

श्रीचापवंशतिलके श्रीव्याघ्रमुखे नृपे शकनृपाणाम्।
पञ्चाशत्सम्युक्तैर्वर्षशतैः पञ्चभिः ५५० रतीतैः ॥७॥
ब्रह्मस्फुटसिद्धान्तः सज्जनगणितज्ञगोलवित्प्रीत्यै।
त्रिंशद्वर्षेण कृतो जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन ॥८॥

इससे यह ज्ञात होता है कि इन्होंने यह ग्रन्थ चापवंशीय व्याघ्रमुख नामक राजा के राज्यकाल में शके ५५० में ३० वर्ष की अवस्था में बनाया अर्थात इनका जन्म शक ५२० है। इनके पिता का नाम जिष्णु था। ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त ग्रन्थ के अतरिक्त ६७ वर्ष की अवस्था में इन्होंने **'खण्डखाद्यक'** नामक एक करण ग्रन्थ भी इन्होंने बनाया था। ब्रह्मगुप्त ज्योतिष के प्रौढ विद्वान थे। इन्होंने बीजगणित के कई नवीन नियमों का आविष्कार किया, इसी से यह गणित के प्रवर्तक कहे गये हैं। अरब वालों ने बीज गणित ब्रह्मगुप्त से ही लिया है। इनके गणित ग्रन्थों के अनुवाद

अरबी भाषा में भी हुआ ऐसा सुना जाता है। **'ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त'** का **'असिन्द हिन्द'** और **'खण्डखाद्यक'** का **'अलर्कन्द'** नाम अरब वालों ने रखा। इन्होंने पृथ्वी को स्थिर माना है, इसलिए आर्यभट्ट के पृथ्वी चलन सिद्धान्त की जी भर निन्दा की है। ब्रह्मगुप्त ने अपने पूर्व के ज्योतिषियों की गलती का समाधान विद्वत्ता के साथ किया है। वैसे तो ये आर्यभट्ट के निन्दक थे, पर अपना करण ग्रन्थ 'खण्डखाद्य' उसी के अनुकरण पर लिखा है। इस ग्रन्थ के आरम्भ के आठ अध्याय तो केवल आर्यभट्ट के अनुकरण मात्र हैं, उत्तर के तीन अध्यायों में आर्यभट्ट की आलोचना है।

2.3.8 भास्कराचार्य

भास्कराचार्य ज्योतिषशास्त्र के असाधारण विद्वान हुए हैं। भारत ही नहीं अपितु बाहर भी इनकी कीर्ति लगभग ७०० वर्षों से फैली हुई है। **'सिद्धान्तशिरोमणि'** और **'करणकुतूहल'** नामक इनके दो गणित ज्योतिष ग्रन्थ हैं। इन्होंने सिद्धान्त शिरोमणि के गोलाध्याय में लिखा है-

रसगुणपूर्णमही १०३६ समशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः।
रसगुणवर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणि रचितः ॥५८॥

इससे यह ज्ञात होता है कि इनका जन्म शके १०३६ में हुआ और इन्होंने ३६ वर्ष की अवस्था में **'सिद्धान्तशिरोमणि'** की रचना की **'करणकुतूहल'** में आरम्भ वर्ष ११०५ है अर्थात वह उसी समय लिखी गयी है। इनके पिता का नाम महेश्वर उपाध्याय था। इन्होंने एक स्थान पर लिखा है-

आसीन्महेश्वर इति प्रथितः पृथिव्यामाचार्यवर्यपदवीं विदुषां प्रपन्नः।
लब्धावबोधकलिकां तत एव चक्रे तज्जेन बीजगणितं लघुभास्करेण ॥

इससे स्पष्ट है कि महेश्वर इनके पिता और गुरु दोनों ही थे। इनके द्वारा रचित लीलावती, बीजगणित, सिद्धान्तशिरोमणि, करणकुतूहल और सर्वतोभद्र ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त और पृथूदक स्वामी के भाष्य को मूल मानकर इन्होंने अपना सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ का निर्माण किया। तथा आर्यभट्ट, लल्ल, ब्रह्मगुप्त आदि के मतों की समालोचना की है। शिरोमणि में अनेक नये विषय भी आये हैं, प्राचीन आचार्यों के गणितों में संशोधन कर बीजसंस्कार निर्धारित किये। इन्होंने सिद्धान्तशिरोमणि पर वासना भाष्य भी लिखा है, जिससे इनके सरल और सरस गद्य का भी परिचय मिल जाता है। ज्योतिषी होने के साथ-साथ भास्कराचार्य ऊँचे दरजे के कवि भी थे। गणित में वृत्त, पृष्ठघनफल, गुणोत्तरश्रेणी, अंकपाश, करणीवर्ग, वर्गप्रकृति, योगान्तर भावना द्वारा कनिष्ठ-ज्येष्ठानयन एवं सरल कल्पना द्वारा एक और अनेक वर्ण मानायन आदि विषय इनकी विशेषता के द्योतक हैं।सिद्धान्त में भगणोपपत्ति लघुज्याप्रकार से ज्यानयन, चन्द्रकलाकर्ण साधन, भूमानयन, सूर्यग्रहण का गणित, स्पष्ट क्रान्ति का साधन आदि बातें इनके पूर्वाचार्यों की अपेक्षा नवीन हैं।

2.4 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों !

प्रस्तुत इकाई में आपने ज्योतिषशास्त्र के अर्थ एवं महत्व, ज्योतिषशास्त्र की उपयोगिता, ज्योतिषशास्त्र के प्रमुख आचार्य एवं उनके ग्रन्थों का भली भाँति अध्ययन किया। ज्योतिषशास्त्र भारतीय विद्या का महत्वपूर्ण अंग है। वेदों में विहित कर्मानुष्ठान का समुचित काल जानने के लिए ज्योतिषशास्त्र का उपयोग होता है।वेदपुरुष के छः प्रधान अंग हैं- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त और ज्योतिष इन छः अंगों में ज्योतिषशास्त्र को वेदपुरुष का नेत्र कहा गया है-

ज्योतिषं नेत्रमुच्यते ।ज्योतिषशास्त्र को ज्योतिःशास्त्र भी कहते हैं। जिसका अर्थ है- प्रकाश देने वाला या प्रकाश के सम्बन्ध में बतलाने वाला शास्त्र ।यह शास्त्र व्यवहार के लिए अत्यन्त उपयोगी है। जैसे दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, अयन, ऋतु, वर्ष एवं उत्सवतिथि आदि का परिज्ञान इसी शास्त्र से होता है। यदि मानव समाज को इस शास्त्र का ज्ञान न हो तो धार्मिक उत्सव, सामाजिक त्यौहार, महापुरुषों के जन्मदिन, अपनी प्राचीन-गौरव-गाथा का इतिहास और किसी भी बात का ठीक-ठीक पता न लग सकेगा। न ही उचित कृत्य यथासमय सम्पन्न किये जा सकेंगे। ज्योतिष के ज्ञाताओं के साथ-साथ भारतीय कृषक भी व्यवहारोपयोगी ज्योतिष ज्ञान से परिचित होते हैं ।ज्योतिषशास्त्र मानव के लिए प्रत्येक क्षेत्र में सहयोगी एवं कल्याणकारी है। इसका सम्बन्ध मनुष्य के जन्म-जन्मान्तरों से जुड़ा हुआ है। अतः ज्ञात-अज्ञात में भी निरन्तर ज्योतिषशास्त्र किसी न किसी रूप में प्रभावित करता रहता है। ज्योतिषशास्त्र रूपी ज्ञान गांगा तीन धाराओं में बह रही हैं। इसीलिए उन्हें त्रिपथगा या स्कन्धत्रय भी कहा जाता है। ज्योतिषशास्त्र के वे तीन स्कन्ध हैं- सिद्धान्त, संहिता और होरा अथवा स्कन्धपंच होरा, सिद्धान्त, संहिता, प्रश्न और शकुन ये अंग माने गये हैं ।ज्योतिषशास्त्र रूपी ज्ञान गङ्गा को सम्पूर्ण विश्व में फैलाने में अनेक आचार्यों का योगदान सदियों से रहा है और आगे भी रहेगा। क्योंकि ज्योतिषशास्त्र एक विज्ञान है, और विज्ञान सार्वभौम होता है।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

- वेदांग - वेद के अंगभूतशास्त्र
- प्रणम्य - अभिवादन करके
- नवीन - नया
- अपेक्षा - तुलना में
- आविष्कार - नव निर्माण
- प्रतिपादन - निरूपण, अच्छी तरह समझाना
- मौलिक - वास्तविक, मूल
- संशोधन - शुद्ध करना, ठीक करना
- संकलन - एकत्रीकरण
- अर्वाचीन - आधुनिक, नया
- भूगर्भ - पृथ्वी का भीतरी भाग

अभ्यास प्रश्न 1

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिए।

1.'कालविधान' कहा जाता है।

(क) व्याकरण (ख) निरुक्त

(ग) ज्योतिष (घ) साहित्य

2. ज्योतिषशास्त्र को वेदपुरुष कौन सा अंग है ?

(क) चक्षु (ख) मुख

(ग) पाद (घ) इनमे से कोई नहीं

3. ज्योतिषशास्त्र के कितने स्कन्ध हैं ?
(क) दो (ख) तीन
(ग) चार (घ) पाँच

4. 'पञ्चसिद्धान्तिका' ग्रन्थ के रचयिता हैं।
(क) आर्यभट्ट (ख) वराहमिहिर
(ग) भास्कराचार्य (घ) ब्रह्मगुप्त

5. 'सिद्धान्तशिरोमणि'ग्रन्थ के प्रवर्तक हैं।
(क) आर्यभट्ट (ख) वराहमिहिर
(ग) ब्रह्मगुप्त (घ) भास्कराचार्य

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक के रूप में--------आचार्यो का नामतः उल्लेख प्राप्त होता है।
2. आचार्य ब्रह्मगुप्त का जन्म वर्तमान पंजाब के अन्तर्गत----------नामक स्थान में हुआ।
3.जिस शास्त्र से संसार का मर्म, जीवन-मरण का रहस्य और जीवन के सुख-दुख के सम्बन्ध में पूर्ण प्रकाश मिले वह ------------ शास्त्र है।
4. तत्काल फल बताने वाला शास्त्र जिसमें प्रश्नकर्ता के उच्चारित अक्षरों पर से फल का प्रतिपादन किया जाता है, वह --------- शास्त्र है।
5.ज्योतिषशास्त्र का क्रमबद्ध इतिहास आचार्य ---------- के समय से मिलता है।

(3) सही गलत का चयन कीजिए।

1.आचार्य ब्रह्मगुप्त ने 'ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त' ग्रन्थ के अतरिक्त ६७ वर्ष की अवस्था में 'खण्डखाद्यक'नामक एक करण ग्रन्थ भी बनाया था। ( )
2. लल्लाचार्य के पिता का नाम भट्टत्रिविक्रम और पितामह का नाम शाम्ब था। ( )
3. भास्कराचार्य व्याकरणशास्त्र के असाधारण विद्वान हुए हैं। ( )
4. आचार्य लगध वैदिक ज्ञान-विज्ञान के ज्ञाता थे। इनकी विश्व प्रसिद्ध रचना 'वेदांगज्योतिष' है। ( )
5. अथर्व ज्योतिष में फलित ज्योतिष की अनेक महत्वपूर्ण बातें हैं। ( )

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग, क, ग, ख, घ
2. अट्ठारह, भिलनालका, ज्योतिषशास्त्र, प्रश्नशास्त्र, आर्यभट्ट
3. सही, सही, गलत, सही, सही

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय ज्योतिष, लेखक नेमिचन्द्र शास्त्री
2. भारतीय ज्योतिष, लेखक श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित की मराठी पुस्तक का अनुवाद, अनुवादक शिवनाथ झारखण्डी
3. फलित राजेन्द्र, लेखक ब्रजेश पाठक 'ज्योतिषाचार्य'
4. वृहत्पाराशरहोराशास्त्रम् टीकाकार पण्डित पद्मनाभ शर्मा
5. सुलभ ज्योतिष ज्ञान, पं वासुदेव सदाशिव खानखोजे
6. ज्योतिष विज्ञान, लेखक डॉ हरिकृष्ण छंगाणी

7. आचार्यभास्कर
8. संस्कृत साहित्य का इतिहास, लेखक डॉ उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आचार्य आर्यभट्ट का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. आचार्य लगध का परिचय दीजिए।
3. ज्योतिषशास्त्र के महत्व का वर्णन कीजिए।
4. ज्योतिषशास्त्र की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

इकाई.3 राशि एवं ग्रह परिचय

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 राशि एवं ग्रहों का स्वरूप एवं परिचय
3.4 राशि एवं ग्रहों की खगोलीय संरचना का परिचय
3.5 ग्रहों की खगोलीय स्थिति का परिचय
3.6 राशि स्वरूप एवं आकाशीय संरचना
3.7 फलदीपिका के अनुसार ग्रहों का स्वरुप
3.8 वृहजातक के अनुसार नवग्रह का स्वरुप
3.9 सारांश
3.10 पारिभाषिक शब्दावली
3.11अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.13 निबंधात्मक प्रश्न

3.1प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों!

प्रस्तुत इकाई "राशि एवं ग्रह परिचय" से सम्बन्धित है। भारतीयज्ञान-विज्ञान की परम्परा में वेद ही प्रमाण के रूप में माने गये हैं। षडगों में ज्योतिष शास्त्र को ही वेद पुरूष का नेत्र माना गया है।जिसे काल के रूप में जाना जा सकता है। खगोल में असख्य पिण्डों में राशियों के स्वरूप के दर्शन होते रहते हैं। ऐसे में एक स्वाभाविक प्रश्न भी उठता है कि राशियों की उत्पत्ति और उत्पत्ति का आधार क्या हो सकता है?राशियों तथा ग्रहों का मानव समाज पर पड़ने वाला प्रभाव जन्मराशि के आधार पर जातक के जीवन में अनेकानेक फल घटित होता है।जन्म राशि के आधार पर तथा कुंडली के द्वारादशाओ के माध्यम से उस जातक को जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत विपरीत फल की प्राप्ति होती रहती है। राशियों और ग्रहों का परस्पर सम्बन्ध एवं आधार क्या है? लग्नादि द्वादशभावों में क्या क्या स्वरूप होगा? ग्रहों का भौतिक स्वरूप क्या और कैसा होता है? मानव समाज के लिए ग्रह भाग्य के निर्माता हैं, अथवा मानव के भाग्य में घटित होने वाली शुभाशुभ घटनाएँ ग्रहों द्वारा होती रहती है। हम सभी यहाँ पर समस्त विषयों का विस्तृत रूप से इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- ज्योतिषशास्त्र में वर्णित राशि एवं ग्रह का क्या प्रभाव होता है?इससे परिचित हो सकेंगे।
- राशि एवं ग्रहों की खगोलीय स्थिति का ज्ञान कर सकेंगे।
- ग्रहों के स्वरूप से अवगत हो सकेंगे।
- मेषादि राशियों के स्वरूप को बता सकेंगे।
- मेषादि राशियों के वर्ण प्रकृति का ज्ञान कर सकेंगे।

3.3 राशि एवं ग्रह का स्वरूप

भारतीय ज्ञान-विज्ञान की परम्परा के अनुसार वेद ही सर्वोपरि है। महर्षि मनु ने कहा हैकि-मानव के जीवन में धर्म का आधार वेद है।**"वेदोऽखिलः धर्ममूलम्"**। वेद ईश्वर का निःश्वास भूत है। जो प्राणियों को आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक त्रिविध कष्टों का उद्धारक तथा पुरुषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का पथप्रदर्शक है। वेद में हीजगत का संपूर्ण ज्ञान-विज्ञान समाहित है। इसी वेद के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए षड्वेदांगशास्त्र को प्रकट किया गया है। इन षड् वेदांग शास्त्रों में ज्योतिष शास्त्र को नेत्र के रूप में महत्वपूर्ण माना गया है। इसी क्रम में महर्षि लगध ने इसे काल का ज्ञापक या कालविधानशास्त्र भी कहा है। इसका प्रधान प्रतिपाद्य विषय काल को ही माना है। नारद संहिता के अनुसार ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त, संहिता, होरा तीन प्रधान स्कन्ध जो त्रिस्कंध के नाम से भी जाना जाता है। आचार्य वराहमिहिर ने भी **"अनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितम्'** कहकर अनेकों भेदों में प्रमुख तीन भेदों को स्वीकार किया है। सिद्धान्त स्कन्ध में ग्रहों की गति, स्थिति, युति, ग्रहयुद्ध, ग्रहण इत्यादि समस्त विषय समाहित रहते है। संहिताशास्त्र के द्वारा सम्पूर्ण भूगर्भीय, भूमण्डलीय, खगोलीय, भूगोलीय, दिग्देश, दशा, काल में होने वाले समष्टि गत फलों का विवेचन समाहित रहता हैं। होराशास्त्र के द्वारा जातक के जन्म जन्मान्तर कृत कर्मों के द्वारा वर्तमान समय में प्राप्त होने वाले शुभाशुभ फलों

का विवेचन एवं वर्तमान समय में प्राप्त होने वाले तथा भविष्य में प्राप्त होने वाले शुभाशुभ कर्मों को जानने की विधि, दशाएँ विशोतरी, अष्टोत्तरी, योगिनी आदि ग्रहों का भौतिक स्वरूप एवं राशियों का भौतिक स्वरूप, राशियों और ग्रहो द्वारा भूमण्डल वासियों को प्राप्त होने वाले गुण-दोष आदि का विस्तृत रूप से फलादेश किया जाता है।ज्योतिष शास्त्र के अष्टादश आचार्यों ने अपने अपने विवेक के अनुसार अपने अलग अलग मत राशियो और ग्रहों के स्वरूप का वर्णन किया हैं।अन्तः दृष्टि से पृथक् पृथक् आचार्यों द्वारा वर्णित पृथक-पृथक ग्रन्थों का अवलोकन करना एवं अध्ययन करना ही इस विषय के ज्ञान के लिए श्रेष्ट रहेगा। ज्योतिष जगत में राशियाँ, ग्रह, नक्षत्र, एक श्रेष्ठ दैवज्ञ के लिए विस्तृत रूप से ज्ञान प्राप्त करना उनके स्वरूप को जानना, उनके आन्तरिक एवं बाह्य स्वरूप का बोध होना परमावश्यक हैं। राशि एवं ग्रह के द्वारा ही जातक के भविष्य का सही निर्धारण किया जा सकता हैं। जिससे की उस जातक के मार्ग में आने वाली परिस्थितियों का निवारण किया जा सके। शास्त्रों का अध्ययन करने से ज्ञात होता हैं की ग्रहों के प्रभाव से ही जीवन में उतार चढाव की समस्याए बनती रहती है।

3.4 राशि एवं ग्रहों की खगोलीय संरचना कापरिचय

सृष्टि के रचना काल से ही मनुष्य के मस्तिष्क में इस प्रकार के असंख्य प्रश्न आए होंगे। मानव ने सर्वप्रथम जब आकाश की ओर दृष्टिपात किया होगा तो आश्चर्यचकित होकर अपने अभिभावकों से इस प्रकार के प्रश्न प्रायः आज पूछता होगा कियह रात्रि में चमकने वाला गोलाकार पिण्ड क्या है ? दिन में चमकने वाला सूर्य क्या है? रात्रि में टिमटिमाने वाले असंख्य छोटे-छोटे चमकने वाले बिन्दु क्या है? ये कहाँ से दिखाई देते होंगे और कहाँ लुप्त हो जाते होंगे। इनका घर परिवार इनकी उत्पत्ति का आधार या कारण क्या है?ये सभी प्रश्न समस्त प्रश्न आज भी मानव मस्तिष्क में विद्यमान है।इन सभी उपर्युक्त प्रश्नों का समाधान केवल ज्योतिष शास्त्र के द्वारा होना ही संभव है।

खगोलीय मंडल में जब हम देखते हैतो रात्रि में हमें असंख्य तारे चमचमाते दिखाई देते है। इन्ही असंख्य तारों में राशिया तथा ग्रह भी उपस्थित होंगे, इनके अलावा उपग्रह तथा कुछ क्षुद्रग्रह भी होते होंगे। वस्तुतः नीलगगन को हम देखते हैं उसके चारों ओर दृष्टिपात करते हैं तो हमें एक बृहद् गोल दिखाई पड़ता है। यह बृहद् गोल आपको सर्वत्र एक जैसा गोलाकार दिखाई देगा। इस गोल को देखने के लिए आप चाहे देश के अथवा विदेश के किसी भी स्थान में जाएँ सर्वत्र आपको गोल ही दिखाई देगा। इसी बृहद्गोल का सिद्धान्त ज्योतिष शास्त्र में खगोल नाम से प्रचलित है। जो 'ख' अक्षर अर्थात् शून्य अर्थात् खगोल का अर्थ हुआशून्य की तरह आकाश गोल है। आकाश के खगोल होने पर राशियों के स्वरूप को विस्तृत रूप से जान सकते हैं।जानने से पूर्व हमे यह भी समझ लेना आवश्यक होगा कि राशियों कहाँ अवस्थित है? और किस स्थिति में है राशिया इस बृहद्गोलाकार के चारों ओर स्थित हैं, लेकिन आप उनकोआँख से नहीं देख सकते। इनको देखने के लिए आपको दूरदर्शी यन्त्र अथवा टेलिस्कोप का सहारा लेना होता है।इन राशियो को भूमण्डल के किसी भी कोने से देख सकते है।गोल नाम की आकृति हो या छोटा या बड़ा गोल हो इन सभी का मान 360° अंश ही रहता है। इस प्रकार से 360 अंशों के इस बृहद्गोल को12 बराबर भागों में विभाजित किया जाता है,जिसका प्रत्येक भाग का परिमाण 30° अंश होता है। और अब प्रत्येक भाग का विचार करें तो एक भाग में असंख्य छोटे-बड़े तारों का समूह व्याप्त है और प्रत्येक भाग को जब आप सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से देखते हैं तो प्रत्येक भाग की

आकृति भिन्न भिन्न रूप से दृग्गोचर होती है। इसी प्रतिकृति तथा गुण-दोषों के आधार पर राशियों का नामकरण किया गया है। जैसे मेष राशि का विचार करें तो 0 से 30 अंश तक का परिक्षेत्र आकाश में मेढा के आकार प्रकार के सदृश दिखलाई पड़ता हैं। और उनके गुण धर्मो के विषय में यदि और अधिक जानकारी प्राप्त करेंगे तो उस मेढे के समस्त गुण-दोष, आकार-प्रकार, शारीरिक स्वरूप एवं आन्तरिक, मानसिक समस्त गतिविधियों उसके अन्दर विद्यमान रहती हैं। इन सभी को आधार मानकर दैवज्ञ पुरूष अनुमान करते रहते हैं, जिसका आंकलन सही ज्ञात होता हैं।अब हम राशियों के स्वरुप को जानते हैं। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार काल पुरूष के अंग में मेषादि द्वादश राशियों का मस्तक,मुख,बाहु,हृदय, उदर,कटी, बस्ति,लिंग,जंघा, घुटना, पाद, इत्यादि स्थानों में राशियों का स्थान होने से जातक को इसी प्रकार के फल की प्राप्ति कराता है।

रक्तवर्णो बृहद्गात्रश्चतुष्पादात्रिविक्रमी ।
पूर्ववासी नृपज्ञात्तिः शैलचारी रजोगुणी।
पृष्ठोदयी पावकी च मेषराशिः कुजाधिपः।

मेष का स्वरुप— मेष का स्वरुप रक्त वर्ण, लंबा शरीर, चार पैर वाला, रात्रि में बली, पूर्व में रहने वाला, क्षत्रिय जाति, पर्वत पर विचरण करने वाला, रजोगुणी, पृष्ठोदयी एवं अधिकतर पर्वतीय प्रदेशों में विचरण करने वाली हरियाली के पीछे भागने वाली अर्थात् प्रकृति प्रेमी, सुन्दर, स्वच्छ वातावरण में निवास करना मेष राशि का प्राकृतिक गुण है। मेष राशि जातक के गुण-दोष, आकारअग्नितत्त्वात्मक- होने के साथ साथ यह मेष राशि का स्वरूप होता हैं। इसका अधिपति भौम है।

श्वेतः शुक्राधिपो दीर्घश्चतुष्पाच्छर्वरी बली।
याम्येद् ग्राम्यो वणिग्भूमिरजः पृष्ठोदयी वृषः ।

वृष राशिका स्वरुप—वृष राशि सफेद वर्ण, दीर्घ शरीर, चतुष्पाद, रात्रिबली, दक्षिण दिशा का निवासी, ग्राम में घूमने वाला, वैश्य जाति, भूमि तत्त्व, रजोगुणी और पृष्ठोदयी होता हैं। वृष असंख्य तारागणों के समूह के द्वारा बनने वाली आकृति एक विशालकाय वृषभ के समान दिखाई देती हैं। वृषभ के प्रत्येक अंग एवं बाह्य आकार-प्रकार का विचार करें तो वृषभ की आँखें गोल, और सुन्दरता लिए हुए, दोनों पाद लम्बी पतली, स्कन्ध मजबूत, शरीर बलिष्ठता लिए हुए सात्विक प्रवृतियुक्त होता है। इसका स्वामीशुक्र है।

शीर्षोदयी नृमिथुनं सगदं च सवीणकम् ।
त्यग्वायुर्द्विपाद्रात्रिबली ग्रामव्रजोऽनिली ।।
समगात्रो हरिद्वर्णो मिथुनाख्यो बुधाधिपः।

मिथुन राशिका स्वरुप—मिथुन राशि शीर्षोदयी, गदा और वीणायुक्त पुरुष-स्त्री की जोड़ी. पश्चिम दिशा का निवासी, वायु तत्त्व, द्विपदी, रात्रिबली, ग्राम में रहने वाला, वायुप्रकृतिक, समान शरीर वाला और हरित वर्ण का होता हैं।जिस जातक की मिथुन राशि होगी वह द्विस्वभाव युक्त, दो प्रकृतियों से युक्त, तथा पत्नी-पति दोनों का परस्पर परमकाष्ठा का प्रेम होता हैं। मिथुन राशि का अधिपति बुध होता है। अब हम कर्क राशि का विचार करते हैं। जिसे जलचरराशि भी कहा जाता हैं। कर्क राशि का स्वरुप।

पाटलो वनचारी च ब्राह्मणो निशि वीर्यवान् ।
बहुपादचरः स्थौल्यतनुः सत्त्वगुणी जली ।
पृष्ठोदयी कर्कराशिर्मृगांकाऽधिपतिः स्मृतः ।।

कर्क राशिका स्वरुप—कर्क राशि का स्वरूप पाटल (श्वेतरक्तस्तु पाटलः) वर्ण, वनचारी, विप्रवर्ण, रात्रि में बली, अधिक पैर वाला, स्थूल शरीर, सत्त्वगुणी, जल तत्त्व वाला तथा जो केकड़ा के सामान दिखाई पड़ने वाला पत्थर के नीचे छुपकर जो जल के आस-पास निवास करता हैं। इस प्रकार के जातकों की प्रकृति भी कुछ इस प्रकार की ही होती है। जिसका अधिपति चंद्रमा होता है।

सिंह सूर्याधिपः सत्त्वी चतुष्पात् क्षत्रियो वनी।

शीर्षोदयी बृहद्गात्र पाण्डुः पूर्वेद द्युवीर्यवान् ।

सिंह राशिका स्वरुप—सिंह राशि का स्वरूप सत्त्वगुणी, चतुष्पाद, क्षत्रिय, वनचारी, शीर्षोदयी, दीर्घ शरीर, पीला वर्ग, पूर्व दिशा का अधिपति और दिवाबली होता हैं। सिंह राशि वाले जातकों का स्वभिमान सिंह की तरह , राजा के समान गुण, तथा सिंह में पाए जाने वाले सभी गुण-दोष सिंह राशि वाले जातकों में पाए जाते हैं। सिह राशि का स्वामी सूर्य होता है।अब कन्या राशि के स्वरुप का विचार करते हैं ।

पार्वतीयाथ कन्याख्या राशिर्दिनबलान्विता ।

शीर्षोदया च मध्यांग द्विपद्याम्यचरा च सा ।।

सा सस्यदहना वैश्या चित्रवर्णा प्रभंजिनी।

कुमारी तमसा युक्ता बालभावा बुधाधिपा ।।

कन्या राशिका स्वरुप—पर्वत पर घूमने वाला, दिवाबली, शीर्षोदयी, मध्यम शरीर वाला, द्विपदी, दक्षिण में रहने वाला, अन्न सहित, अग्नि हाथ में रखने वाला, वैश्य जाति, अनेक वर्ण, वायु तत्त्व, कुमारी एवं तमोगुणी कन्या राशि एक नवोढा बालिका के समान दिखाई देती हैं। जिसने मस्तक के उपर आग की टोकरी धारण किया है। जो द्विस्वभाव वाली, शान्तचित, जब कभी उग्र होती है। तो कामरूपी भस्म करने की शक्ति रखती है। कन्या राशि सामानजस्य स्थापित करने में अहम भूमिका रखती है। ठीक इसी प्रकार से कन्या राशि वाले जातकों के स्वभाव के विषय में जानना चाहिए।कन्या का अधिपति बुध होता है।

शीर्षोदयी द्युवीर्यादयोऽतुलः कृष्णो रजोगुणी।

पश्चिमो भूचरो घाती शूद्रो मध्यतनुर्द्विपात् ।।

तुला राशिका स्वरुप—तुला राशि शीर्षोदयी, दिनबली, कृष्ण वर्ण, रजोगुणी, पश्चिम में रहने वाला, भूमि में विचरण करने वाला, हिंसक, शूद्र जाति एवं मध्यम शरीर वाला ऐसा तुला राशि का स्वरूप कहा गया है इसका स्वामी शुक्र होता है।तुला राशि को धर्म का प्रतीक भी कहा गया हैं। तुलाराशि वाले जातक प्रायः प्रत्येक विषय में तोल तोल कर निष्कर्ष निकालने वाला और प्रत्येक कार्य में अपना स्वार्थ सिद्ध करने वाला तथा कन्या राशि का स्वामी शुक्र होता है।

स्वल्पांगो बहुपाद् ब्राहाणो बली।

सौम्यस्थो दिनवीर्याढयः पिशंगो जलभूवहः ।।

रोमस्वाढ्यतितीक्ष्णाग्रो वृश्चिकश्च कुजाधिपः।

वृश्चिक राशिका स्वरुप—स्वल्प शरीर वाला, बहुपाद, विप्र जाति, छिद्र में रहने वाला, उत्तर दिशा में विचरण करने वाला, दिवाबली, पिशंग वर्ण, जल तत्त्व, भूमि तत्त्व, अधिक रोमयुक्त, तीक्ष्ण अग्रिम भाग वाला वृश्चिक राशि का स्वरूप कहा गया है।वृश्चिक एक प्रकार का छुपा हुआ जीव है। समय आने पर प्रहार करता है। वैसे शान्त चित्त स्थिर रहता है।इसी प्रकार से

वृश्चिक राशि वाले जातकों का स्वभाव भी इसी प्रकार दिखाई पड़ता हैं।जो समय आने पर किसी अन्य व्यक्ति पर प्रहार करते हैं। अब धनु राशि का विचार किया जा रहा हैं।

पृष्ठोदयी त्वथ धनुर्गुस्वामी च सात्त्विकः ।
पिंगलो निशिवीर्यादयः पावकः क्षत्रियो द्विपात् ।
आदांवन्ते चतुष्णादः समगात्रो धनुर्धरः ।।
पूर्वस्थो वसुधाचारी तेजस्वी ब्रह्मणाः कृतः ।

धनु राशिका स्वरुप— धनु पृष्ठोदयी सत्वगुणी पिंगल वर्ण, रात्रि में बली, अग्नि तत्व, क्षत्रिय, पूर्वार्द्ध (15 अंश में द्विपाद उतरा 16-30 अंश) में चतुष्पाद सम शरीर धनुष धारण करने वाला, पूर्व दिशा में रहने वाला, भूमिचारी, तेजस्वी और गुरु स्वामी वाला धनु राशि होता है। धनु राशि का पूर्व का 15 अंश वाला भाग पुरुष का होता हैं,और 15° अश के उतर वाला भाग अश्व कहलाता हैं।इस प्रकार के जातक दो मानसिक विचारवाले होते है। पहले 15 अंश तक की स्थिति में एक सामान्य मानव की तरह व्यवहार करते हैं परन्तु दूसरी स्थिति में वह अपने बाहुबल का प्रयोग करते हुए समय स्थिति के अनुसार प्रहार करते रहते हैं।

मन्दाधिपस्तमी भौमी याम्येत च निशि वीर्यवान्।
पृष्ठोदयी बृहद्गात्रः कर्बुरो वनभूचरः।
आदौ चतुष्पदोऽन्ते तु विपदो जलगो मतः।।

मकर राशिका स्वरुप— मकर राशि का स्वरुप तमोगुणी, भूतत्त्व, दक्षिण दिशा में रहने वाला, रात्रिबली, पृष्ठोदयी, दीर्घ शरीर चित्र वर्ण, वन एवं भूचारी, पूर्वार्द्ध में चतुष्पाद, उत्तरार्द्ध में पैर से हीन, जलचर और स्वामी शनि हैं।मकर राशि का पूर्वार्धभाग बाहर एवं उत्तरार्धभाग जलचर में रहता हैं।आकाश तत्त्व व जलतत्त्व की प्रधानता लिए हुए है।

कुम्भकुम्भी नरो बभ्रुवर्णो मध्यतनुर्द्विपात् ।
द्युवीर्यो जलमध्यस्थो वातशीर्षोदयी तमः ।।
शूद्रः पश्चिमदेशस्य स्वामी दैवाकरिः स्मृतः ।

कुम्भ राशिका स्वरुप—कुम्भ का स्वरुप घड़ा धारण किया हुआ पुरुष, भूरा वर्ण, मध्यम शरीर वाला, पैर से हीन, दिवाबली, जलचारी, वायु तत्त्वच, शीर्षोदयी, तमोगुणी, शूद्र जाति, पश्चिम दिशाधिप और स्वामी शनि-ऐसा कुम्भ राशि का स्वरूप कहा गया है।कुम्भराशि की स्थिरता धारण किए हुए जलपूर्ण घट है। आकार-प्रकार सामान्य है। अतः आकार-प्रकार एवं स्थिरता की द्योतक राशि के गुण धर्म कुम्भराशि वाले जातको में मिलते रहते हैं।

मीनौ पुच्छास्यसंलग्नौ मीनराशिर्दिवाबली।
जली तत्त्वगुणाढ्यश्च स्वस्थो जलचरो द्विजः।
अपदो मध्यदेही च सौम्यस्थो ह्युभयोदयी ।।
सुराचार्याधिपश्चेति राशीनां गदिता गुणाः।
त्रिंशद्भागात्मकानां च स्थूलसूक्ष्मफलाय च ।।

मीनराशिका स्वरुप—जिसका स्वरुप मुख-पुच्छ मिले हुए दो मछली, दिन में बली, जल तत्त्व, सत्त्वगुणयुक्त, स्वस्थ, जलचारी, विप्र जाति, पैर से हीन, मध्यम शरीर, उत्तर दिशाधिप, उभयोदयी एवं स्वामी गुरु-ऐसा मीन राशि का स्वरूप कहा गया है। इस प्रकार 30 अंशात्मक राशियों का स्वरूप स्थूल तथा सूक्ष्म फलादेश हेतु कहा गया है।मीन राशि की स्थिति एक जलचर राशि की है सुन्दरतायुक्त, द्विस्वभावयुक्त और जल में जीवन को धारण करने वाली है। इस राशि के जातक

द्विस्वभाव युक्त, पानी के किनारे या पानी सम्बन्धित खाद्य पेय तथा झरने, झीलें, समुद्री किनारा इनके लिए रुचिकर होते हैं। इसी प्रकार से हमें राशियों के भौतिक स्वरूप के विषय में ज्ञान ग्रहण करने के उपरान्त जातकों के गुण-दोष-धर्म का विचार करना चाहिए।

3.5 ग्रहों की खगोलीय स्थिति

अब राशि एवं ग्रहों की खगोलीय स्थिति एवं संरचना के बारे में विचार किया जा रहा है। ग्रहों के रूप में इनके प्रभाव को लेकरभारतीय ज्योतिष शास्त्र में सात प्रमुख ग्रहों के अतिरिक्त राहु व केतु को दो छाया ग्रहों के रूप में मान्यता प्राप्त है। आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा केवल नैप्च्यून, प्लूटो आदि को मान्यता दी गई है।भारतीय ज्योतिष सौर परिवार में आज के दिन तक इन ग्रहों को मान्यता प्राप्त नहीं हुई है। भारतीय ज्योतिष में राशियों के साथ इनका सामंजस्य स्थापित नहीं किया जा सकता। ग्रहों और राशियों का परस्पर सयोग होने से व्यक्ति प्रभावित होता है। और उसी के आधार पर भारतीय ज्योतिष शुभाशुभत्व के विषय में युगों से अपना योगदान प्रदान करताआ रहा हैं। ज्योतिष शास्त्र में 30° अश की राशि का भोग काल होता है। इसी क्रम से 360 अंशों को 12 राशियों में विभाजित किया गया है जिसके फलस्वरूप सूर्य और चन्द्रमा को छोड़कर प्रत्येक ग्रह की दो राशियों का अधिपति ग्रह माना गया है। सूर्य और चन्द्रमा ग्रह का आकलन भौतिक दृष्टि से कुछ इस प्रकार से है। ग्रहों में सूर्य को राजा की संज्ञा प्राप्त है। आकाश के केन्द्र में राजा के समान सभी ग्रहों, नक्षत्रों, राशियों का नेतृत्त्व करता है। अहर्निशं सेवामहे के भाव के साथ एक क्षण के लिए भी विराम नहीं और अत्यधिक उर्जा एवं तेज को धारण किए हुए पृथ्वी वासियों के लिए दिन और रात्रि का द्योतक है। इसलिए प्रत्येक क्रियाकलाप में भौतिक जगत सूर्य के उपर आश्रित है। सूर्यांश पुरुष ने सूर्यसिद्धान्त में मयासुर संवाद में इस विषय को वर्णित किया है।कहा गया है कि-

न मे तेजस्सहः कश्चिदाख्यातुं नास्ति मे क्षणः।
मदंशः पुरुषः अयम् ते निश्शेषं कथयिष्यति।।

आकाश में पूर्वाभिमुख चलते हुए जो ज्योतिर्विम्ब देखे जाते हैं वे प्रत्येक नक्षत्रों का भोग करते रहते हैं। भवतुल्य 27 विभाग अश्विनी नक्षत्र से लेकर रेवती तक कर लेना चाहिए और उसी के 12 भागों में मेषादि 12 राशियां प्रसिद्ध है। राशियों का उदय लग्न के नाम से जाना जाता हैं। और उसके वहीं के संयोग-वियोग द्वारा जातक का शुभाशुभ फल अवगत किया जाता है।

संज्ञा नक्षत्रवृन्दानां ज्ञेयाः सामान्यशास्त्रतः।
एतच्छास्त्रानुसारेण राशिखेटफलं बुवे ।।

अश्विन्यादि नक्षत्रों की चर स्थिर, द्विस्वभाव, क्रूर, अकूर, धातु, वर्ण आदि संज्ञाओं को सामान्य शास्त्रों से जानना चाहिए। इस शास्त्र में राशि और ग्रहों के शुभाशुभ फल को बताया जा रहा है। तेज को धारण किए हुए सूर्य ग्रह का स्वरुप अलग ही दिखाई पड़ता है। सूर्य जीवन प्रदाता है। यह सिंह राशि का स्वामी ग्रह है। इसलिए स्वयं सूर्य तेजयुक्त होने के फलस्वरूप सिंह राशि का नेतृत्त्व करता है। यही कारण है कि सिंह राशि के जातकों में स्वाभिमान की प्रवृत्ति और क्रूरता देखने को मिलती है। सूर्य ग्रह चतुरस्राकार है। पित्त प्रकृति है। उष्ण स्वभाव है। स्थिरराशि का स्वामी ग्रह है वस्तुतः सामान्य व्यवहार में सूर्य आकाश में चलायमान ग्रह प्रतीत होता है परन्तु सूर्य स्थिर है और भूमण्डल चलायमान होने के फलस्वरूप इस प्रकार से आकाशीय स्थिति दृग्गोचर होती है।चन्द्रमा ग्रहों में स्त्री कारक ग्रह है। कर्क राशि का स्वामी चन्द्रमा ग्रह है। यह चंचलता करने

वाला ग्रह है। अत्यधिक सुन्दरता का कारक ग्रह, स्त्रियों के गुण दोष से युक्त चंचल ग्रह हैं। सूर्य और चन्द्रमा का परस्पर सम्बन्ध मित्रता पूर्ण है। यह मित्रता कोई तात्कालिक नहीं अपितु नैसर्गिक है। शरीर में मन का नेतृत्त्व यह ग्रह करता हैं। जैसे शरीर में आत्मा का नेतृत्त्व सूर्य ग्रह करता है जिसे आत्मकरक ग्रह भी कहा जाता है।

सर्वात्मा च दिवानाथो मनः कुमुदबान्धवः
सत्त्वं कुजो बुधैः प्रोक्तो बुधो वाणीप्रदायकः ।।
देवेज्यो ज्ञानसुखदो भृगुर्वीर्यप्रदायकः ।
ऋषिभिः प्राक्तनैः प्रोक्तश्छायासूनुश्च दुःखदः ।।
रविचन्द्रौ तु राजानौ नेता ज्ञेयो धरात्मजः ।
बुधो राजकुमारश्च सचिवौ गुरुभार्गवौ ।।
प्रेष्यको रविपुत्रश्च सेना स्वर्भानुपुच्छकौ।
एवं क्रमेण वै विप्र सूर्यादीन् प्रविचिन्तयेत् ।।

ठीक उसी प्रकार से तन-मन मे पूर्ण प्रतिनिधित्व चन्द्रमा का है। सवा दो दिन के अन्तराल में राशि परिवर्तन का योग चन्द ग्रह बनता है। सूर्य चन्द्रमा कभी भी वक्रगामी नहीं होते है। चन्द्रमा का शरीर चतुरस्राकार, गोलमुख, अतिसुन्दर स्वरुप को धारण किए हुए शुक्लपक्ष में बलहीन और कृष्ण पक्ष में बललीन रहता है। इसलिए शुक्लपक्ष में पूर्ण प्रभाव युक्त होता है। वृषराशि के 30 अंशों तक इस ग्रह का पूर्ण अधिकार है। कभी कभी ग्रह गत्ति स्थिति वशात् पूर्णिमा को दोनों पिण्डों की स्थिति के अनुसार चन्द्रग्रहण की सम्भावना होती रहती है।चन्द्रमा को तीव्र गति कारक ग्रह भी कहा गया हैं। जो शीत प्रकृति होने के कारण कफ का कारक ग्रह भी माना गया हैं। मंगल ग्रह को भूसुत, भूमिपुत्र, भूमितनय इत्यादि नामों से जाना जाता रहा है। आकाश में स्थित यह ग्रह क्रूर प्रकृति का माना जाता है।पित्त प्रकृति वाले ग्रहों मे सेनापति का नेतृत्त्व करने वाला तमो गुणी प्रधान है, शरीर में रुधिर का कारक भी भोम ग्रह को कहा गया है।संहिता ग्रन्थों में भी ऐसे ग्रहों के विषय में उल्लेख प्राप्त होता है कि उत्पात कारक ग्रह जातकों पर इस प्रकार से क्रूरता पूर्ण प्रभाव दृष्टिगोचर करता रहता है। यहाँ पर मंगल ग्रह अपने स्थित स्थान से चौथे और आठवें स्थान को त्रिपाद दृष्टि से देखता है। इसलिए दृष्टि पात स्थान को सगुण दोष धर्म के अनुसार प्रभावित करते है। बुध ग्रह का स्वभाव शान्त, सौम्य प्रकृति युक्त ग्रह है, यह पित्त और वायु का कारक ग्रह भी माना जाता है। अतः वायु कारक होने के फलस्वरूप कफ की प्रकृति को देने वाला है। राशियों में बुध ग्रह का प्रतिनिधित्व मिथुनराशि तथा कन्या राशि का प्रतिनिधि है। अतः मिथुन और बृहस्पति ग्रहों एवं समस्त देवताओं को गुरु की संज्ञा से जाना जाता है। अत्यधिक प्रभाव एवं बृहदाकार स्वरूप युक्त, पीत वर्ण वाला, उर्ध्व दृष्टि वाला, बुद्धिमान कफ प्रकृति से युक्त ग्रह है। इसलिए बृहस्पति आध्यात्म के प्रति समर्पित ग्रह है। धनु और मीन राशियों का भी अधिपति स्वामी ग्रह है।सूर्य, चन्द्र, मंगल ग्रह के साथ गुरु का मैत्री सम्बन्ध रहता है। इस दृष्टि से देखा जाय तो मन, आत्मा और रुधिर पर रक्त के विषय में बृहस्पत्ति का प्रभाव देखा जाता हैं। इसलिए बृहस्पति के अशुभ होने पर जातक धर्मात्मा, ज्ञानवान्, अधिकारी, शिक्षक,अनुवादक समाज सेवक होता हैं। शुक्र ग्रह के स्वरुप का विचार किया जा रहा है। शुक्र ग्रह भौतिक आधुनिक ससाधनों का प्रदाता, स्त्रीकारक ग्रह अथवा स्त्री की प्रकृति वाला, सुन्दर नेत्रों वाला, कफ का कारक वायु प्रकृत्ति युक्त ग्रह, वृष तथा तुला राशियों पर स्वामित्व, वाला ऐसे जातक जो शुक्र ग्रह से प्रभावित होते हैं। वह प्रकृतिप्रेमी, स्त्रीप्रिय, आधुनिक भौतिक सुख

संसाधन, वाहनादि से सम्पन्न होने के साथ साथ, कफ एवं वायु रोग से पीड़ित रहते हैं। इसी प्रकार शनि ग्रह का विचार किया जाता है। जिसे सेवक की संज्ञा के नाम से जाना जाता है। जिस भी जातक का शनि अशुभ चल रहा हो या शनि से प्रभावित जातक मन्द प्रकृतिवाला, आलसी, सिकुड़ा हुआ शरीर, लम्बा चौड़ा शरीर को धारण किए हुए यह ग्रह प्रायः पीडित करता है।राहु और केतु ग्रह को ज्योतिष शास्त्र में छाया ग्रह कहते है। जो व्यक्ति को बार बार पीड़ित करते रहते है। राहु और केतु ग्रहों का आकाशस्थ पिण्ड नहीं दिखाई देता है। इसलिए जिसका पिण्ड नहीं, स्वरूप नहीं उसका प्रभावनही पड़ सकता हैं। परन्तु यहाँ पर देखा जाता हैं कि पिण्ड न होने के कारण भी दोनों ग्रहों का जातकों की कुण्डली पर विशेष प्रभाव से दृग्गोचर का प्रभाव होता है। जिससे व्यक्ति बार बार पीडित होते रहता है। राहु, केतु, ये दोनों छाया ग्रह के नाम से जाने जाते हैं, यह पर इन ग्रहों के ऊपर सूर्य जो कि प्रकाशमान पिण्ड है और चन्दमा जो अप्रकाशक है के द्वारा राहु केतु ग्रह का अस्तित्व में आना राहु केतु के ऊपर भी सूर्य का प्रकाश पड़ता है। इन सभी ग्रहों के स्वरुप का विधि पूर्वक विचार करना आवश्यक होता है।

3.7 फलदीपिका के अनुसार ग्रहों का स्वरुप एवंपरिचय

आचार्य मंत्रेस्वर द्वारा लिखित फलदीपिका नामक ग्रन्थ में तथा जातक शास्त्रों में ग्रहों के स्वरुप का वर्णन किया गया है। जिसके द्वारा व्यक्ति के स्वभाव का ज्ञान किया जाता है।

पित्तास्थिसारोऽल्पकचश्च रक्तश्यामाकृतिः स्यान्मधुपिङ्गलाक्षः ।
कौसुम्भवासाश्चतुरस्रदेहः शूरः प्रचण्डः पृथुवाहुरर्कः॥

सूर्य की प्रकृति पित्त-प्रधान है। यह पुष्ट अस्थियों वाला, अल्पकेशी, रक्ताभ श्यामल वर्ग, मधु (शहद) के समान पिङ्गल नेत्रों से युक्त है। यह रक्ताम्बर प्रिय है अर्थात् लाल वस्त्र धारण करता है। उसका शारीरिक गठन चौकोर है। वह शूरवीर, दीर्घ भुजाओं से युक्त अति प्रचण्ड दिखाई देना ही सूर्य का स्वरुप है।इसी प्रकार से चन्द्र के स्वरुप का ज्ञान किया जाता है।

स्थूलो युवा च स्थविरः कृशः सितः कान्तेक्षणश्चासितसूक्ष्ममूर्धजः।
रक्तैकसारो मृदुवाक् सितांशुको गौरः शशी वातकफात्मको मृदुः॥

चन्द्रमा स्थूल शरीर, युवा और प्रौढ वय, कृशगात्र, सुन्दर आकर्षक नेत्रों और काले छीटे केशों से युक्त, रक्ताधिक्य, मृदुभाषी, श्वेत वस्त्रधारी, गौर वर्ण और वात-कफ प्रधान प्रकृत्ति और अत्यन्त मृदु स्वभाव दिखाई पड़ता है।आगे के क्रम में भौम का स्वरूप और प्रकृति का विचार किया जाता है।

मध्ये कृशः कुञ्चितदीप्तकेशः क्रूरेक्षणः पैत्तिक उग्रबुद्धिः।
रक्ताम्बरो रक्ततनुर्महीजचण्डोऽत्युदारस्तरुणोऽतिमज्जः॥

भौम के शरीर का मध्य भाग (कटि प्रदेश) अत्यन्त क्षीण है। उसके केश चमकीले और घुँघराले है। उसके नेत्रों से क्रूरता झलकती है तथा वह पित्त-प्रधान प्रकृति और उग्र बुद्धि से सम्पन्न है। उसका शरीर रक्त वर्ण का तथा वह रक्त वर्ण के ही वस्त्र धारण करता है। उसके शरीर में मज्जा की अधिकता पाई जाती है। उग्र स्वभाव,के साथ साथ ग्रह के अनुसार भी जातक का स्वाभाव बदल जाता है।

दूर्वालताश्यामतनुस्त्रिधातुमिश्रः सिरावान्मधुरोक्तियुक्तः।
रक्तायताक्षो हरितांशुकस्त्वक्सारो बुधो हास्यरुचिःसमाङ्गः।।

बुध ग्रह दुर्वा के समान हरित श्याम वर्ण, वात-पित्त-कफ मिश्रित प्रकृति, शरीर पर उभरी हुई नसे, मृदु भाषी, दीर्घ रक्ताभ नमन और हरे रंग का वस्त्र धारण करने वाला, विनोदप्रिय और सम शरीरधारी है। धर्म परअधिकार वाला होता है।बृहस्पति का स्वरूप और प्रकृति।

पीतद्युतिः पिङ्गकचेक्षणः स्यात् पीनोन्नतोराश्च बृहच्छरीरः।

कफात्मकः श्रेष्ठमतिः सुरेड्यः सिंहाब्जनादश्च वसुप्रधानः॥

गुरु ग्रह पीत आभा से युक्त, पिङ्गल (भूरे) नेत्र और केश, स्थूल और उभरा हुआ वक्ष, बृहदाकार शरीर ऐसा देवगुरु बृहस्पति का स्वरूप है। वह कफ प्रधान प्रकृति, श्रेष्ठ बुद्धि से युक्त, सिंह और शंख की ध्वनि के समान आवाज तथा धनोत्सुक होता है।शुक्र ग्रह के स्वरुप का वर्णन इस प्रकार किया गया है।

चित्राम्बराकुञ्चितकृष्णाकेशः स्थूलाङ्गदेहश्च कफानिलात्मा।

दूर्वाङ्कुराभः कमनो विशालनेत्री भृगुः साधितशुक्लवृद्धिः॥

शुक्र ग्रह रंग-बिरंगे वस्त्र धारण किये हुये, काले घुँघराले केश, स्थूल अङ्ग,कफ-बायु प्रधान (कफ और वायु तत्त्व पर अधिकार रखने वाला), दुर्वा के अंकुर के समान कान्ति से युक्त, कमनीय, विशाल नेत्रों से युक्त तथा पौरुष शक्तिसम्पन्न होता है अर्थात् पौरुषशक्ति पर शुक्र का अधिकार माना जाता है।अब शनि ग्रह के स्वरूप और प्रकृति का विचार करते है।

पङ्गुर्निम्नविलोचनः कृशतनुर्दीर्घः सिरालोऽलसः।

कृष्णाङ्गः पवनात्मकोऽतिपिशुनः स्नाय्वात्मको निर्घणः॥

मूर्खः स्थूलनखद्विजः परुषरोमाङ्गोऽशुचिस्तामसो।

रौद्रःक्रोधपरो जरापरिणतः कृष्णाम्बरो भास्करिः॥

शनि ग्रह पैर से विकलाङ्ग, सदैव नीचे झुकी आंखे, दुर्बल किन्तु दीर्घ शरीर, नसे उभरी हुई,वायु-प्रधान प्रकृति, आलसी, कृष्ण वर्ण, स्नायुतन्य का अधिकारी, मूर्ख, लम्बे नख और दांत से युक्त, कड़े रुथे रोमावली से युक्त शरीर, मलिन, तामस प्रकृत्ति, क्रोधी, वृद्ध और काले वस्त्र धारण किये हुये शनि ग्रह का स्वरूप दिखाई देता है।व्यक्ति के जीवन में ग्रह के स्वरुप के अनुसार व्यक्ति का स्वभाव भी उसी प्रकार हो जाता है।

3.8 वृहजातक के अनुसार नवग्रह का स्वरुप

सूर्य व चन्द्र स्वरूप-

मधुपिङ्गलक चतुरस्त्रतनुः

पित्तप्प्रकृतिः सविताल्पकचः ।

तनुवृत्ततनुर्बहुवातकफः

प्राज्ञश्च शशी मृदुवाक् शुभदृक्॥

वृह्जातक नामक ग्रन्थ में सूर्यादि नवग्रहों का वर्णन इस प्रकार किया गया है, जो आगे दिया जा रहा है। सूर्य ग्रह का स्वरुप मधु सदृश पीला नेत्र, चतुरस्त्र शरीर अर्थात् दोनों हाथ फैलाने पर जितनी चौड़ाई हो उतनी ही लम्बाई (ऊँचाई) हो, पित्त प्रकृति का और अल्प बालों से युक्त शरीर वाला ऐसा सूर्य का स्वरूप होता है। चन्द ग्रह दुर्बल और गोल, अधिक वात और कफ प्रकृति वाला, बुद्धि-मान, शोभायुक्त आँखे, मृदुवाणी से युक्त ऐसा चन्द्र का स्वरूप होता है।

भौम व बुध का स्वरूप-

क्रूरदृक्तरुणमूर्तिरुदारःपैत्तिकः सुचपलः कृशमध्यः।

श्लिष्टवाक् सततहास्यरुचिज्ञःपित्तमारुतकफप्रकृतिश्च।।

दृष्टि युवावस्था, उदार स्वभाव, पित्त प्रकृति जलवृत्ति और मध्यभाग से पतला ऐसा स्वरूप भौम का माना जाता है।व्यंगात्मक वाणी, सर्वदा हास्यप्रिय स्वभाव, वात-पित और कफ तीनों प्रकृति में युक्तं बुध का स्वरूप दिखाई देता है।

गुरु व शुक्र का स्वरूप-

बृहत्तनुः पिङ्गलमूर्धजेक्षणोबृहस्पतिः श्रेष्ठमतिः कफात्मकः।

भृगुः सुखी कान्तवपुः सुलोचनः कफानिलात्मासितवक्रमूर्धजः।।

कामी वातकफाधिकोऽतिसुभगश्चित्राम्बरो राजसो।

लीलावान् मतिमान् विशालनयनः स्थूलात्मदेहः सितः।।

गुरु ग्रह का लम्बा चौड़ा भारी शरीर, पीले पीले बालों से युक्त, पीली आँख, सुन्दर श्रेष्ठ बुद्धि और कफ प्रकृति से युक्त बृहस्पति का स्वरूप होता है। सुकर ग्रह सुखीकमनीय शरीर वाला, सुन्दर आँख, कफ और वात प्रकृति बाला, काले-काले बालों से युक्त और कुटिल स्वभाव वाला शुक्र का स्वरूप दिखाई पड़ता है।

मन्दोऽलसः कपिलदृक् कृशदीर्घगात्रः स्थूलद्विजः परुषरोमकचोऽनिलात्मा।

स्नाय्वस्थ्यसृक् त्वगथ शुक्लवसे च मज्जामन्दार्कचन्द्रबुधशुक्रसुरेज्यभौमाः।।

शनि ग्रह आलस्य से युक्त, भूरे आँख वाला, पतला और लम्बा शरीर, मोटे और बहे दांत, रूखे सुखे बालों से युक्त और वायु प्रकृति वाला शनि का स्वरूप होता है। शनि का सार 'नस' (स्नायु) सूर्य का 'अस्थि' चन्द्र का 'रुधिर' बुध का 'त्वचा' शुक्र का 'वीर्य' और बृहस्पति का 'मज्जा' सार होता है। जातक की कुंडली के जन्मलग्न के नवांश का जो स्वामी होता है उसी ग्रह के स्वरूपानुसार जातक का स्वरूप होता है।

3.9 सारांश

राशि एवं ग्रह स्वरूप नामक इकाई में हमनें ग्रहों के स्वरूप तथा राशि के स्वरूप का विस्तृत रुप से अध्ययन किया। अध्ययन के पश्चात् हमें ज्ञात होता हैं कि ज्योतिष शास्त्र का स्वरूप कितना वृहद् रहा होगा। ज्योतिषशास्त्र को वेद का नेत्र भी कहा गया हैं। जी अपने नेत्रों से खगोलीय पिंड का अध्ययन करनें मैं ज्योतिष शास्त्र सक्षम हो सके। राशि एवं ग्रह का सटीक ज्ञान खगोलीय पिंड के आधार पर किया जाता है। आकाशीय मंडल मैं 27 नक्षत्रों के 12भाग करनें में 360 अशों के द्वारा निश्चित किया जाता है। जिसका प्रत्येक भाग का परिमाण 30अंश होता है। इनसभी मेषादि राशियों का विचार खगोलीय पिंड के अनुसार ग्रह का विचार जातक के जीवन मैं करना चाहिए। इस इकाई में ग्रहों के स्वरूप का सूर्य से लेकर शनि ग्रह पर्यन्त विचार किया जाता है। जैसे सूर्य का स्वरूप मधु के सदृश्य,पीत नेत्र, चतुरस्त्र शरीर,चंद्र का स्वरूप दुर्बल,वात,कफ,पित, भोम का उदार स्वरूप, बुध का कफ तीनों से युक्त, गुरु का पीत नेत्र, कुटिल स्वभाव का शुक्र, आलस्य से युक्त शनि, ये सभी ग्रह अपने स्वरुपानुसार जातक के जीवन मैं फल के प्राप्ति कराता है। मेषादि राशियों का स्वरूप भी अपने स्वरूप के अनुसार जातक को फल की प्राप्ति कराता हैं। इस ईकाई के माध्यम से राशिएवं ग्रह के अनुसार कुंडली के माध्यम से जातक का फलादेश किया जाता है।

3.10 पारिभाषिक शब्दावली

- परम्परा जो पूर्व से ही चली आ रही हैं
- ग्रहण किसी भी वस्तु को ग्रसना

- होरा शास्त्रजिसके द्वारा फलादेश किया जाता हो
- खगोलीय जो शून्य आकार का हैं
- याम्य दक्षिण दिशा
- अधिपतिस्वामी
- दीर्घ लम्बे आकार का
- सगदं जिसने हाथ पर गदा धारण किया हो
- वनचारी वन मैं भ्रमण करनें वाला
- चतुष्पाद चार पाद वाला
- अद्रि पर्वत
- द्विपदी दो पैरों वाला जीव
- तनु शरीर
- सात्विक सादा विचारों वाला
- वसुधा भूमि
- मन्द शनि
- घट घड़ा
- भूसुत भूमि पुत्र
- संहिता जिसमें सभी कुछ समाहित की गयी हों
- मति बुद्धि

अभ्यास प्रश्न- 1

1. सूर्य की कोन सी प्रकृति प्रधान है ?
2. शल्य किसे कहते हैं?
3. उग्र बुद्धि किस ग्रह की है?
4. पित प्रधान प्रकृति किस ग्रह की है ?
5. दूर्वा के समान किसका स्वरूप है ?
6. काल पुरुष का वेदागं क्या है?
7. बारह राशियों का मान कितना है ?
8. 360अंशो को कितने भागों में विभाजित किया जाता है ?
9. मेष राशि की आकृति कैसी है ?
10. मेष राशि का कैसा वर्ण है ?
11. कुज किसका पर्यायवाची है ?
12. सिंह राशि का अधिपति कौन है ?
13. तमोगुणी किस ग्रह को कहते है?
14. गुरु ग्रह की प्रधान प्रकृति क्या है?
15. काले वस्त्र से सम्बंधित ग्रह है?

16. वायु प्रधान ग्रहकिसे कहा जाताहै?
17. फलदीपिका के लेखक कौन हैं?
18. पीले नेत्र किस ग्रह के हैं?
19. शशि किस ग्रह का पर्यायवाची है?

3.11अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. पित प्रकृति
2. हड्डियों को कहा जाता हैं
3. भौम
4. मंगल ग्रह की
5. बुध का
6. नेत्र
7. 360डिग्री
8. बारह भागों में
9. मेंढक के समान
10. रक्त वर्ण
11. मंगल का
12. सूर्य
13. शनि
14. आचार्य मंत्रेश्वर
15. सूर्य के
16. चन्द्र का
17. कफ प्रधान प्रकृति
18. राहु
19. शनि

3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दशाफल दर्पण, लेखक श्री निवास शर्मा
2. फल दीपिका, लेखक आचार्य मंत्रेस्वर
3. वृहतपाराशर होरा शास्त्र, लेखक ऋषि पाराशर
4. ज्योतिष सर्वस्व

3.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. राशि एवं ग्रह के स्वरूप का विस्तृत विवेचन कीजिए।
2. राशि एवं ग्रहों की खगोलीय संरचना का उल्लेख कीजिए।
3. फलदीपिका ग्रंथ के अनुसार ग्रहों के स्वरूप का प्रतिपादन कीजिए।
4. मेष, मीन, एवं वृश्चिक राशि के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
5. वृहज्जातक के अनुसार राशियों के स्वरुप का वर्णन कीजिए।

इकाई . 4 भाव एवं भावेश फल विचार

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 द्वादश भाव परिचय
4.3.1 भावों से विचारणीय विषय
4.3.2 भावों का वर्गीकरण
4.3.3 द्वादश भावों के कारक ग्रह
4.3.4 भावफलों की वृद्धि और हानि
4.3.5 भावेश का स्वरुप
4.3.6 द्वादश भावगत सभी भावेशों का सूर्यादि नवग्रह फल
बोध प्रश्न
4.4. सारांश
4.5. बोधप्रश्नों के उत्तर
4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.7 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1प्रस्तावना

ज्योतिष शास्त्र में कुंडली का मूल आधार बारह भाव होते हैं, जिन्हें जीवन के विभिन्न क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले खंड माना जाता है। हर भाव किसी विशेष जीवन पक्ष को दर्शाता है — जैसे पहला भाव आत्मा और शरीर, दूसरा धन और वाणी, तीसरा साहस और छोटे भाई आदि। भाव के साथ-साथ उसका स्वामी ग्रह, जिसे **भावेश** कहा जाता है, अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। भाव तो एक स्थिर क्षेत्र है, परंतु भावेश एक सक्रिय तत्व है जो उस भाव के फल को संचालित करता है। भाव में स्थित ग्रह, भावेश की स्थिति, दृष्टि, युति, बल और दशा इन सभी को मिलाकर उस भाव का फल विचार किया जाता है।

भावेश यदि शुभ ग्रह होकर शुभ भाव में स्थित हो, तो उस भाव के फल सकारात्मक होते हैं। यदि भावेश पाप ग्रहों से ग्रस्त हो या नीच का हो, तो भाव के फल बाधित या नकारात्मक हो सकते हैं। इसीलिए भाव और भावेश का संयुक्त विश्लेषण आवश्यक होता है।इस विचार प्रणाली ने भारतीय ज्योतिष में गहन भविष्यवाणी की परंपरा को जन्म दिया, जहाँ केवल ग्रह ही नहीं, बल्कि उनकी परस्पर स्थिति और भाव से संबंध को भी महत्त्व दिया जाता है। यही फल विचार की सूक्ष्मता और गहराई का आधार है।

ज्योतिषशास्त्र जातक के जीवन में सारथी की भूमिका में प्राचीन काल से ही कार्य कर रही है और आगे भी करती रहेगी। ज्योतिष में फलकथन का आधार मुख्यतः ग्रहों राशियों और भावों का स्वभाव, कारकत्व एवं उनका आपसी संबन्ध है।

4.2 उद्देश्य

- भाव क्या है समझ लेंगे
- द्वादश भावों से विचारणीय विषय को जान जायेगें।
- द्वादश भावों के कारक ग्रह जान जायेगें।
- भावोश किसे कहते हैं आप समझ लेंगे।
- द्वादश भावगत सभी भावेशों का सूर्यादि नवग्रह फल को समझ सकेंगे।

4.3 द्वादश भाव परिचय

भावयति चिन्तयति पदार्थानिति भावः अर्थात् जिनसे मानव जीवन से जुड़े विभिन्न विषयों का चिन्तन हो उसे भाव कहते हैं। ज्योतिषशास्त्र की उपयोगिता प्राणी के गर्भाधान से ही शुरु हो जाती है और जब प्राणी गर्भमुक्त हो जाता है अर्थात् जन्म लेता है वही क्षण उसके जीवन के फलित का आधार बनता है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त मानव जीवन से सम्धित विषयों का हमारे ऋषियों नें 12 भावों में समाहित कर दिया है।आकाशस्थ क्रान्तिवृत्त के 360^0 अंशों के 12 विभाग करने से 360/12 = 30 अंश के कोण का मान एक राशि का मान होता है। उन्हीं 12 विभागों को जातक शास्त्र में द्वादश भावों के नाम से जानते है। जन्मांग चक्र में इन्हीं 12 भावों से अलग- अलग तथ्यों का विचार फलादेशादि कर्म में किया जाता है। कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में भी द्वादश भाव साधन किया जाता है। फलादेशादि कार्य के लिये भावों का ज्ञान होना परमावश्यक है।

ये द्वादश भाव गृह नाम से भी जाने जाते हैं। इन द्वादश भावों में राशियों एवं ग्रहों के जातक के जन्म कालिक स्थिति के द्वारा कर्म एवं कर्तव्य पथ का विचार किया जाता है। ये भाव क्रम से निम्नलिखित हैं-

देहं द्रव्यपराक्रमौ सुखसुतौ शत्रुः कलत्रं मृति-
र्भाग्यं राज्यपदं क्रमेण गदितौ लाभव्ययौ लग्नतः।
भावा द्वादश तत्र सौख्यशरणं देहं मतं देहिनां
तस्मादेव शुभाशुभाख्यफलजः कार्यो बुधैर्निर्णयः॥ (जातकालंकार 1-5)

अर्थात् लग्न से लेकर क्रमशः देह 1, द्रव्य 2, पराक्रम 3, सुख 4, सुत 5, शत्रु 6, कलत्र 7, मृति 8, भाग्य 9, राज्यपद 10, लाभ 11 और व्यय 12 ये बारह भावों के नाम हैं। इसके अतिरिक्त क्रमशः तनु, धन, सहज, सुहृद, सुत, रिपु, जाया, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय, व्यय संज्ञा से भी इन भावों को जाना जाता है। इसके अतिरिक्त भी अनेक संज्ञाएं इन द्वादश भावों की प्राप्त होती है।

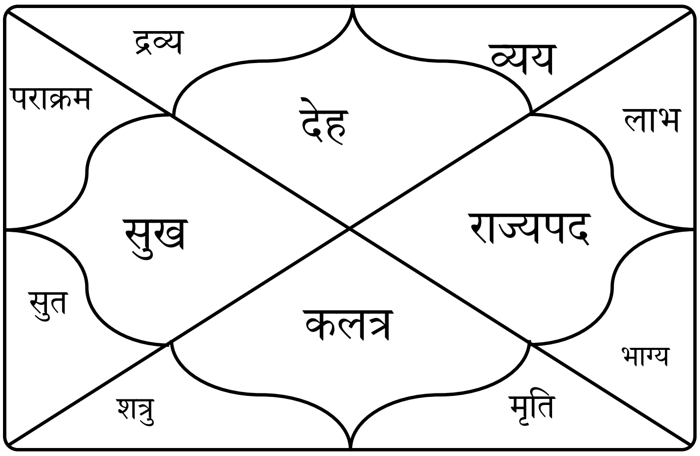

4.3.1. भावों से विचारणीय विषय

प्रथम भाव से-

लग्नं होरा कल्यदेहोदयाख्यं रूपं शीर्ष वर्तमानं च जन्म ।

लग्न, होरा, कल्य प्रभात), सूर्योदय अर्थात् प्रारंभदेह (, उदय (प्रारंभ होना), रूप, सिर, वर्तमान काल , जन्म इन सब का विचार पहले भाव से किया जाता है। इसके अलावा भी शरीर स्थान ,स्वप्न ,बल ,गौरव , राज्य , स्वभाव ,आयु , –दुःख , कीर्ति , नम्रता , ज्ञान ,जन्म –सुख , शांति ,अवस्था ,स्वाभिमान , व्यक्तित्व , चोट ,निशान , अपमान , त्वचा , वर्ण , आदि का विचार प्रथम भाव या लग्न से किया जाता है

द्वितीय भाव से-

वित्तं विद्या स्वान्नपानानि भुक्ति दक्षाभ्यास्यं पत्रिका वाक्कुटुम्बम् ।।

धन, विद्या, अपनी वस्तुघन पर अधिकार ,, खाना पीना, भोजन, दाहिना नेत्र, चेहरा, पत्रिका, वाणी, कुटम्ब यह इन सब का विचार द्वितीय भाव से इसके अतिरिक्त धन बचत , विक्रय , दान , नाक , -आँख , मुख ,विद्या ,भाषण प्रखरता , वाचालता , भोजन का स्वाद , क्रय, आस्तिकता, परिवार का उत्तरदायित्व ,चातुर्यता , संगीत , विनयशीलता , वैराग्य ,बदनामी किया जाता है यात्राएँ, आदि का विचार,

तृतीय भाव से-

दुश्चिक्योरो दक्षकर्णं च सेनां धैर्य शोर्य विक्रमं भ्रातरं च

दाहिना कान, सेना, हिम्मत, वीरता, शक्ति तथा भाई (बहिनों) का विचार तृतीय भाव से, इसके अलावा भी पराक्रम पुरुषार्थ, परिश्रम , भाई ,कान, भुजा ,टांग, स्वप्न, नौकर ,मन की, बेचेनी , यात्रा , गुण,अभिरुचियाँ , कुल का स्तर, सहयोगी वाहन, मित्र , आदि का विचार किया, जाता है इसको दुश्चिक्य स्थान भी कहते हैं।

चतुर्थ भाव से-

गेहूं क्षेत्रं मातुलं भागिनेयं बन्धुं मित्रं वाहनं मातरं च ॥

राज्यं गोमहिषसुगन्धवस्त्रभूषाः पातालं हिबुकसुखाम्बुसेतुनद्यः ।

घर, खेत, मामा, भाञ्जा, बन्धु, मित्र, सवारी, मां, गायभैंस-, सुगन्धि, वस्त्र, जोवर, तथा सुख का विचार चौथे घर से करें। इसी घर हसे पानी, नदी, पुल, आदि का विचार करना चाहिये। तथा सुखबांधव ,श्वसुर –जायजात, प्रसिद्धि,बन्धु -सम्पति ,वाहन ,माता भूमि ,भवन ,जमीन , सम्पर्क ,गृह त्याग , झूठे आरोप प्रत्यारोप –सम्मान ,जन –पिता का व्यवसाय, हृदय, यश,मान , माता का स्वास्थ,आदि का विचार,चौथे भाव से किया जाता है।

पंचम भाव से-

राजाङ्क सचिवकरात्मधीभविध्यज्ज्ञानासून् सुतजठरश्रुतिस्मृतीश्च ॥

राजशासन की मोहर, मंत्री, कर (टैक्स), आत्मा, बुद्धि, भविष्य ज्ञान, प्राण, सन्तान, पेट, श्रुति (वेद) स्मृति का विचार पंचम से करे। श्रुति-स्मृति से तात्पर्य है शास्त्र ज्ञान का, विद्या , तांत्रिक क्रियाएँ, संतान सुख ,प्रेम-प्रसंग, रहस्य, प्रबंध कार्यो में कुशलता, गर्भ ,पेट ,पदोन्नति , तार्किक कौशल समता ,बौद्धिक क्षमता, शिल्प ,कला कशल ,नम्रता,लेखन शैली आदि का विचार किया जाता है अतः समस्त शास्त्र ज्ञान का विचार पंचम स्थान से करना चाहिये।

षष्ठ भाव से-

ऋणास्त्रचोरक्षतरोगशत्रून् ज्ञात्याजिदुष्कृत्यघभीत्यवज्ञाः ।

कर्ज, अस्त्र, चोर, घाव (चोट), रोग, शत्रु, जाति भाई बन्धु जो शत्रुता का,भाव रखते होंयुद्ध ,, दुष्ट कर्म, पाप, भय, अपमान ,मामा भंग ,नाभि ,कमर -पागलपन ,विषपान ,अंग , फुंसी, आदि का विचार-मूत्ररोग, निन्दा, चोरी, विपत्ति , भिक्षावृत्ति, पागलपन, फोड़े,छठे भाव से किया जाता है।

सप्तम भाव से-

जामित्रचित्तोत्थमवास्तकामान्

धूनाध्वलोकान् पतिमार्गभार्याः ॥

हृदय की इच्छाएँ (काम वासना), अद, मार्ग, लोक, पति, पत्नी, दाम्पत्य सुख , व्यविचार, काम शक्ति, वीर्य, साझेदारी, पवित्रता, गुप्तांग,दत्तक पुत्र, बाबा का विचार, अन्य स्त्री से उत्पन्न पुत्रादि, दैनिक आय,रास्ता भटकना, पौष्टिक भोजन, का विचारसप्तम भाव से करना चाहिये।

अष्टम भाव से-

माङ्गल्यरन्ध्रमलिनाधिपराभवायुः

क्लेशापवादमरणाशुचिविघ्नदासान् ।

मांगल्य (पति का जीवित रहना -स्त्री का सौभाग्य), रंध्र (छिद्र), आधिमानसिक , चिन्ता, अपमान या हार-बीमारी, आयु क्लेश ,, बदनामी, मृत्यु, विघ्न, अशुचि (अपवित्रता) ,दास मृत्यु का कारण वैराग्य ,कष्ट झगडा ,मुसीबत ,गुप्तरोग ,पत्नी का शाररिक , गडा धन, कष्ट,राजकोप,पाप,शल्यचिकित्सा,जीवन रक्षा , मरणोपरांत , चोरी कि आदत ,सूदखोरी ,आलस्य, गुदा का विचार बवासीर का रोग,आदि का विचार अष्टम भाव से किया जाता है।

नवम प्रथम भाव से-

आचार्यदेवतपितृन् शुभपूर्वभाग्य-
पूजातपःसुकृतपौत्र जपार्यवंशान् ॥

आचार्य (गुरु), देवता (आराध्य देव), पिता, पूजा, तप, सत्कर्म, पौत्र, उत्तम वंश, दान ,धर्म ,दया ,त्याग ,बलिदान ,तपस्या ,गुरुभक्ति ,ऐश्वर्य ,राज्याभिषेक , पैतृकधन ,चिकित्सा आदि का विचार नवम भाव से किया जाता है।

दशम प्रथम भाव से-

व्यापारास्पद मानकर्मजयसत्कोर्तिं क्रतु' जीवनं
व्योमाचारगुणप्रवृत्तिगमनान्याज्ञां च मेषूरणम् ।

व्यापार उच्च स्थान पोजीशन इज्जत, कर्म, जय, या, यज्ञ, जीविका का उपाय, कार्य में अभिरुचि, आचार सदाचार या दुराचारगमन (, हुकमत, गुण, आकाश, मान सम्मान ,प्रतिष्ठा, –विस्तार ,रोजगार ,वायुमार्ग कि यात्रा ,घुटना ,प्रशासन ,कृषि, –राजपद ,राज्यप्राप्ति ,यश ,कार्य , संन्यास, आकाशकार्यविस्तार ख्याति , गौरव , नियंत्रण तथा पिता का विचार दशम भाव से , ,किया जाता है इसे 'मेषूरण' या आज्ञा स्थान भी कहते हैं।

एकादश भाव से-

लाभायागमनाप्तिसिद्धि विभवान् प्राप्ति भवं श्लाध्यतां
ज्येष्ठभ्रातरमन्यकर्णसरसान् सन्तोषमाकर्णनम् ॥

लाभ, आमदनी, प्राप्ति, आगमन, सिद्धि, वैभव (घन, ऐश्वर्य) कल्याण, श्लाध्यता-प्रशंसा, बड़ा भाई या बड़ी बहन, बायाँ कान, सरसता, अच्छी खबर, लाभ, आमदनी, विद्या , वाहन,माता कि आयु का , गुलामी , धन के श्रोतो का , निपुणता, पदवी , सब प्रकार कि उपलब्धि का, आभूषण, पैतृक धन, पराधीनता, मालिक का धन, समाज में प्रतिष्ठा व जंघा आदि का विचार एकादश भाव से किया जाता है।

द्वादश प्रथम भाव से-

दुःखांघ्रिवामनयनक्षयसूचकान्त्यदारिद्र्यपापशयनव्ययरिःफबन्धान् । -

दुःख, पैर, वायाँ नेत्र, ह्रास, चुगलखोर, अन्त (किसी का आख़िरी परिणाम), दरिद्रता, पाप, शयन (पलंग पर शयन करना- इसके अतिरिक्त पुरुष स्त्री गुप्त संबंध भी समझना चाहिये), खर्चा, बन्धन (जेल जाना), धन का व्यय, नीद, मानसिक स्थिति, पैर, आँख, बन्धन, दूरदेश कि यात्रा, विदेश यात्रा, ऋणग्रस्थता, वैवाहिक जीवन का सुख, अपयश, दुराचरण, गुप्त शत्रु, हानियाँ, ऋण से मुक्ति, मानसिक बेचेनी, किसी अंग का भंग होना आदि का विचार बारहवें भाव से किया जाता है। **स्पष्ट ज्ञान हेतु चक्र-**

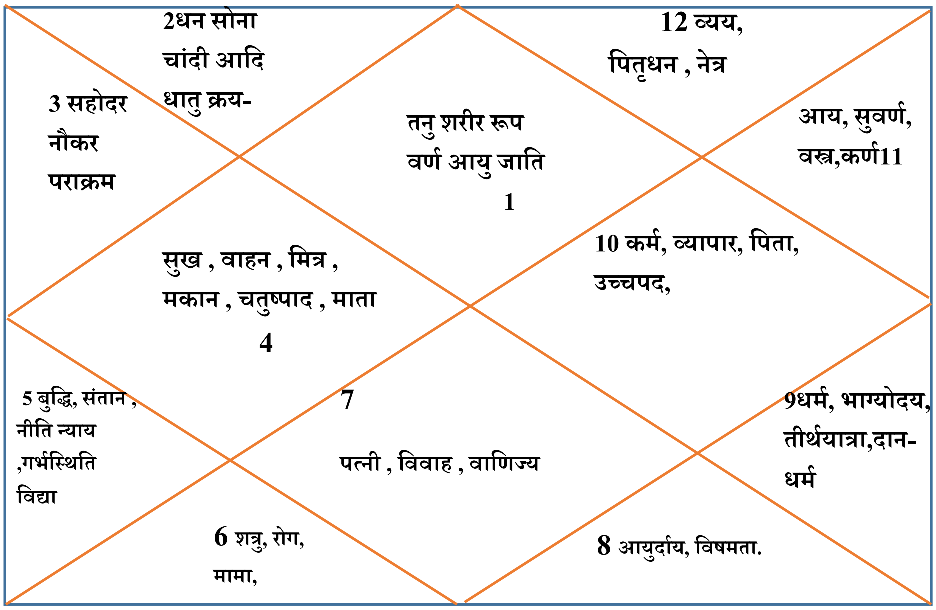

द्वादश भावों के कारक ग्रह

घुमणिरमरमन्त्री भूसुतः सोमसौम्यौ गुरुरिनतनयारौ भार्गवो भानुपुत्रः ॥
दिनकर दिविजेज्यौ जीवभानुज्ञमन्दाः सुरगुरुरिनसूनुः कारकाः स्युर्विलनात् ॥

जातकपरिजात 2/51

द्वादश भावके फारक ये हैं- सूर्य लग्नका, गुरू धन-भावका, मङ्गल सहजका, चन्द्र और बुध सुखका, बृहस्पति पुत्रका, शनि और मङ्गल शत्रुका, शुक्र जायाका, शनिमृत्युका, सूर्य और बृहस्पति धर्मका, बृहस्पति सूर्य बुध और शनि कर्मका, बृहस्पति लाभकाऔर शनि व्ययका कारक हैं ॥

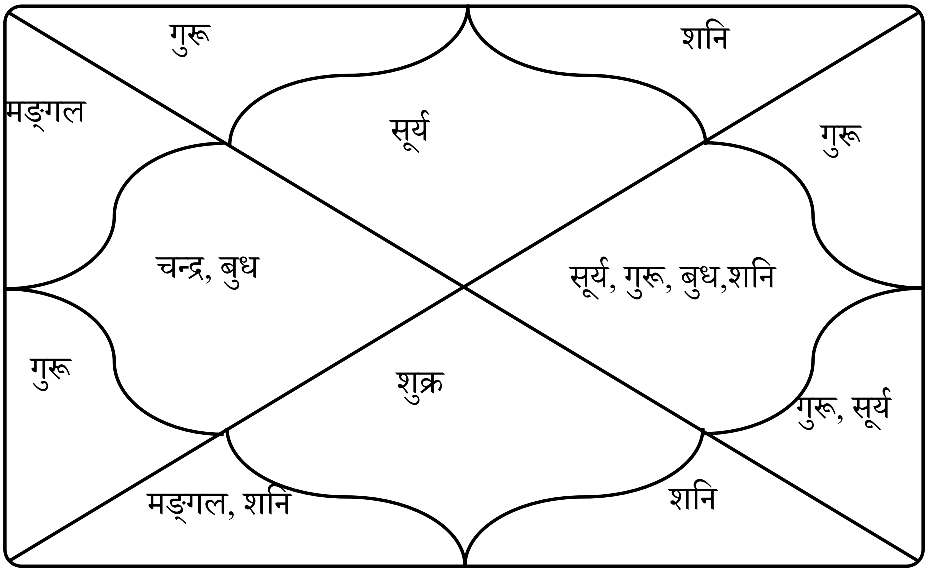

4.3.2. भावों का वर्गीकरण

केंद्र

इसके पहले आपने प्रत्येक 12 भावों, उनकी संक्षिप्त संज्ञाओं तथा उनके विचारणीय बातों को जाना है। अब आप उन भावों की विशिष्ट संज्ञाओं को जानेंगें। ज्योतिषशास्त्र के

प्रतिष्ठित आचार्यों ने द्वादश भावों की संज्ञाओं को अपने-अपने ग्रन्थों में विविध प्रकार से वर्णित किया हैं। कहीं पर एक भाव की अनेक संज्ञाएँ तो कहीं पर एकाधिक भावों के लिए एक ही संज्ञा का प्रयोग आचार्यों ने किया है। इसी क्रम में आचार्यवराहमिहिर बृहज्जातक में लिखते हैं-

कण्टककेन्द्रचतुष्टयसंज्ञाः सप्तमलग्नचतुर्थखभानम् ।तेषुयथाभिहितेषु बलाढयाः कीटनराम्बुचरा पशवश्च ।।(बृ.जा.अ.1.श्लो.17)

अर्थात् सप्तम, लग्न, चतुर्थ, दशम (7,1,4,10) भावों की कण्टक, केन्द्र और चतुष्टय संज्ञा होती है जिनमें पूर्वोक्त क्रम से कीट, मनुष्य, जलचर और पशुराशि (चतुष्पद) होती हैं अर्थात् कीट (वृश्चिक, मीन और कर्क) राशियाँ सप्तम में, मनुष्य राशियां अर्थात् मिथुन कन्या और तुला लग्न में, जलचर राशि (कर्क, मीन और मकर) चतुर्थ में बली होती हैं। चतुष्पद राशि अर्थात्मेष, सिंह, वृष , धनुये राशियाँ दशम स्थान में स्थित होने पर बलशाली कही गई हैं।

पणफर

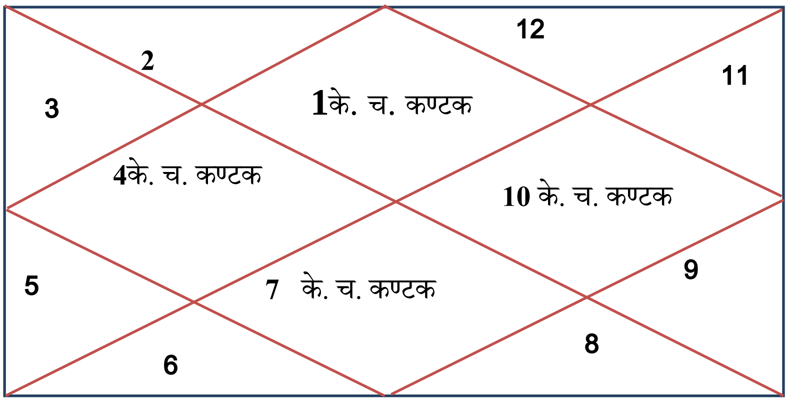

केन्द्रात् परं पणपरं परतश्च सर्वमापोक्लिमं हिबुकमम्बु सुखं च वेश्म ।
जामित्रमस्तभवनं सुतभं त्रिकोणं मेषूरणं दशमत्र च कर्म विद्यात् ।।

केन्द्रस्थानों के बाद के भावों की पणफर तथा पणफर के बाद के भावों की आपोक्लिम संज्ञा होती है अर्थात् 1,4,7,10(केन्द्र भावों) के बाद 2,5,,8,11 की पणफर तथा 2,5,8,11(इन पणफर) के बाद 3,6,9,12 भावों की आपोक्लिमसंज्ञा होती है। चतुर्थ भाव को हिबुक, अम्बु, सुख और वेश्म नाम से भी जानते है। जामित्र एवंअस्त सप्तम भाव का पर्याय है। पंचम भाव की त्रिकोण संज्ञा दी गई है। मेषूरण और कर्म भी दशम भाव की संज्ञाएं हैं।

त्रिक भाव	-	6,8,12
त्रिकोण भाव	-	5,9
उपचय भाव	-	3, 6, 10 ,11
अनुपचय भाव	-	1, 2, 4, 5, 7, 8, 9, 12
आयुर्भाव	-	3, 8
मारकभाव	-	2, 7

4.3.4.भावफलों की वृद्धि और हानि

फलादेश करते समय द्वादशभावों में से किस भाव के फल की वृद्धि होगी एवं किस भाव के फल का ह्रास होगा इत्यादि भाव एवं भावेश के स्थितियों के द्वारा दैवज्ञों ने सभी फलित ग्रन्थों में उपस्थापित किया है। जैसा कि पृथुयश विरचित षट्पञ्चाशिका का निम्न प्रचलित श्लोक फलादेश के क्रम में ज्योतिर्विदों के मुख से सुनने को मिलता है –

यो यो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा सौम्यैर्वा तस्य तस्याभिवृद्धिः।
पापैरेवं तस्य भावस्य हानिः निर्देष्टव्या पृच्छतो जन्मतो वा॥

अर्थात् जो भाव अपने स्वामी ग्रह अथवा शुभ ग्रह से युत अथवा दृष्ट हों उन भावों की वृद्धि तथा जो भाव अपने स्वामी ग्रह से युत या दृष्ट न हो तथा पापग्रह से युत या दृष्ट हों उन भाव सम्बन्धी फल की हानि जाननी चाहिये। कथन से अभिप्राय यह है कि जब कोई भाव अपने स्वामी द्वारा दृष्ट होता है तो उस भाव की वृद्धि होती है, चाहे भाव का स्वामी नैसर्गिक पापी ग्रह मंगल, शनि आदि ही क्यों न हों, इसी प्रकार शुभ ग्रहों से दृष्ट भावों के शुभत्व की वृध्दि होती है। इस विषय में आचार्य वैद्यनाथ जातकपारिजात में लिखते हैं कि-

नीचस्थो रिपुराशिस्थः खेटो भावविनाशकः ।मूलस्वतुङ्गमित्रस्थो भाववृद्धिकरो भवेत् ॥

अर्थात् नीच राशिगत तथा शत्रुराशिस्थ ग्रह जिस भाव में विद्यमान हो उस भाव सम्बन्धी शुभफल का नाश करता है परन्तु ग्रह यदिअपने मूल त्रिकोण में, अपने उच्च स्थान में, मित्रराशि में हो तो उस भाव (स्थान) की वृद्धि करता है।

यद्भावनाथो रिपुरिष्फरन्ध्रे दुःस्थानपो यद्भवनस्थितस्तु ।
तद्भावनाशं कथयन्ति तज्ज्ञाः शुभेक्षितश्चेत् फलमन्यथा स्यात् ॥

जिस भाव का स्वामी त्रिक (६।८।१२वें) भाव में स्थित हो उस भाव के फल कोविनष्ट करता है तथा त्रिकेश (६।८।१२वें भाव के स्वामी) जिन भावों में स्थित हों उनके फलको विनष्ट करते हैं। किन्तु यदि इन पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो उनके फल का नाश नहींहोता ॥

यद्भावपे केन्द्रगते विलग्नात्त्रिकोणगे वा यदि सौम्यदृष्टे ।
तुङ्गादिवर्गोपगते बलाढ्ये तद्भावपुष्टिं फलमाहुरार्याः ॥

जो भावेश लग्न से केन्द्र या त्रिकोण (१।४।७।१० और ५।९ वें) भावों में स्थित हो,शुभग्रहों से दृष्ट हो, उच्चादि (उच्च, मूलत्रिकोण, स्वराशि या मित्रराशि के) वर्ग में स्थितिसे बलवान् हो, उसके भाव के फल की वृद्धि होती है ॥

तत्तद्भावत्रिकोणे सुखमदनगृहे वाऽऽस्पदे सौम्ययुक्ते
पापानां दृष्टिहीने भवनपसहिते पापखेटैरयुक्ते ।
भावानां पुष्टिमाहुः सकलशुभकरं चान्यथा चेत्प्रणाशं
मिश्रं मिश्रग्रहेन्द्रैरखिलमपि तथा मूर्तिभावादिकानाम् ॥

विचारणीय भाव से त्रिकोण (५।९ वें) भावों में, चतुर्थ, सप्तम और दशम भावों मेंपापग्रहों की दृष्टि और युति से हीन शुभग्रह स्थित हों, भाव अपने स्वामी से युत हो तो उसभाव के फल की वृद्धि होती है। इसके विपरीत परिस्थिति में अर्थात् विचारणीय भाव सेकेन्द्र, त्रिकोण में पापग्रह स्थित हो, उन पर पापग्रहों की दृष्टि हो, भावेश भाव से संयुक्त नहो तो उस भाव के फल का नाश होता है । निर्दिष्ट स्थानों में यदि शुभ और पाप दोनों ग्रहहों तो उस भाव का सामान्य फल ही प्राप्त होता है ॥

नाशस्थानगतोदिवाकरकरच्छन्नस्तुयद्राशिपो
नीचारातिगतोऽथवा यदि शुभैः खेटैरयुक्तेक्षितः ।
तद्भावस्य विनाशनं मुनिगणाः शंसन्ति खेटैर्युतो
यद्यत्रापि फलप्रदो नहि तथा मूर्त्यादिभानां क्रमात् ॥

जिस भाव का स्वामी नाशस्थान (अष्टमभाव) में स्थित हो, सूर्यरश्मियों से अस्त हो,नीच अथवा शत्रु राशि में स्थित हो, शुभग्रह से संयुक्त अथवा दृष्ट न हो तो उस भाव काफल नष्ट हो जाता है- ऐसी पूर्वाचार्यों की सम्मति है। यदि उक्त भावेश क्रूरग्रहों से युक्ततब भी कोई फल नहीं मिलता।

दुःस्थाने वाऽरिगे मूढे दुर्बले भावनायके।
भावस्य सम्पदं कर्तुं न शक्ता भावमाश्रिताः ॥

जिस भाव का स्वामी दुःस्थान (३।६।१२वें) में स्थित हो, सूर्य सान्निध्य में अस्तअथवा दुर्बल हो तो वह अपने आश्रित भाव का फल देने में समर्थ नहीं होता॥

दुष्टस्थितो वाऽपि यदा नभोगः पापोऽरिनीचांशकसंयुतो यः।
स्वतुङ्गमित्रांशकराशियुक्तः शुभेक्षितो वा यदि शोभनः स्यात्॥

दुःस्थान (३।६।१२वाँ भाव) में स्थित ग्रह यदि शत्रुराशि के अथवा अपनी नीच राशिके नवांश में स्थित हो तो पापफलप्रद होता है। किन्तु दुःस्थानस्थ ग्रह यदि अपनीउच्चराशि, मित्रराशि या स्वराशि के नवांश में स्थित हो तो वह शुभफलप्रदाता होता है।

भावेशाक्रान्तराशीशे दुःस्थे भावस्य दुर्बलम्।
स्वोच्चमित्रस्वराशिस्थे भावपुष्टिं वदेद् बुधः ॥१०॥

भावेश जिस भाव या राशि में स्थित हो उसका स्वामी यदि दुःस्थानगत हो तो वह भावको दुर्बलता प्रदान करता है। किन्तु भावेशाधितिष्ठित राशि का स्वामी यदि अपनी उच्चराशि में,मित्रराशि में अथवा स्वराशि में स्थित हो तो उस भाव का बलवर्धन होता है॥

जैसे यदि दशमेश चतुर्थ भाव में स्थित हो और चतुर्थेश त्रिक में, अपनी नीच या शत्रुराशि में स्थित हो तो यह स्थिति दशम भाव को निर्बल बनाती है। किन्तु यदि चतुर्थेशअपनी उच्चराशि में, मित्र या स्वराशि में स्थित हो तो यह स्थिति दशम भाव को पुष्टि प्रदानकरने वाली होती है।

यद्भावलाभधनविक्रमराशियाता
यद्भावनाथसुहृदश्चतदुच्चनाथाः।
तद्भावपुष्टिबलमम्बरचारिणस्ते
कुर्वन्तिमूढरिपुनीचविवर्जिताश्चेत्॥

भावेश या उसके मित्रग्रह या उसकी उच्चराशि के स्वामी यदि उस भाव से द्वितीय,तृतीय या एकादश भाव में स्थित हों और वे अपनी शत्रु, नीच राशि में अथवा सूर्य – सान्निध्यसे अस्त न हों तो भाव की वृद्धि होती है॥

भावांशतुल्यः खलु वर्तमानो भावोद्भवं पूर्णफलं विधत्ते।
भावोनके चाप्यधिके च खेटे त्रैराशिकेनात्र फलं विचार्यम्॥

जो ग्रह भावस्पष्ट के अंश तुल्य अंशों में स्थित हो वह उस भाव का पूर्ण फल देताहै। ग्रह के अंश भावांश से न्यूनाधिक होने पर त्रैराशिक विधि द्वारा फल के परिणाम कानिर्णय करना चाहिए॥

4.3.5. भावेश का स्वरुप

ज्योतिष शास्त्र में **"भावेश"** शब्द का अर्थ है किसी भाव का स्वामी ग्रह। ज्योतिष शास्त्र में कुल 12 भाव होते हैं, और हर भाव का एक स्वामी ग्रह होता है जो उस भाव पर प्रभाव

डालता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति की कुंडली में मेष लग्न है, तो प्रथम भाव मेष राशि का होगा और इसका स्वामी ग्रह मंगल होगा। अतः मंगल इस कुंडली में प्रथम भाव का भावेश कहलाएगा।

जातकशास्त्र में जन्मकुण्डली से फलादेश बतलाने के जो प्रकारकहे गये है उनमे भावेश - फल भी एक है। मोटे तौर पर भावेश फल में यहबताया जाता है कि एक भाव का स्वामी दूसरे किसी भाव में होने पर क्याफल देता है। उदाहरणार्थ:- लग्न का स्वामी पंचम या भाग्य स्थान में हो तोशुभ फल देता है ।भावेश फल के सम्बन्ध में कुछ बाते विचार करने योग्य है।भावेश याने भाव का स्वामी यह अर्थ है । यह शुभ ग्रह हो या पाप ग्रह हो तोउसके फल समान मिलेंगे या भिन्न फल मिलेंगे? उदाहणार्थ:- लग्नेशधनस्थान में हो तो कुटुम्ब का सुख मिलता है। सुख से भोजन होता है, लेनदेन के व्यवहार में कुशलता प्राप्त होती है, धन का संग्रह होता है, ये फलबताये गये है।

4.3.6. द्वादश भावगत सभी भावेशों का सूर्यादि नवग्रह फल

द्वादश भावगत लग्नेश का फल

लग्नाधिपतिलंग्ने नीरोगं दीर्घजीविनं कुरुते।
अतिबलमवनीशं वा भूलाभसमन्वितं जातम् ॥

जन्मलग्न का स्वामी यदि लग्न में हो तो जातक स्वस्थ, दीर्घजीवी, अत्यन्तबलवान्, राजा, तथा भूमिलाभ से सम्पन्न होता है ॥

लग्नपतिर्धनभवने धनवन्तं विपुलजीविनं स्थूलम्।
अतिबलमवनीशं वा भूलाभं वा सुषमंरतं कुरुते ॥

लग्नेश यदि धन स्थान (द्वितीय भाव) में स्थित हो तो वह जातक को धनवान्,दीर्घजीवी, स्थूल (मोटा शरीरवाला) अत्यन्त शक्तिशाली, राजा बनाता हैतथा भूमिलाभ एवं धर्म में लीन करता है ॥

सहजगतो लग्नपतिः सद्द्बन्धु प्रवरमित्रपरिकलितम्।
धर्मरतं दातारं शूर सबलं करोति नरम् ॥

लग्न का स्वामी यदि तृतीय भाव में स्थित हो तो अच्छे भाइयों एवं श्रेष्ठमित्रों से युक्त, धर्माचरण में लीन, दानी, शूर एवं बलवान् होता है ॥

लग्नेशे तुर्यगते नृपप्रियं प्रचुरजीवितं कुरुते।
सॅल्लब्धपितरं पित्रो भक्तमबहुभोजनं जातम् ॥

लग्नेश यदि चतुर्थ भाव में गया हो तो जातक राजा का प्रियमात्र, दीर्घजीवी,पिता को प्राप्त करने वाला (अर्थात् दत्तक), माता-पिता का भक्त तथा स्वल्पाहारीहोता है ॥

पचमने लग्नपती सुसुतं सत्यागमीश्वरं विदितम्।
बहुजीविनं सुगतिं सुकर्मनिरतं जनं कुरुते ॥

यदि लग्न का अधिपति पञ्चम भाव में गया हो तो जातक अच्छे पुत्रों(सुयोग्य पुत्रों) से युक्त, त्यागी, राजा (अथवा प्रधान), सुविख्यात् दीर्घजीवी,यशस्वी (जिसके गुणों का गान किया जाता हो), तथा सत्कर्म में लीन रहनेबाला होता है ॥

रिपुभवने लग्नेशे नीरोगं लब्धभूमि च।
सबलं कृपणं धनिनं सुकर्मपक्षान्वितं कुरुते ॥

लग्नेश शत्रुभाव (षष्ठ भाव) में गया हो तो वह जातक को निरोग (स्वस्थ),भूमिलाभ, बलवान्, कंजूस, घनी, तथा अच्छे कार्यों को करने वाला एवं सत्कर्मियोंका साथी बनाता है ॥

प्रथमपतौ सप्तमगे तेजस्वी लोकवान् भवेत्पुरुषः ।
तद्भार्यापि सुशीला तेजः कलिता सुरूपा च ॥

प्रथम भाव (लग्न) का स्वामी यदि सातवें भाव में स्थित हो तो व्यक्तितेजस्वी एवं शोक सन्तप्त होता है तथा उसकी पत्नी सुशीला, तेजस्विनी एवं सुन्दरस्वरूप वाली होती है ॥

लग्नपतावष्टमगे कृपणो धनसवयी तु दीर्घायुः ।
क्रूरे खगे तु खेचरे काणः सौम्ये पुरुषो भवेत्सौम्यः ॥

लग्नेश यदि अष्टम भाव में हो तो जातक कंजूस, घन का संग्रह करने वाला,दीर्घायु होता है यदि लग्नेश पापग्रह हो तो जातक काना, शुभग्रह हो तो सौम्य(भोला-भाला) होता है ॥ ६ ॥

मूर्तिपतिर्यदि नवमे तदा भवति प्रचुरबान्धवः सुकृतिः ।
सममित्रस्तु सुशीलः सुमती ख्यातः सुतेजस्वी ॥

लग्नेश यदि नवम भाव में हो तो वह अधिक भाई बन्धुओं से युक्त, अच्छा कार्यकरने वाला, अपने समान वर्ग में मित्रता करने वाला, सद्बुद्धि वाला विख्यात एवंतेजस्वी होता है ॥

प्रथमेश दशमस्यो नृपलाभो पण्डितः सुशीलश्च ।
गुरुमातृपूजनमति पत्र सिद्धः पुमान् भवति ॥

प्रथम (लग्न) भाव का स्वामी दशमभाव में हो तो वह व्यक्ति राजा सेलाभान्वित, विद्वान्, सुशील, गुरु, माता-पिता के प्रति श्रद्धालु तथा राजाओं मेंप्रसिद्ध (सम्मानित) होता है ।

एकादशस्थतनुपः सुजोवितं सुतसमन्वितं विदितम् ।
तेजः कलितं कुरुते पुरुषं बलिनं सुवाहनंर्युक्तम् ॥

लग्नेश यदि ग्यारहवें भाव में हो तो जातक का जीवन सुखी, पुत्रों से युक्त,ख्यातिप्राप्त, तेज युक्त, बलवान् तथा अच्छे वाहनों से युक्त होता है ॥

द्वादशगे मूर्तिपतौ कटुकवत् कर्मपरोऽशुभो नीचः ।
मानी सहगोत्री/भविदेशगो दत्तभक्तनरः ॥

यदि बारहवें भाव में लग्नेश हो तो वह व्यक्ति कटु कर्म (कुत्सित कर्म) करनेवाला, अशुभचिन्तक, नीच, अपने भाई-बन्धुओं के प्रति अभिमान प्रकट करनेबाला, विदेश में प्रवास करने वाला तथा परान भोजी होता है ॥

धनेश का द्वादश भावों में फल

द्रव्यपतिलंग्नगतः कृपणं व्यवसायिन सुकर्माणम् ।
धनिन श्रीपतिविदितं करोति नरमतुलभोगयुतम् ॥

धन भाव का स्वामी यदि लग्न (प्रथम) भाव में गया हो तो मनुष्य कंजूस,व्यापारी, सत्कर्म करने वाला, धनी, धनपतियों में विख्यात तथा अतुल भोग(समस्त भौतिक सुख सम्पदा) से युक्त होता है ॥

व्यवसायी च सुलामी ह्युत्पन्नभुगलीककारको नांचः ।
नालीक कृद्विदितोऽपि च पूर्णोद्वेगी धनपती धनगे ॥

धनेश यदि धग भाव में ही हो तो जातक व्यापारी, अच्छा लाभ करने वाला,उत्पन्न वस्तु (अपने प्रयास से अर्जित वस्तु) का उपयोग करने वाला, जूठा व्यवहार करने वाला, नीच, सत्यवादी के रूप में विख्यात होने पर भी उद्विग्न रहनेबाला होता है ॥

धनपे सहजगते चेदन्धुविभेदादिर्वाजितः क्रूरे।
सौम्ये राजविरोधी भूतनये तस्करः पुरुषः ।।

पाप ग्रह धनेश होकर यदि तृतीय भाव में हो तो बन्धु बान्धवों से किसी प्रकारका मेद नहीं होता यदि शुभग्रह हो तो राजा का विरोधी तथा यदि मंगल धनेशहोकर तृतीय भाव में हो तो वह व्यक्ति चोर होता है ।।

तुयंगते द्रविणपती पितृलाभपरः सत्यदया युक्तः ।
दीर्घायुः क्रूरखगे पुनरथ वा मरणं विनिदंश्यम् ।।

चतुर्थ भाव में यदि धनेश हो तो पिता से लाभ, सत्य एव दया युक्त, दीर्घ जीवी,होता है परन्तु बनेश यदि पाप ग्रह हो तो जातक की शीघ्र मृत्यु होती है ।।

तनयकमलविनासी कतरे कर्मणि प्रसिद्ध च ।
कृपणं दुःखनिधानं तनयगतो धनपतिः कुरुते ।।

धनेश यदि पचम भाव में गया हो तो वह कमल के समान (प्रसन्न चित्त)पुत्रों के साथ सुखी, कष्ट कर कार्यो को करने में प्रसिद्ध कंजूस तथा दुःखों सेघिरा हुआ, व्यक्ति होता है। (अर्थात् ऐसे व्यक्ति को केवल पुत्र सुख ही प्राप्तहोता है) ।।

वछगतो द्रविणपतिर्धन संग्रहतत्परं रिपुघ्नं च ।
भूलाभिनं सुखचरैः पापेषंनर्वाजितं पुरुषम् ।।

शुभ ग्रह घनेश यदि छठे भाव में गया हो तो पुरुष धन संग्रह करने में तत्पर,करने वाला तथा भूमि लाभ करने वाला होता है। यदि पापग्रहशत्रुओं का दमनहो तो धन से रहित होता है ।।

धनपेऽपि च सप्तमगे श्रेष्ठचिन्ता विलास भोगवती ।
धनसंग्रहणी मार्या क्रूरेखेचरे भवेत् वन्ध्या ।।

धनेश (शुभग्रह) यदि सप्तम भाव में हो तो उच्चस्तर की चिन्तायें होती हैंतथा उसकी पत्नी विलासिनी, सुखी, तथा धन संग्रह करने वाली होती है। यदिबनेश क्रूर ग्रह हो तो बन्ध्या होती है ।।

धनपेऽष्टमभवनस्थेऽष्टकपाली चात्मघातकः पुरुषः ।
उत्पन्नभुग्विलासी परधनहिसी भवति देवपरः ।।

बनेश अष्टम भाव में हो तो वह अष्टकपाली, आत्महत्या करने वाला स्वोपार्जित वस्तु का उपभोग करने वाला, विलासी, दूसरों की घन-हानि करने वाला,भाग्यवादी पुरुष होता है ।।

धनपे घमंगृहस्थे सौम्ये दानप्रसिद्धवाग्भवति ।
क्रूरेदरिद्रभिक्षुविडम्बवृतिस्तथामनुजः ।।

धनेश नवम भाव में शुभग्रह होकर गया हो तो दान के द्वारा प्रसिद्ध, तथावचन का पक्का होता है। यदि क्रूर ग्रह हो तो दरिद्र, भिखारी, तथा सर्वत्र लज्जित(अपमानित) होता है ।।

दशमगृहस्थे धनपे नरेन्द्रमान्यो भवेन्नूपाल्लक्ष्मीः ।
सौम्यगृहगे च मातुर्मनुजः पितृपालको भवति ।।

धनेश यदि दशम भाव में गया हो तो मनुष्य राजा द्वारा सम्मानित तथा, राजासे लक्ष्मी (धन) प्राप्त करने वाला होता है। यदि बनेश दशम भाव में शुभग्रह कीराशि में हो तो माता-पिता का पालन-पोषण करने वाला होता है ।।

एकादशमः खेचरव्यवहारे श्रीपतिः स्यातः ।
लोकोधप्रतिपालनरतं च नरं भवेज्जातम् ।।

एकादश भाव में गया हुआ घनेश जातक को ग्रह व्यवहार (अथवा आकाश मेंसम्चरण करने वाले हवाई जहाज आदि) में कुशल, धनवान्, विख्यात् लोकसमूहका पालन करने वाला मनुष्य होता है।।

द्रविणपती व्ययलीने कृपणंधनवर्जितं क्रूरे ।
सौम्बे लाभालाभख्यातं पुरुषं वदेज्जातम् ।।

क्रूर द्वितीयेश यदि द्वादश भाव में हो तो मनुष्य, कृपण एवं निर्धन होता है ।यदि शुभग्रह हो तो लाभ-हानि के कार्य में विख्यात होता है ।।

द्वादश भावगत तृतीयेश फलम्

सहजपतिलंग्नगतो वाग्वादी लम्पटः स्वजनभेदी ।
सेवापरः कुमित्रः कूटकरः प्रोच्यते पुरुषः ।।

तृतीय भाव का स्वामी यदि लग्न में हो तो वह वाद-विवाद करने वाला,लम्पट (आवारा), आपस में फूट डालने वाला, सेवा कार्य में कुशल, दुष्ट मित्रों सेयुक्त, छल-प्रपञ्च करने वाला पुरुष होता है ।।

धनगृहगे सहजेशे भिक्षुर्विधनोऽल्पजीवनो मनुजः ।
बन्धुविरोधी क्रूरे सोम्यः पुनरीश्वरः खचरे ॥

क्रूर ग्रह तृतीयेश होकर यदि धन भाव में हो तो मनुष्य भिक्षुक घन से रहित,अल्पायु, भाइयों से विरोध करने वाला होता है, यदि शुभग्रह हो तो धनवान्होता है ।।

सहजगते सहजपतिः समसत्त्वं सुसुहृदं शुभस्वजनम् ।
देवगुरुपूजनरतं नृपलामपरं नरं कुरुते ॥

तृतीय भाव का स्वामी यदि तृतीय भाव में ही गया हो तो मनुष्य अपने समानबलशाली एवं अच्छे मित्रों से युक्त, हितैषी आत्मीय (भाई-बन्धु) जनों से सम्पन्न,देवता - गुरु के पूजन में लीन तथा राजा का लाभ कराने वाला होता है ॥

भ्रातृपती मातृगते पितृबन्धुसहोदरेषु सुखभोगी ।
मात्रा सह गैरकरः पितृवित्तस्य भक्षकः पुरुषः ।।

तृतीय भावेश यदि चतुर्थ भाव में गया हो तो वह पुरुष पिता-बन्धु (चचेरेमाई), सहोदर (सगे भाई बहनों) के बीच सुख भोग करता है । परन्तु माता केसाथ वैर करने वाला एवं पिता के धन का उपभोग करने वाला होता है ॥

दुप्रिक्यपती सुनचे सुतबान्धवसुतसहोदरः पाल्मः ।
दीर्घायुर्भवति नरः परोपकारी कनिरतमति ॥

तृतीयेश यदि पञ्चम भाव में गया हो तो उस व्यक्ति का पालन उसके पुत्र,मतीजे एवं भाई करते हैं तथा वह दीर्घायु एवं परोपकारी विचारों वाला होताहै ॥

षष्ठगते सहजपती बन्धुविरोधो नयनरोगी च ।
भूलाभो भवति भृशं कदाचिदपि रोगसङ्कलितः ॥

तृतीयेश यदि षष्ठ भाव में गया हो तो व्यक्ति भाइयों का विरोधी, नेत्ररोमी, अधिक मात्रा में भूमि प्राप्त करने वाला तथा कभी-कभी रोगों से ग्रस्त भीहोता है ।।

सप्तमगे सहजेशे नरस्य भार्या भवेत्सुशीला च ।
सौभाग्यवती युवति क्रूरे देवरगृहं याति ॥

सप्तम भाव में यदि तृतीयेश हो तो उस पुरुष की स्त्री सुशील और सौभाग्य-वती होती है। यदि तृतीयेण पापग्रह हो तो उसकी स्त्री देवर (पति के छोटे भाई)के घर (पास) जाती है (अर्थात् देवर से प्रेम करती है) ॥

भ्रातृपतिरष्टमगः सहजं मृतसोदरं नरं कुरुते ।
क्रूरे बाहुर्व्याङ्गिनमपि जीवति यद्यष्ट वर्षाणि ॥

प्रातृ स्थान (तृतीय भाव) का स्वामी यदि अष्टम भाव में गया हो तो उसकेसहोदर भाई की मृत्यु होती है। यदि तृतीयेश पापग्रह हो तो बाहु रोग से पीड़ितहोता है । यदि रोग से जीवित रहा तो आठ वर्ष की आयु होती है ॥

धर्मगते सहजपतो क्रूरे बन्धूज्झितस्तथा सौम्ये ।
सद्बान्धवच सुकृतीं सोदरभक्तो भवेन्मनुजः ॥

तृतीय भाव का स्वामी यदि क्रूर ग्रह हो और नवम भाव में स्थित हो तोमनुष्य भाइयों द्वारा परित्यक्त होता है । यदि शुभग्रह (तृतीयेश) हो तो अच्छे भाईबन्धुओं से युक्त सत्कार्य करने वाला तथा अपने सगे भाइयों का भक्त होता है ॥

दुविक्येशे दशमगते नृपपूज्यो मातृबन्धुपितृभक्तः ।
उत्तमबाघो बन्धुषु विनिश्चितो जायते जातः ॥

तृतीयेश यदि दशम भाव में गया हो तो जातक राजा द्वारा सम्मानित, माता-भाई एवं पिता का भक्त, उत्तम ज्ञानी, भाइयों के प्रति दृढ़ व्यवहार (प्रेम) रखनेवाला होता है ॥

लाभस्थः सहजेशः सुवान्धवं राजशालिन कुरुते ।
कुरुते बन्धुपु सेवाविधायिनं भोगनिरतं च ॥

सहजेश यदि लाभस्थान (ग्यारहवें भाव) में हो तो जातक अच्छे भाइयों सेयुक्त, राजा का आश्रय पाने वाला, भाइयों के प्रति सेवा भाव रखने वाला तथाभोग ऐश्वर्य सुख) में लीन रहता है ॥

व्ययगे दुश्चिक्येशे मित्रविरोधी च बन्धुसन्तापी ।
दूरे वासितबन्धुर्विदेशगामी नरो भवेज्जातः ॥

व्यय (द्वादश) भाव में यदि तृतीय स्थान का स्वामी गया हो तो मनुष्य मित्रोंका विरोधी, वन्धुओं को कष्ट देने वाला, बन्धुओं को दूर बसाने वाला तथा स्वयंविदेश भ्रमण करने वाला होता है ॥

दादश भावगत चतुर्थेश का फल

तुर्यपतिर्लग्नगतः पितृपुत्रयोः स्नेहं मिथः कुरुते ।
उत्तमे पितृपक्षे वैरी कलितं पितृनाम्ना प्रसिद्ध च ॥

चतुर्थ भाव का स्वामी यदि लग्न में गया हो तो पिता-पुत्र का परस्पर स्नेहबढ़ता है। उच्च कुल से पिता पक्ष (चाचा, मतीजा आदि) से वैरभाव रखने वालातथा पिता के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करने वाला होता है ॥

पातालपे धनस्ये क्रूरखगे पितृविरोधकृच्छुभे जातः ।
पितृपालकः प्रसिद्धः पिता भुनक्ताह तल्लक्ष्मीम् ॥

चतुर्थेश क्रूर ग्रह हो और धन भाव (द्वितीय) में बैठा हो तो जातक पिता काविरोधी होता है यदि शुभ ग्रह हो तो पिता का पालन करने वाला, विख्यात पुरुषहोता है तथा उसकी लक्ष्मी (सम्पत्ति) का उपयोग उसका पिता भीकरता है ।।

तुर्येशे सहजस्थे पितृमातृवेदनाकरं कुरुते ।
पित्रा सह कलहकर पितृबान्धवघातकं नियतम् ॥

चतुर्येश यदि तृतीय भाव में हो तो वह पिता एवं माता के लिए कष्ट करहोता है। पिता के साथ कलह करने वाला तथा सदैव पिता एवं भाइयों के लिएचातक होता है ॥

तुरंगते सुर्यपती पितर क्षितिपात्तप्रचुरमानः ।
विदितः पितृलाभकरो भवति सुधर्मा सुखी धनपः ॥

यदि चतुर्थेश चतुर्थ भाव में ही स्थित हो तो राजा द्वारा पिता का सम्मानकराता है तथा जातक स्वयं प्रसिद्ध, पिता को लाभान्वित करने वाला, मली मांतिधर्माचरण करने वाला, सुखी एवं धनपति होता है ।।

सुतगे तुर्यगृहेशे पितृसंलाभवांश्च दीर्घायुः ।
भवति कृतिप्रसिद्धः ससुतः सुतपालकश्चैव ॥

चतुर्थेश यदि पञ्चम भाव में गया हो तो जातक अपने पिता से लाभ प्राप्तकरने वाला, दीर्घायु, अपने कार्यों द्वारा प्रसिद्ध, पुत्रवान् तथा पुत्रों का पालनकरने वाला होता है ॥

हिबुकपती रिपुसंस्थे मात्रर्थविनाशकः शिशुर्जातः ।
पितृदोषरतः क्रूरे सौम्ये घनसभ्चयो तनयः ॥

चतुर्थ भाव का स्वामी यदि षष्ठ भाव में गया हो तथा क्रू ग्रह हो तो ऐसेयोग में उत्पन्न बालक अपनी माता के धन को नष्ट करने वाला, पिता के दोषोंका अन्वेषण करने वाला होता है। यदि शुभग्रह हो तो जातक धन का संग्रह करनेवाला होता है ।।

अम्बुपती सप्तमगे क्रूरे श्वशुरं स्नुषा न पालयति ।
सौम्ये पालयति पुनः कुलवतों कुजकवो कुरुतः ॥

चतुर्थ भाव का स्वामी क्रूर ग्रह सप्तम भाव में गया हो तो उस व्यक्ति कीपत्नी अपने श्वसुर का पालन (सेवा) नहीं करती है यदि शुभ ग्रह हो तो श्वसुरकी सेवा करती है। चतुर्थेश यदि मंगल या शुक्र हो तो पत्नी कुलीन (श्रेष्ठ) महिलाहोती है ।।

छिद्रगतस्तुयंपतिः क्रूरं रोगान्वितं दरिद्रं वा ।
दुष्कर्मकरं मृत्यु प्रियमथवा मानवं कुरुते ॥

पापग्रह चतुर्थेश होकर अष्टम भाव में गया हो तो जातक रोगी, दरिद्र,कुकर्म करनेवाला, तथा (जीवन से कब कर) मृत्यु की अभिलाषा करने वालाहोता है ।।

सुकृते तुयंपती पितर्यसङ्गी समस्तविद्यावान् ।
पितृधमंसग्रहपरः पितृनिरपेक्षो भवेन्मनुजः ॥

चतुर्थ भाव का स्वामी यदि नवम भाव में हो तो जातक अपने पिता काविरोधी, समस्त विद्याओं का ज्ञाता, पिता के धर्माचरण का अनुगमन करने वालापरन्तु पिता से किसी प्रकार की अपेक्षा न रखने वाला होता है। अर्थात् पिता केगुणों का आदर करते हुये भी पिता से पृथक् रहता है।

पातालपेऽम्बरगते पापे सुतमातरं त्यजेज्जनकः ।
सृजते त्वन्यां दयितां सौम्ये पुनरन्यसेवकः पुरुषः ॥

पापग्रह चतुर्थेश होकर दशम भाव में गया हो तो जातक का पिता अपनीपत्नी (जातक की माता) का परिस्थान कर अन्य स्त्री के साथ सम्बन्ध करता है ।यदि चतुर्मेश शुभग्रह हो तो अन्य स्त्री का भी सेवन करता है। (अपनी पत्नी कापरित्याग नहीं करता।) ॥

एकादशे तुर्यपतो धर्मी पितृपालकः सुकर्मा च।
पितृभक्तो भवति पुनः प्रचुरायुर्व्याधिरहितश्च ॥

चतुर्थेश एकादश भाव में गया हो तो धार्मिक आचरण करने वाला, पिता कीआज्ञा का पालक, अच्छा कर्म करने वाला, पिता का भक्त, दीर्घायु तथा रोग सेरहित होता है ॥

द्वादशगे तुर्यपतौ मृतपितृको वा विदेशगो वाच्यः ।
पुत्रस्य पापखेटे चान्यपितुर्जन्म निर्देश्यम् ॥

चतुर्थ भाव का स्वामी (शुभग्रह हो तथा) बारहवें भाव में गया तो जातक केपिता की शीघ्र मृत्यु होती है अथवा वह विदेश में निवास करता है। यदि चतुर्थेशपापग्रह हो तो अन्य पिता (परव्यक्ति) से उत्पन्न होता है ॥

पञ्चमेश का द्वादश भावगत फल

लग्नगत पचमपे प्रसिद्धस्तोकतनयपरिकलितम्।
शास्त्रविदं वेदविदं सुकर्मनिरतं तथा कुरुते ॥

पचम भाव का स्वामी यदि लग्न (प्रथम भाव) में गया हो तो जातक प्रसिद्ध,अल्प सन्तान से सुशोभित, शास्त्र को जानने वाला, वेदश तथा सत्कर्म में मीनरहने वाला होता है ॥

पश्चमपतिर्धनस्यः क्रूरे खेटे'घनोज्झितं कुरुते।
गीतादिकलाकलितं कष्टमस्थानकप्रचुरम् ॥

पचम भाव का स्वामी यदि क्रूर ग्रह हो तथा द्वितीय भाव में स्थित हो तोजातक धन से रहित, संगीत आदि कलाओं का ज्ञाता, प्रचुर स्थान (अधिक भूमिअथवा मकान) से युक्त तथा कष्ट से भोजन (निर्वाह) करने वाला होता है ॥

तनयपतिः सहजगतः सुमधुरवाक्यं बन्धुजनेषु विदितम्।
कुरुते सुतास्तचीयाः परिपालयति तद्बन्धून् ॥

पञ्चम भाव का स्वामी तृतीय भाव में गया हो तो जातक मधुरभाषी, अपनेबन्धुवर्ग में सर्वाधिक यशस्वी होता है। उसके पुत्र उसके भाई बन्धुओं का पालनकरने वाले होते हैं ॥

सुतपः पातालगतः पितृकर्मरतं प्रपालितं पित्रा।
जननीभक्तं कुरुते क्र. रेस्तु विरोधिनं पितृभिः ॥

पञ्चमेश यदि चतुर्थ भाव में गया हो तो जातक पिता के कार्य को करनेपिता द्वारा पालित तथा माता का भक्त होता है। यदि पञ्चमेश क्रूर ग्रहहो तो वह पिता के साथ विरोधी भाव रखता है ॥

तनयगतस्तनयपतिर्मतिमन्तं मानितं जनं कुरुते।
सुतकलितं प्रकटजनविख्यातं मानवं कुरुते ॥

पञ्चमेश यदि पञ्चम भाव में गया हो तो जातक अत्यन्त बुद्धिमान, सम्मानित,योग्य पुत्रों से युक्त तथा सम्मानित लोगों के बीच प्रख्यात होता है ॥

पन्चमपतिषष्ठे शत्रुयुतं मानहीनं च।
रोगयुतं धनरहितं क्ररः खचरः करोति नरम् ॥

यदि पञ्चम का स्वामी क्रूर ग्रह हो तथा षष्ठ भाव में स्थित हो तो वह पुरुषसर्वव शत्रुओं से युक्त, सम्मान से रहित (निन्दित), रोगी, तथा निर्धन होताहै ॥

तनयपतौ सप्तमगे स्वसुताः सुभगा देवगुरुभक्ताः ।
प्रियवादिनी सुशीला नरस्य ननु जायते दयिता ॥

पञ्चमेश यदि सप्तम भाव में गया हो तो उस व्यक्ति के सभी पुत्र सुन्दर,देवता एवं गुरु के भक्त होते हैं तथा उसकी पत्नी, सुशीला एवं प्रियवादिनी (मधुरभाषिणी) होती है ॥

सुतपे मिघनगृहस्थे कटुवाक्यो भार्यायाऽयुतो भवति ।
सभ्यङ्गचण्डशब्दाः सहजांस्तनया भवन्ति यथा ॥

पचमेश यदि अष्टम भाव में गया हो तो जातक पत्नी से रहित हो जाता है(अर्थात् शीघ्र पत्नी की मृत्यु हो जाती है) । तथा उसके भाई एवं पुत्र व्यङ्ग ओरवचन बोलने वाले होते हैं ॥

सुकृतगतस्तनयपतिः सुबोधविद्य कवि सुगीतिज्ञम् ।
नृपपूजितं सुरूपं नाटकरसिक नरंनाटकरसिक नरं कुरुते ॥

सन्तान (पंचम) भाव का स्वामी नवम भाव में गया हो तो मनुष्य व्युत्पन(सरलता से सभी विद्याओं को समझने वाला), कवि, संगीत का ज्ञाता, राजाद्वारा सम्मानित, सुन्दर तथा नाटक में रुचि रखने वाला होता है ॥

सुतपतिरम्बरलीनो नृपकर्माणं नृपात् कलितभावम् ।
सत्कर्मरतं प्रवरं जननीसुखकृत्सुतं कुरुते ॥

पञ्चमेश यदि दशम भाव में हो तो राजकीय कार्य करने वाला, राजा सेसम्मान प्राप्त (उच्चपदाधिकारी), सत्कार्य में लीन, श्रेष्ठ, माता को सुख पहुँचानेबाला (सुत) व्यक्ति होता है ॥

लाभगते सुतनाथे शूरः सुतवान् सुहृत्कृतासङ्गः ।
गीतादिकलाकलितो नृपभोगी जायते जातः ॥

लाभ (एकादश) भाव में यदि पञ्चमेश गया हो तो जातक शूर (बहादुर),पुत्रवान्, मित्रों का साथ देने वाला, गीत आदि (संगीत) कलाओं का ज्ञाता,राजसुख भोग करने वाला होता है ॥

पश्चमपे द्वादशगे क्रूरे सुतरहितः शुभे सुसुतः ।
सुतसन्तापपरः स्याद्विदेशगामी भवेन्मनुजः ॥

पचम भाव का स्वामी द्वादश भाव में गया हो तथा क्रू ग्रह हो तो मनुष्यसन्तान हीन होता है । यदि शुभ ग्रह हो तो पुत्रवान् सन्तान से सन्तप्त (दुःखी)तथा विदेश भ्रमण करने वाला होता है ॥

द्वादश भावगत षष्ठेश का फल

षष्ठेशो लग्नगतो नीरुक्सबलः कुटुम्बकष्टकरः ।
बहुपक्षो रिपुहन्ता भवति नरः स्वैरवचनधनः ॥

षष्ठ भाव का स्वामी यदि लग्न में गया हो तो जातक निरोग, बलवान्,परिवार को कष्ट देने वाला, गुट बन्दी करने वाला, शत्रुओं का दमन करने वाला,स्वतन्त्र तथा अपने वचन का घनी (बातों पर दृढ़ रहने वाला) होता है ॥ ६२ ॥

शत्रुपतौ द्रविणस्थे दुष्टचतुरो हि संग्रहपरेष्टः ।
स्थानप्रवरो विदितो व्याधिततनुः सुहृद्धनहा ॥

यात्रु (षष्ठ) भाव का स्वामी यदि धन (द्वितीय) भाव में गया हो तो वहदुष्ट, चतुर, (धन) संग्रह करने में तत्पर, श्रेष्ठ स्थान का स्वामी, विख्यात,रोगी शरीर वाला तथा मित्र के धन को नष्टकरने वाला होता है ॥

षष्ठपति सहजस्यः कुरुते तंलोककष्टकरम् ।
निजजनमारणचतुरं कष्टसंग्रामतस्तस्य ।।

बष्ठेश जिसके तृतीय भाव में हो वह समाज के लिए कष्ट कर होता है। अपनेही व्यक्तियों को मारने वाला संग्राम से कष्ट पाने वाला होता है ॥

षष्ठाधिपतिस्तुर्ये पितृतनयो वैरिणो मिथः कुरुते ।
सरुक् पिता सोऽथ सुतो लक्ष्मीं लभते नरः सुचिरम् ।।

षष्ठेश यदि चतुर्थ भाव में हो तो पिता और पुत्र मे पारस्परिक शत्रुता होतीहै। पिता रोगी होता है स्वयं वह तथा उसके लड़के अधिक समय तक लक्ष्मी(ऐश्वर्य) लाभ करते हैं ॥

रिपुभवनपती सुतगे पितृननयो वैरिणी मृतिः सुततः ।
क्रूरे शुभे च विघनः पदवीदुष्टच तत्कपटी ।।

शत्रु भाव का स्वामी क्रूर ग्रह यदि पञ्चम भाव में गया हो तो पिता और पुत्रमें शत्रुता होती है तथा पुत्र द्वारा पिता की मृत्यु भी होती है। यदि शुभग्रह हो।तो घन से रहित, दुष्ट के रूप में विख्यात (दुष्टपदवी प्राप्त), तथा कपटी होताहै ॥

रिपुभवनेशरिपुस्थेनीरुग्वंरी सुखो कृपणः ।
न हि जन्मतोऽपि सीदत कुस्थानवासो नरो भवति ।।

षष्ठेश यदि षष्ठ भाव में हो तो मनुष्य निरोग, शत्रुओं से युक्त, सुखी, कृपण(कंजूस), जीवन में कभी दुख न प्राप्त करने वाला तथा कुत्सित (बुरे) स्थानमें रहने वाला होता है ॥

अहितपती सप्तमगे क्रूरे भार्या विरोधिनी चण्डी ।
तापकरो स्वथ सौम्ये वन्ध्या वा गर्भनाशपरा ॥

षष्ठेश यदि सप्तम भाव में गया हो तथा क्रूर ग्रह हो तो उसकी पत्नीविरोधी प्रकृति वाली, स्वभाव से अत्यन्त उग्र, कष्ट देने वाली होती है यदि शुभ ग्रहहों तो वन्ध्या (सन्तानहीन) या मृतवत्सा (जिसके गर्भ नष्ट हो जाते हों याबच्चा जन्म लेकर मर जाता हो) होती है ॥

शने ग्रहणिकारुजोविषधराद्धरानन्दनाद्
बुधाच्च विषदोषतः सपद मृत्युरणाङ्कतः ।
मृगपतेवं धात्प्रकटमष्टमे ' षष्ठपाद्-
गुरोरपि च दुष्टधीनं पनदोषवाञ्छुक्रतः ॥

शनि षष्ठेश होकर अष्टम भाव में गया हो तो सग्रहणी रोग से, मंगल हो तोविषधर (सर्प, बिच्छू आदि) से, बुध हो तो विष प्रयोग से, चन्द्रमा हो तो शीघ्र१. अष्टमात् इति पूर्व पाठःही (आकस्मिक हृदयगति रुकने से), सूर्य हो तो सिंह (शेर, बीता आदि) से,गुरु हो तो दुष्ट बुद्धि वाले (गुण्डा, डाकू आदि) व्यक्ति से जातक की मृत्यु होतीहै। यदि बष्ठेश शुक्र अष्टम में हो तो नेत्रों से रोगी होता है ॥

सत्रुपतिर्यदि नवमः क्रूरः खचरस्तदा भवेत् सञ्जः ।
बन्धुविरोधी शास्त्रं न मम्यते याचकः पुरुषः ।।

षष्ठेश यदि नवम भाव में गया हो तथा क्रूर ग्रह हो तो वह व्यक्ति लंगड़ा,नाइयों का विरोधी, शास्त्र न मानने वाला, तथा भिक्षा वृत्ति वाला होता है ॥

अरिपे दशम गृहस्थे करे मातृ रिपुस्तदा दुष्टः ।
धर्मसुतपालनमतिर्मातुर्दोषीभवेद्वरी ।।

बष्ठेश यदि दशम भाव में हो तथा क्रूर ग्रह हो तो जातक अपनी माता काशत्रु, दुष्ट, अपने धर्म और पुत्र के पालन में अनुरक्त माता के दोष के कारण सदेवउसका शत्रु बना रहता है ।।

वैरिपतो लाभगते क्रूरे मरणं विपक्षतो भवति ।
वैरीतस्करहानिश्चतुष्पदाल्लाभवान्मनुजः ।।

शत्रु स्थान का स्वामी लाभस्थान में स्थित हो तथा क्रूर ग्रह हो तो शत्रु पक्षद्वारा मृत्यु होती है। उसके शत्रु अधिक होते है, चोरों से हानि तथा पशुओं सेलाभ होता है ।।

षष्ठपती द्वादशगे चतुष्पदान् द्रव्यहानिकरः ।
गमनागमनाल्लक्ष्मीहा देवपरः केवलं भवति ।।

षष्ठेश यदि बारहवें भाव में गया हो तो जातक पशुओं के द्वारा धन हानिकरने वाला, यात्रा में अपव्यय करने वाला, तथा भाग्यवादी होता है ।।

द्वादश भावगत सप्तमेश का फल

दयितेशो लग्नगतः स्तोकस्नेहिनमन्यभार्यायाम् ।
भोगभुजं रूपयुतं जनयति दयितादलितचित्तम् ।।

सप्तमेश यदि लग्न में गया हो तो जातक परस्त्री से अल्प स्नेह करने वाला,ऐश्वर्य का भोग करने वाला, सुन्दर, तथा अपनी स्त्री में अत्यधिक आसक्तहोता है ।।

जायापती धनस्थे दुष्टा दयितासुतेप्सिता भवति ।
वित्तं च कलत्रकृतं सततंवसतो विसङ्गव ।।

सामेव यदि द्वितीय भाव में हो तो उस व्यक्ति की स्त्री स्वभाव से दुष्ट एवंपुत्रों की अभिलावा रखने वाली होती है। उसे स्त्री से धन लाभ होता है तथा साबमें रहते हुये भी एक दूसरे से दूर रहते है। (मावार्थ यह है कि पत्नी को नौकरीके कारण अलग भी रहना पड़ता है।) ।।

सप्तमने सहजगते ह्यात्मबलो बन्धुवत्सली दुःखी ।
देवचरता सुरूपा गृहिणी क्रूरे सुहृद्गृहगा ॥

सप्तमेश यदि तृतीय भाव में हो तो वह व्यक्ति आत्म-बल युक्त, बन्धुओं सेस्नेह करने वाला तथा दुःखी होता है । यदि सप्तमेश पाप ग्रह हो तो उसकी पत्नीअपने देवर (पति के छोटे भाई) में आसक्त, सुन्दरस्वरूपवाली, तथा मित्रों के गृहमें अधिक जाने वाली होती है ।।

जायेशे तुर्यस्थे लोलः पितृर्वरसाधकस्नेही ।
अस्य पिता दुर्वाक्यस्तद्धार्यां पालयेज्जनकः ।।

सप्तमेश यदि चतुर्थ भाव में हो तो वह व्यक्ति चञ्चल एवं पिता के शत्रुओं सेस्नेह रखने वाला होता है। उसका पिता भी कटु वचन बोलने वाला होता हैतथा उसकी पत्नी का पालन उसके पिता के घर (मायके) में होता है ।।

सप्तमपती सुतस्थे सौभाग्ययुतः सुतान्वितः पुरुषः ।
प्रियसाहसो दुष्टमतिस्तत्तनयः पालयेद्द्यिताम् ॥

सप्तमेश यदि पञ्चम भाव में हो वह पुरुष सौभाग्यशाली, पुत्रों से युक्त, साहसप्रिय (अधिक साहसी) एवं दुष्ट विचारों वाला होता है। तथा उसकी पत्नी कापालन उसके पुत्र करते हैं ।।

रिपुगृहगः कान्तेशः प्रियया सह वैरिणं सम्भार्यम् ।

दयितासङ्गक्षयिणं क्रूरः कुरुते च मृत्युपदम् ॥

शत्रु स्थान में गया हुआ सप्तमेश स्त्री के साथ शत्रुता कराने वाला तथा स्त्रीरोगिणी करने वाला होता है। यदि सप्तमेश क्रूर ग्रह हो तो जातक स्त्री संसर्गसे क्षीण (अथवा क्षय रोग ग्रस्त) होकर मर जाता है ॥

सप्तमपः सप्तमगः परमायुः प्रीतिवत्सलः पुरुषः ।
निर्मलशीलसमेतस्तेजस्वो जायते जातः ॥

सप्तमेश यदि सप्तम भाव में हो तो जातक दीर्घायु युक्त, प्रेमी (मधुर सम्बन्धरखने वाला), सदाचारी, सुशील तथा तेजस्वी होता है ॥

सप्तमपतिर्निधनगतो गणिकासु रतः करग्रहरहितः ।
नित्यं चिन्तायुक्तो मनुजः किल जायते दुःखी ॥

सप्तमेश यदि अष्टम भाव में हो तो जातक बेश्याओं में अनुरक्त, अविवाहितसदैव चिन्ता युक्त तथा दुखी होता है ॥

सुकृतगते सप्तमपे तेजोवाञ्जीलवान् प्रियाऽप्येवम् ।
क्रूरे षष्ठविरूपा लग्नेशो वीक्षिते नये प्रबलः ॥

नवम भाव में यदि सप्तमेश गया हो तो व्यक्ति तेजस्वी, शील सम्पन्न तथा इसीप्रकार की (सुशीला) स्त्री से युक्त होता है। यदि सप्तमेश क्रूर ग्रह हो तो वहकुरूप एवं नपुंसक होता है। यदि लग्नेश से सप्तमेश दृष्ट हो तो वह व्यक्ति राज-नीति में कुशल होता है ॥

सप्तमपे दशमस्ये नृपदोषी लम्पटः कपटचित्तः ।
क्रूरे दुःखार्त्तः स्याच्छत्रोवंशगो भवेत्पुरुषः ॥

सप्तमेश यदि दशम भाव में गया हो तो वह पुरुष राजा की दृष्टि में दोषी,लम्पट (लफंगा), कपटी हृदय वाला होता है। यदि सप्तमेश क्रूर ग्रह हो तोदुःख से पीड़ित, तथा शत्रुओं के वशीभूत होता है ॥

लाभस्थ जायेशे भक्ता रूपाम्विता सुशीला च ।
दयिता परिणीता स्यान्नरस्य ननु जायते सततम् ॥

सप्तमेश यदि लाभ (एकादश) भाव में गया हो तो उस व्यक्ति की विवाहितापत्नी रूपवती, सुशीला, तथा भक्त (पतिव्रता से अभिप्राय है) होती है ॥

सप्तमपे द्वादशगे गृहबन्धु' तो न वा भवेद्धार्या ।
सा लोला दुष्टता दूच्चलति च तस्य पुरुषस्य ॥

सप्तमेश यदि द्वादश भाव में स्थित हो तो वह व्यक्ति अपने गृह एवं बन्धु(परिवार) के कार्यों में तल्लीन रहता है। परन्तु उसकी कम आयु वाली नयीपत्नी (अधिक अवस्था हो जाने पर नवीन छोटी आयु वाली कन्या से विवाहहोता है ।) चञ्चला, दुष्टा तथा पति से दूर-दूर रहने वाली होती है ॥

द्वादश भावगत अष्टमेश फल

अष्टमपे लग्नगते बहुविघ्नो दीर्घरागभृत्स्तेनः ।
नेष्टानुवादनिरतो लक्ष्मीं लभते नृपतिवचसा ॥

अष्टम भाव का स्वामी यदि लग्न में गया हो तो जातक बहुत विघ्नों से युक्त,दीर्घकाल से रोगी, चोर, अप्रिय कार्यों में संलग्न, तथा राजा के आदेश से धन प्राप्तकरने वाला होता है ॥

निधनपतो धनलोनेऽल्पजीवी वैरिमान्नरवीरः ।

क्रूरे सौम्येऽतिशुभं किमु क्षितिपालता मरणम् ।।

यदि क्रूर ग्रह अष्टमेश होकर द्वितीय भाव में स्थित हो तो वह व्यक्ति,अल्पायु, शत्रु से युक्त तथा चोर होता है। यदि शुभग्रह हो तो अत्यन्त शुभकारकहोता है परन्तु राजा के द्वारा मृत्यु (मृत्यु दण्ड से) होती है ।।

अष्टमपती तृतीये बन्धुविरोधी सुहृद्विरोधी च ।
व्यङ्गो दुर्वाग्लोलः सोदररहितो भवत्यथ वा ॥

अष्टम भाव का स्वामी तृतीय भाव में हो तो अपने बन्धुओं एवं मित्रों सेविरोध करने वाला, अपङ्ग, कटुभाषी, चञ्चल तथा सहोदर भाई से रहितहोता है ॥

निधनेशे तुर्यगते पितृगते पितृतो नयेल्लक्ष्मीम् ।
पितृपुत्रयोश्च युद्ध जनको रोगान्वितो भवति ।।

अष्टमेश यदि चतुर्थ भाव में हो तो पिता के मरने के वाद पैतृक धन का लाभहोता है। (पाठान्तर 'पितृ रिपुव' के अनुसार जातक पिता का विरोधी होताहै ।) पिता और पुत्र का युद्ध होता है तथा उसका पिता रोग युक्त होता है ।।

छिद्रपत्तौ तनयस्थे क्रूरे सुतविरहितः शुभे तु शुभः ।
जातोऽपि नैव जीवति जीवेदथ कितवकर्मरतः ॥

अष्टमेश यदि पञ्चम भाव में स्थित हो तथा क्रूरग्रह हो तो जातक सन्तानहीन होता है। यदि शुभ ग्रह हो तो शुभकारक होता है। यदि किसी प्रकार सन्तानहो तो नष्ट हो जाय ।।

छिद्रेशे रिपुसङ्गते दिनकरे भूभृद्विरोधी गुरौ
त्वङ्ग' सीदति दृष्टिरोगकलितः शुक्र ़ स रोगो विधौ ।
भौमे कोपयुतो बुधे हि भयभृत्तुण्डातिभूतः शनी
कष्टं वे विदधाति तत्र शशिभृत्सोम्येक्षितेनैव किम् ।।

अष्टम भाव का स्वामी सूर्य हो और वह षष्ठ भाव मे गया हो तो जातकराजा का विरोधी, या गुरु हो तो अङ्गों में पीड़ा, शुक्र हो तो नेत्रों में कष्ट,रोगी, मंगल हो तो क्रोधी, बुध हो तो भयभीत (आतङ्कित), शनिरोग होता है। यदि षष्ठ में (अष्टमेश) चन्द्रमा हो और उसे बुबचन्द्रमा हो तोहो तो मुख मेंदेश रहा हो तो विविध प्रकार से कष्टदायक होता है ॥

मृत्युपती सप्तमगे दुरुदररुक् शोलवल्लभो दुष्टः ।
क्रूरेभार्याद्वेषी कलत्रदोषान्मृति लभते ॥

अष्टमेश यदि सप्तम भाव में हो तो पेट में बुरा रोग होताहै, सुशीला स्त्री का पति तथा दुष्ट होता है। यदि क्रूर ग्रह अष्टमेश हो तो वहस्त्री से द्वेष करने वाला तथा स्त्री के दोष से मृत्यु प्राप्त करने वाला होता है ॥

निधनपती निघनगते व्यवसायी व्याधिवजितो नीरुकू ।
कितवकलाकलितवपुः कितवकुले जायते विदितः ॥

यदि अष्टमेश अष्टम भाव में स्थित हो तो जातक व्यापारी, व्याधियों सेरहित, नीरोग, पूर्तता में निपुण घूसों (ठग) के कुल में उत्पन्न तथा विख्यातहोता है ।।

धर्मस्थे मृतिनाचे निःसङ्गी जीवविघातकः पापी ।
निर्बन्धुनिः स्नेही पूज्यो विमुखे मुखे व्यङ्गः ॥

अष्टम भाव का स्वामी यदि धर्म (नवम) भाव में स्थित हो तो वह व्यक्तिमित्रों से रहित, जीवों की हत्या करने वाला (शिकारी), पापी, बम्बुओं से रहितस्नेहहीन (निर्दय), विपक्षियों में सम्मानित, तथा मुख में रोगयुक्त होता है ।।

कमंगते निघनेशे नृपकर्मा नीचकर्मनिरता ।
अलसः क्रूरे खचरे तनयो माता न वा जीवति ।।

यदि अष्टम भाव का स्वामी कर्म (दशम) स्थान में गया हो तो वह व्यक्तिराजा का कार्य करने वाला एवं नीच कर्म में आसक्त, होता है । यदि अष्टमेश क्रूरग्रह हो तो आलसी होता है तथा उसके माता या पुत्र कां (असामयिक) निधनहोता है ।।

लाभस्ये मृत्युपती बाल्ये दुःखी सुखी भवति पश्चात् ।
दीर्घायुः सोम्यखगे पापेऽल्पायुर्नरो भवति ।।

यदि अष्टमेश लाभ (एकादश) भाव में हो तो जातक बाल्यावस्था में दुःखीतथा बाद में सुखी होता है। यदि अष्टमेश शुभ ग्रह हो तो वह दीर्घायु, पापग्रहहो तो अल्पायु होता है ।।

व्ययसंस्थितेऽष्टमेशे क्रूरवाक्तस्करः शठो निषुणः ।
आत्मगतिष्यंङ्गवपुतस्तु काकादिभिर्भक्ष्यः ।।

व्यय (द्वादश) भाव में यदि अष्टमेश हो तो वह व्यक्ति क्रूर (कठोर) वचनबोलने वाला, चोर, दुष्ट, निर्दय, स्वेच्छाचारी तथा विकृत अंगों वाला होता है ।मरने के बाद कौवा आदि (पक्षियों) का मक्ष्य होता है (अर्थात् निर्जन स्थान मेंमरने से उसका संस्कार नहीं हो पाता ।) ।।

द्वादश भावगत नवमेश का फल

लग्नगते नवमेशे देवगुरूणां सुसेवकः शूरः ।
कृपणः क्षितिपतिकर्मा स्वल्पग्रासी भवति मतिमान् ।।

नवमेश यदि लग्न में गया हो तो जातक देवता और गुरु कीअच्छी तरहसेवा करने वाला, शूर, कंजूस, राजकीय कार्य करने वाला, अल्पाहारी (कमभोजन करने वाला) तथा बुद्धिमान होता है।।

नवमेशे धनयाते वृषतो विवितः सुशीलवात्सल्यः ।
सुकृती बदनव्यङ्गचतुष्पदोत्पन्नपीडित मनुजा ।।

नवमेश यदि धन (द्वितीय) भाव में गया हो तो मनुष्य बैलों के सम्बन्ध सेविख्यात, मृदुभाषी, अच्छे कार्यों में संलग्न, मुख पर विकार युक्त, चौपायों(पशुओं) से पीड़ित रहने वाला होता है ।।

सहजगते सुकृतपती रूपस्त्रीबन्धुवत्सलः पुरुषः ।
बन्धुस्त्रीरक्षणकृद् यदि जीवति बन्धुभिः सदा सहितः ।।

नवम (भाग्य) भाव का स्वामी यदि तृतीय भाव में गया हो तो वह व्यक्तिसौन्दर्य, स्त्री तथा बन्धुओं का प्रेमी बन्धु और स्त्री की रक्षा करने वाला होता है ।यदि वह जीवित रहता है तो सदैव उसे भाइयों का साथ मिलता है ।।

सुकृतेथे हिब्रुकस्थे पितृभक्तः पितृयात्रादिकेऽपि हितः ।
विदितः सुकृती पुरुषःपितृकर्मरतमतिर्भवति ।।

भाग्येश यदि चतुर्थ भाव में हो तोवह व्यक्ति पिता का भक्त, पिता के लिएतीर्थ यात्रा आदि की व्यवस्था करने वाला, विख्यात, अच्छे कार्यों में संलग्न तथापिता के कार्य में रुचि रखने वाला होता है ।।

सुकृतगृह सुतस्थे सुकृती देवगुरुपूजने निरतः ।
वपुषासुन्दरमूर्तिः सुकृतसमेताः सुता बहवः ।।

नवम भाव का स्वामी पञ्चम भाव में गया हो तो जातक सत्कर्म करनेवाला, देवता और गुरुगुरु के पूजन में रत (आस्तिक) शरीर से सुन्दर स्वरूप बालातथा बहुत से सदाचारी पुत्रों से युक्त होता है ।।

शत्रुप्रणतिपरायणधर्मनिमग्नं कलाविकलकायम् ।
दर्शन निन्दानिरतंसुकृतपतिः षष्ठः कुरुते ॥

यदि नवमेश षष्ठ भाव मेंहो तो वह व्यक्ति शत्रुओं की स्तुति (चापलूसी)करने वाला, धर्म कार्य में संलग्न, कला की दृष्टि से विकृत शरीर वाला, तथादर्शनशास्त्र की निन्दा करने वाला होता है॥

नवमपती सप्तमगे सत्यवती सुवदना सुरूपा च ।
शील श्रीयुतदपिता सुकृतयुता जायते नियतम् ।।

नवम भाव का स्वामी सप्तम भाव में गया हो तो सत्यवादिनी, सुमुखी,सुन्दर स्वरूपवाली, शील और कान्ति से युक्त तथा सदैव सत्कर्म में रत रहने वालीपत्नी होती है ।।

दुष्टो जन्तुविघाती गृहबन्धुविवर्जितः सुकृत रहितः ।
निघनगते नवमो करे षण्ढः स विज्ञेयः ।।

नवमेश यदि अष्टम भाव में गया हो तो जातक जन्तुओं का वध करने वाला,ग्रह मौर बन्धु (माई - कुटुम्बी) से रहित तथा सत्कर्म से हीन होता है। यदि नवमेश पापग्रह हो तो जातक नपुंसक होता है।

सुकृतगतः सुकृतपतिः स्वबन्धुभिः प्रीतिमतुलितसमत्वम् ।
दातारंदेवगुरौस्वजनकलत्रादिसंसक्तम् ।।

नवमेश यदि नवम भाव में गया हो तो अपने भाइयों से अत्यन्त स्नेह तथासमान भाव रखने वाला, दानी, देवता, गुरु तथा आत्मीय (मित्र बन्धु) जनों,पुत्र आदि में आसक्त रहता है ।।

नृपकर्माणं शूरं मातापित्रोव पूजकं पुरुषम् ।
धर्मख्यातं कुरुतेसुकृतपतिर्गगनगृहभीलः ।।

नवम भाव का स्वामी यदि दशम भाव में स्थित हो तो व्यक्ति राजकीय कर्म-चारी, शूर, माता-पिता का आदर करने वाला तथा धार्मिक आचरण से प्रसिद्धहोता है ।।

दीर्घायुर्धर्मपरो घनेश्वरः स्नेहलो नृपतिलाभी ।
सुकृतख्यातः सुसुतः सुकृतविभो लाभभवनस्ये ।।

नवम भाव का स्वामी लाभ (एकादश) माव में हो तो जातक दीर्घजीवी, धर्मपरायण, धनपति, लोगों का प्रियपात्र, राजा से लाभान्वित होने वाला, अपनेसत्कर्मों से विख्यात तथा अच्छे (योग्य) पुत्रों वाला होता है ।।

द्वादशगे सुकृतेशे मानी देशान्तरे सुरूपश्च ।
विद्यावाञ्छुभखेटे क्रूरे च भवेतिधूर्तः ।।

बारहवें भाव में यदि नवमेश गया हो तो वह मनुष्य, अभिमानी, दूसरों केस्थान में रहने वाला होता है। यदि नवमेश शुभग्रह हो तो विद्या से युक्त यदिक्रूर ग्रह हो तो अत्यन्त धूर्त होता है ।।

द्वादश भावगत दशमेशफल

दशमपती लग्नगते मातरि बैरी पितुर्भक्तः ।
मृत्युं गते च ताते खलु परपुरुषरता भवति माता ।।

दशम भाव का स्वामी लग्न (प्रथम भाव) में गया हो तो जातक माता काशत्रु तथा पिता का भक्त होता है।पिता की मृत्यु के बाद माता पराये पुरुष केसाथ सम्बन्ध कर लेती है ।।

वित्तस्थे गगनपती मात्रा पाल्यः सुतो भवति लोभी ।
मातरि दुष्टो नितरी स्वल्पग्रासी भुतसुकर्मा च ।।

दशमेश धन भाव में गया हो तो जातक का पालन-पोषण केवल माढा हीकरती है (अर्थात् पिता का सहयोग नहीं मिलता)। तथा वह बालक नोमी,माता के प्रति दुष्ट, निरन्तर अल्प आहार (भोजन) ग्रहण करने वाला, श्रोता(कथा, वार्ता आदि सुनने वाला) एवं सुन्दर कर्म करने वाला होता है ॥

मातृस्वजनविरोधी सेवानिरतो नकर्मणि समर्थः ।
मातुलपरिपालितः स्याद्दशमपतीसहजभवनस्थे ।।

दशम भाव ' का स्वामी' यदि तृतीय भाव मेंगया हो तो वह व्यक्ति माताएवं आत्मीय जनों का विरोधी, सेवा कार्य में संलग्न, कार्य करने में असमर्थ तथामामा के द्वारा पालित होता है ॥

व्योमपती तुयंगते सुखे तु विरतःसदाचारः ।
भक्तचमातृपित्रोनृपमानीजायते पुरुषः ।।

दशमेश यदि चतुर्थभाव में गया हो तो पुरुष सुख से रहित, सदाचारी,पिता का भक्त तथा राजा द्वारा सम्मानित होता है ॥ ११३ ॥

शुभकर्मको विडम्बी नृपलाभी गोतवाद्यनिरतः स्यात् ।
गगनपती तनयगते पालयति च तं सुतं माता ।।

दशम भाव का स्वामी यदि पञ्चम भाव मेंवाला, डींग हांकनेवाला, राजा से लाभ प्राप्तगया हो तो व्यक्ति शुभकार्य करनेकरने वाला, संगीत वाद्य में रुचिरखने वाला, होता है तथा उसका पालन-पोषण केवल माता ही करती है ॥

अम्बरपे रिपुसंस्थे शत्रुभयात्कातरः कलहशीलः ।
कृपणः कृपया हीनो नरो न रोगी भवति लोके ।।

शत्रु (षष्ठ) भाव मे यदि दशमेश गया हो तो वह शत्रुओं के भय से कातर,झगड़ालू, कंजूस, निर्दय तथा निरोग बनाता है ॥

सुतवती शुभरूपसमन्विता निजपतिप्रतिपालनलालसा ।
भवति तस्य शुभं कुरुते सदा प्रियतमाम्बरपे दयितां गते ।।

दशमभाव का स्वामी यदि सप्तम भाव में गया हो तो उस व्यक्ति की स्त्री पुत्रोंबाली, सौन्दर्य युक्त, पति सेवा में सदैव तत्पर तथा पति का सदैव शुभ करनेवाली पतिप्रिया होती है ॥

पुष्करपतिरष्टमगः क्रूरं शूरं मृषान्वितं दुष्टम् ।
मातरि संतापकरं जनयति तनुजीवितं कितवम् ।।

दशमेश यदि अष्टम भाव में गया हो तो जातक क्रूर स्वभाव वाला, शूर, झूठबोलने वाला, दुष्ट, माता को कष्ट देने वाला, अल्प आबु बाला तथा प्रपतीहोता है ॥

शुभशीलः सबन्धुः सन्मित्रो दशमपे नवमलीने ।
तन्मातापि सुखीला सुकृतवती सत्यवचनरता ।।

दशमेश यदि नवम भाव में स्थित हो तो जातक सुशील, अच्छे मित्रों एवंभाइयों वाला होता है। उसकी माता भी सुशीला, अच्छे कर्मों को करने वालीतथा सत्यवादिनी होती है ॥

गगनपतिर्गगनस्थः कुरुते जननीसुखप्रदं पुरुषम् ।
जननीकुलविपुल-सुख प्रकथनघटनापटीयांसम् ।।

दशमेश यदि दशम में ही स्थित हो तो वह व्यक्ति अपनी माता को सुख देनेवाला, मातृकुल (मामा आदि) से पर्याप्त सुखी तथा वार्तालाप में अत्यन्त चतुर(प्रत्युत्पन्न मति) होता है ॥

मानाजितार्थसहितो माता चदक्षिणी भवेत्सुखिनी ।
दीर्घायुर्मातृसुखी पुरुषोलाभस्थितेऽम्बरपे ॥

दशमेश के लाभ भाव (एकादश) में स्थित होने से मनुष्य सम्मान के साथधन संग्रह करने वाला, र्घजीवी एवं माता से सुखी होता है। माता उसकी रक्षाकरने वाली तथा सुखी होती है ॥

मात्रोज्झितो निजबलः शुभकर्मा नृपतिकर्मरतचेताः ।
व्योमपतो व्ययसंस्थे देशान्तरगता पापखगे ।।

व्यय (वारहवें भाव में दशमेश स्थित हो तो जातक माता से परित्यक्त,स्वावलम्बी, (अपने बल से अपना भरण पोषण करने वाला), शुभ कार्य करनेवाला तथा राजकीय कार्यों में निष्ठापूर्वक संलग्न रहता है। यदि दशमेश पापग्रहहो तो विदेश में निवास होता है ॥

द्वादश भावगत लाभेश फल

अल्पार्यु बलकलितः शूरो दाता जनप्रियः सुभगः ।
लाभपती लग्नगते तृष्णादोषान्मृति लभते ।।

लामेश (एकादश भाव के स्वामी) के लग्न में स्थित रहने से जातक अल्प-आयु वाला, बल से परिपूर्ण, दानी, लोकप्रिय, सुम्दर होता है तथा उसकी मृत्युमोम से होती है ॥

वितगतेलाभपतावुत्पन्नभू/पभोजनोऽल्पायुः ।
अष्टकपाली रोगी क्रूरे सौम्ये च धनकलितः ।।

लाभ भाव का स्वामी यदि धन स्थान में गया हो तो वह व्यक्ति उत्पन्न(स्वयं कृषि द्वारा उत्पन्न) कर खाने वाला, अल्प भोजन करने वाला, अल्पायु होताहै। यदि क्रूर ग्रह हो तो वह रोगी एवं ष्टकपाली भिक्षुक होता है। यदि शुभग्रह हो तो धन से पूर्ण होता है ॥

बन्धुस्त्रीपालनकः सुबान्धवो बन्धुवत्सलः सुभगः ।
लाभेशे सहजगते बन्धूनां रिपुकुलच्छेता ।।

एकदश भाव का स्वामी यदि तृतीय भाव में गया हो तो जातक भाई-बन्धुओंके भी परिवार का पालन-पोषण करने वाला, अच्छे (सदाचारी) भाइयों वाला,बन्धुओं का प्रेमी सुन्दर स्वरूप वाला तथा बन्धुओं के शत्रुओं के कुल का नाशकरने वाला होता है ॥

तुर्यस्थे लाभेशे दीर्घायुः पितरि भक्तिभाग्भवति ।
समयैककर्मनिरतः स्वधर्मनिरतश्च लाभवान् मनुजः ।।

चतुर्थ भाव में यदि लाभेश गया हो तो मनुष्य दीर्घजीवी पिता में श्रद्धा भक्तिरखने वाला, एक समय में एक ही कार्य करने वाला, अपने धर्म में लीन, तथालाभ (सफलता) प्राप्त करने वाला होता है।

लाभपतिः : पुत्रगतः पितृपुत्रस्नेहलं मिथः कुरुते ।

तुल्यगुणं च परस्परमल्पायुर्जायतेपुरुषः ।।

लामेश यदि पञ्चम भाव में गया हो तो पिता और पुत्र में परस्पर स्नेह होताहै तथा दोनों समान गुणी होते हैं। इस योग में जातक अल्पायु होता है ।।

षष्ठगते लाभपती सुदीर्घरोगीसुवैरिकलिता ।
तस्करहस्तान्मृत्युः क्रूरेदेशान्तरगतस्य ।।

षष्ठ भाव में यदि लाभेश गया हो तो जातकदीर्घकाल तक रोगी एवंशत्रुओं से युक्त होता है। यदि लाभेश क्रूर ग्रहहो तोविदेश में चोरों के हाथउसकी मृत्यु होती है ।।

सप्तमगे लाभेशे तेजस्वी शीलसम्पदः पदवान् ।
दीर्घायुर्भवतिनरस्तयं कदयितापतिर्नित्यम् ।।

लाभेश यदि सप्तम भाव में गया हो तो पुरुष तेजस्वी, शील रूपी सम्पत्ति सेयुक्त (अर्थात् अत्यन्त सहृदय), उच्च पदाधिकारी, दीर्घजीवी तथा सदैव एकपत्निव्रती होता है ।।

एकादशंपेऽष्टमोऽल्पायुर्भवति स जातको रोगी ।
जीवन्मृत्युश्च दुःखी मर्यात नरः सोम्यपगनचरे ।।

एकादश भाव का स्वाभी यदि अष्टम भाव मेंगया हो तो वह पुरुष अल्पायु,रोगी तथा जीवन-मृत्यु से संघर्ष करता रहता है।यदि लाभेश शुभग्रह हो तोदुःखी रहता है ।।

एकादशेशे सुकृतालयस्थे बहुश्रुतः शास्त्रविचारदक्षः ।
धर्म प्रसिद्धो गुरुदेवभक्तः क्रूरे च बन्धुव्रतवजिता ।।

एकादश भाव का स्वामी यदि नवम भाव में गया हो तोमनुष्य बहुश्रुत(विविध विद्वानों के विचारों को सुनने एवं मनन करने वाला), शास्त्र चर्चा मेंनिपुण, प्रसिद्ध धार्मिक, गुरु एवं देवता का भक्त होता है । यदि क्रूर ग्रह एकादशेशहो तो बन्धुओं के प्रति स्नेह भाव से रहित होता है ।।

मातरि भक्तः सुकृति पितरि द्वेषी सुदीर्घतरजीवी ।
घनवाञ्जननीपालननिरतो लाभाधिपे खगते ।।

लाभेश यदि दशम भाव में गया हो तो जातक माता का भक्त धार्मिक, पितासे द्वेष रखने वाला, दीर्घजीवी, धनवान् तथा माता के पालन में अनुरक्तरहता है ।।

लाभाधिपो लाभगतः करोति दीर्घायुषं पुष्कलपुत्रपौत्रम् ।
सुकर्मकं रूपवरं सुशीलं जनप्रधानं विपुलं मनोज्ञम् ।।

लाभेश यदि लाभ स्थान में ही गया हो तो दीर्घायु प्रदान करता है। जातकअनेक पुत्र-पौत्रों से युक्त, सत्कर्मी, सुन्दर स्वरूप वाला, सुशील, लोगों में श्रेष्ठ,विशाल शरीर वाला तथा मन को आनन्दित करने वाला (प्रसन्नचित्त) होताहै ।। १३२ ।।

द्वादशगे लामेशे सूत्पन्नभुक् स्थिरो भवति रोगी ।
उत्पातरतो मानी दाता च सुखी सदा पुरुषः ।।

द्वादश (बारहवेंभाव में यदि लाभेश गया हो तो स्वयं द्वारा उत्पादितवस्तुओं को खाने वाला, स्थिर चित्त वाला, रोगी, उत्पात में संलग्न, स्वाभिमानी,यानी तथा सदैव सुखी रहने वाला पुरुष होता है ।।

द्वादश भावगत द्वादशेश फल

व्ययपे सम्न गते विदेशगः सुवचनः सुरूपा ।
अपसङ्गवाददोषी भवति कुमारोऽथ वा षण्डः ।।

व्यय (बारहवें भाव का स्वामी यदि लग्न में गया हो तो जातक विदेश मेंरहने वाला, मृदुभाषी, सुन्दर स्वरूप वाला, कुसङ्गति के कारण कलङ्कित, नवि-बाहित अथवा नपुंसक होता है।।

द्वादशपे वित्तगते कृपणः कटुवाग्विनष्टलाभलयः ।
सौम्ये तु निधनं गच्छति नृपतस्करवह्नितोऽभिभयम् ।।

बारहवें भाव का स्वामी यदि धन स्थान में गया हो तो वह व्यक्ति कृपण,कटु भाषी, नष्ट धन का भी लाभ प्राप्त करने वाला, होता है। यदि व्ययेश शुभ-ग्रह हो तो राजा, चोर एवं अग्नि से हानि तथा मृत्यु होती है ।।

सहजगते द्वादशपे क्रूरे गतबान्धवः शुभे च घनी ।
तनुसोदरः सुकृपणे बन्धुषु दूरे सदा वसति ॥ १३६ ॥

द्वादश भाव का स्वामी यदि तृतीय भाव में गया हो तो व्यक्ति क्रूर एवंभाइयों से रहित होता है। यदि शुभग्रह हो तो अल्प सहोदर (भाइयों वाला),अत्यन्त कृपण, तथा सदैव भाइयों से दूर रहता है।

तुर्यगते व्ययनाथं कृपणो रोगी सुकर्मा च ।
मृतिमाप्नोति सुतेभ्यः सततं मनुजो महादुःखी ॥

व्ययेश यदि चतुर्थ भाव में गया हो तो व्यक्ति कंजूस, रोगी, सुकर्म (अच्छेकार्य) करने वाला, निरन्तर महान् दुःख भोगने वाला होता है। तथा अपने पुत्रोंद्वारा उसकी मृत्यु होती है ॥

द्वादशपती सुतस्थं क्रूरे सुतविर्वाजितः शुभे ससुतः ।
जनककमलाविलासी समर्थताविरहितः पुरुषः ।।

द्वादश (व्यय) भाव का स्वामी यदि पञ्चम भाव में गया हो तथा क्रूर ग्रहहो तो सन्तान से रहित शुभग्रह हो तो सन्तान युक्त करता है। पैतृक धन काउपभोग करने वाला सामर्थ्य से रहित पुरुष होता है ।।

षष्ठगते व्ययनार्थ क्रूरेकृपणोऽक्षिदूषणः पुरुषः ।
लभते मृति नितान्तं भृगुतनये नेत्रहीनः स्यात् ।।

छठें भाव में यदि व्ययेश गया हो तो तथा क्रूर ग्रह हो तो मनुष्य कृपण,नेत्र दोष से युक्त तथा निश्चय ही अकाल मृत्यु पाने वाला होता है। यदि शुक्रद्वादशेश हो तो उसकी आँख अंधी होती है ।।

द्वादशपे सप्तमगे दुष्टो दुखरितभृत्पटुवचनः ।
क्रूरे स्वस्त्रीतः स्यात् सौम्ये क्षयमेति गणिकातः ।।

द्वादशेश यदि सप्तम भाव में हो तो वह व्यक्ति दुष्ट, चरित्रहीन तथा बात-चीत में निपुण होता है। क्रूर ग्रह द्वादशेश हो तो अपनी स्त्री द्वारा यदि शुभग्रहहो तो बेश्या द्वारा निधन होता है ।।

निधनगते व्ययनार्थ ऽष्टकपाली कार्यसाधन रहितः ।
द्रोहमतिः सौम्यवगे धनसंग्रहपरो नरो भवति ।।

व्ययेश क्रूर ग्रह अष्टम भाव में हो तो मनुष्य अष्टकपाली (अवघड़, याकपाल में भिक्षा माँगने वाला), कार्य एवं साधनों सेहीन (बेकार) तथा द्रोह(ईर्ष्यालु) बुद्धिवाला होता है। यदि शुभ ग्रह तो धन समय में संलग्नहोरहता है ।।

सुकृतगते व्ययनाचे तीर्थालोकाटन वृत्तिः ।
कूरे खगे च पापा निरर्थकं याति तद्द्रव्यम् ।।

नवम भाव में व्ययेश हो तो स्थानों में भ्रमण करके जीवन यापन करता(तीर्थ पुरोहित या ट्रैवेल एजेन्ट होता) है ।यदि व्ययेश क्रूर ग्रह हो तो पापीतथा व्यर्थ धन व्यय करने वाला होता है ॥

व्ययपे गगनगृहस्थे पररमणीपराङ्खः पवित्राङ्गः ।
सुतधनसग्रहनिरतो दुर्वचनपरा भवति तन्माता ॥।

व्यय भाव का स्वामी यदि दशम भाव मेंगया हो तो मनुष्य परस्त्री सेविमुख, पवित्र अंगों वाला, पुत्र और धन के प्रतिअधिक आसक्त होता है l उसकीमाता कटुभाषिणी होती है ॥

द्वादशपे लाभस्थे द्रविणपतिर्दीर्घजीवितो भवति ।
स्थान प्रवरो दाता विख्यातः सत्यवचनपरः ॥

द्वादश भाव का स्वामी यदि लाभ (एकादश) भाव में हो तो धनपति(धनवान्) दीर्घजीवी, अपने क्षेत्र का श्रेष्ठ दानी, विख्यात, सत्यवादी तथा वचनका पालन करने वाला व्यक्ति होता है ॥

विभूतिमान् ग्रामनिवासचित्तः कार्पण्यबुद्धिः पशुसंग्रही च ।
चज्जीवति ग्रामयुतः सदा स्याद्व्ययाधिनाथे व्ययगेहलीने ॥

व्ययेश यदि व्यय (१२वें) भाव में ही हो तोजातक ऐश्वर्य सम्पन्न, ग्रामीणजीवन में रुचि रखने वाला, कृपण, पशुओं कासंग्रह करने वाला होता है ।यदि दीर्घकाल तक जीवित रहा तो वह गावों कास्वामी (जमीन्दार) हो जाताहै ॥

बोध प्रश्न

1. भावों की संख्या होती है।

(क) 10 (ख) 12 (ग) 15 (घ) 9

2. कुण्डली की नवम भाव को कहते है।

(क)भाग्य (ख) कर्म (ग) सुत (घ) आय

3. पुत्र भाव किस भाव को कहते हैं।

(क)6 (ख) 8 (ग) 5 (घ) 9

4. केन्द्र भाव कहते हैं।

(क)2,4,8,10 (ख) 4,7,10 11 (ग) 5,8,9,12 (घ)1,4,7,10

4.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि जातक शास्त्र के अन्तर्गत जन्मकुंडली का विश्लेषण करने हेतु "भाव" और "भावेश" की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। कुंडली में कुल 12 भाव होते हैं, और प्रत्येक भाव किसी विशेष जीवन क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है — जैसे पहला भाव शरीर और स्वभाव, दूसरा धन और वाणी, तीसरा पराक्रम और छोटे भाई, चौथा माता और सुख, इत्यादि। प्रत्येक भाव किसी न किसी राशि से संबंधित होता है, और उस राशि का स्वामी ग्रह ही उस भाव का**भावेश**कहलाता है।

भाव और भावेश का संयुक्त विश्लेषण किसी भी भाव के फल विचार में मूल आधार होता है। यदि किसी भाव में कोई ग्रह स्थित न हो, तो उस भाव के फल उसके भावेश की स्थिति और प्रकृति से देखे जाते हैं। यदि भावेश उच्च का, स्वगृही, मित्रगृही या केंद्र/त्रिकोण में स्थित हो

और शुभ ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो, तो वह भाव शुभ फल देता है। वहीं, यदि भावेश नीच का, शत्रु राशि में, अस्त या पाप ग्रहों से पीड़ित हो, तो उस भाव से संबंधित जीवन क्षेत्र में बाधाएं, कष्ट या कमजोरियाँ आती हैं।

उदाहरणस्वरूप, यदि चतुर्थ भाव का स्वामी (भावेश) नीच का होकर षष्ठ भाव में स्थित हो, तो जातक को माता से सुख कम मिल सकता है या घर-संबंधी परेशानी हो सकती है। इसके विपरीत, यदि वही भावेश उच्च का होकर चतुर्थ या नवम भाव में हो, तो सुख-समृद्धि, माता का सहयोग और वाहन-संपत्ति में वृद्धि संभव है।

इस प्रकार, भाव एवं भावेश का गहन और परस्पर रूप से समन्वित अध्ययन जन्मकुंडली के फल निर्णय की बुनियाद होता है। इससे भविष्य संबंधी सटीक और सूक्ष्म अनुमान लगाए जा सकते हैं।

4.5 बोधप्रश्नों के उत्तर

1. (ख)2. (ख) 3. (ग)4. (घ)

4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

जातकालंकार- चौखम्भा प्रकाशन

जातकपरिजात - चौखम्भा प्रकाशन

बृहत्पराशरहोराशस्त्र - चौखम्भा प्रकाशन

मानसागरी - चौखम्भा प्रकाशन

बृहज्जातकम् - चौखम्भा प्रकाशन

4.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. द्वादश भावों से विचारणीय विषय एवं कारक ग्रह का सविस्तार से वर्णन कीजिए।
2. भावफलों की वृद्धि और हानि के कारण को वर्णन कीजिए।
3. लग्न, द्वितीय, तृतीय, भावस्थ भावेशों का वर्णन कीजिए।

खण्ड- दो (Section-B)
ज्योतिषशास्त्र : मुहूर्त विचार

इकाई-1 पंचांग परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 पञ्चांग का परिचय

1.4 पञ्चांग के अंगों का परिचय

1.5 सारांश

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई पञ्चांग परिचय शीर्षक नाम से है, इस इकाई के माध्यम से हम यह जानने का प्रयास करेंगे की पञ्चांग क्या है ? यह किन–किन अवयवों से मिलकर बनता है। तथा इसका क्या महत्व है । और यह किस तरह से सबके लिये उपयोगी होता है। वैदिक काल में ऋषियों ने समय का ध्यान रखने के लिये सूर्य, चन्द्रमा और खगोलीय पिंडो की गतिविधियों की गणना करके एक समय निर्धारण पद्यति का निर्माण किया जो पञ्चांग के रूप में आदि काल से हमारे सामने प्रस्तुत है। भारतीय ज्योतिष के रहस्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए गणित ज्योतिष का ज्ञान अनिवार्य है, पर साधारण जनता के लिए अति आवश्यक नहीं। हर एक व्यक्ति के लिए यह जरूरी नहीं कि वह ज्योतिषी हो, किन्तु मानव मात्र को अपने जीवन को व्यवस्थित करने के नियमों को जानना भीअनिवार्य है। पञ्चांग ज्योतिष की सरलतम इकाई में से एक है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप–

- पञ्चांग के बारे में विस्तृत से जान सकेंगे
- तिथि के बारे में विस्तार से बता सकेंगे
- वारों के बारे में विस्तार से जान पाएंगे
- नक्षत्रों के बारे में विस्तारपूर्वक जान पाएंगे
- योगों की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर पाएंगे
- करण को समझ सकेंगे

1.3 पञ्चांग का परिचय

भारतीय काल गणना की बात करी जाय तो बिना पञ्चांग के सम्भव हो ही नहीं सकता, बिना पञ्चांग के किसी भी कार्य के सही समय का आकलन नही किया जा सकता है। इसलिए पञ्चांग से जो हम गणना करते है, उनमे किन –किन चीजों की आवश्कता होती है ,उसे समझाने का या समझने का सरलतम माध्यम क्या है।इसे समझने का प्रयास करते है। पंचांग का शाब्दिक अर्थ है – पांच अंगों से जिसका निर्माण हुआ हो वह पञ्चांग कहलाता है। वह पांच अंग कौन-कौन से है, तिथि ,वार ,नक्षत्र ,योग,और करण इन पांचों के समूह को पञ्चांग की संज्ञा दि गयी है। पंचांग के द्वारा ही मानव जीवन के सभी प्रकार के मांगिलक कार्य हेतु शुभा-शुभ शुद्ध समय का जो निर्धारण किया जाता है वह बिना पञ्चांग के हो ही नहीं सकता,जहाँ ये पांच अंग हमें शुभाशुभ का ज्ञान कराते हैं,वहीं हमें गगन की गतिविधियों को दर्शाने में भी सहायक होते हैं। इन अंगों के निरूपण के साथ-साथ ग्रहों की गति उनके चार,स्थिति और उदय अस्त का भी ज्ञान हमें पञ्चांग के माद्यम से बहुत सरल तरीके से प्राप्त हो जाता है। पञ्चांग भारतीय काल गणना का मुख्य स्रोत है।

1.4 पञ्चांग के अंगों का परिचय

1. तिथि—

पञ्चांग का प्रथम अंग तिथि है,वैदिक लोग वेदांग ज्योतिषके आधार पर तिथिको अखण्ड मानते है। क्षीण चन्द्रकला जब बढने लगता है तब अहोरात्रात्मक तिथि मानते है। जिस

दिन चन्द्रकला क्षीण होता उस दिन अमावास्या माना जाता है। उसके दूसरे दिन शुक्लप्रतिपदा होती है। एक सूर्योदय से अपर सूर्योदय तक का समय अहोरात्र कहा गया है उसी को एक तिथि माना जाता है।चन्द्रमा की एक कला को तिथि माना गया है। इसका चन्द्र और सूर्य के अन्तश पर से मान निकाला जाता है। प्रतिदिन १२ अंशों का अन्तर सूर्य और चन्द्रमा में होता है, यही अन्तराश का मध्यम मान है। अमावस्या के बाद प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक की तिथियों शुक्लपक्ष की और पूर्णिमा के बाद प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक की तिथियाँ कृष्णपक्ष की होती हैं ज्योतिषशास्त्र में तिथियों की गणना शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ होती है।तिथि को हम इस प्रकार से समझ सकते है कि चन्द्र रेखा को सूर्य रेखा से १२ अंश ऊपर जाने में लगने वाले समय को तिथि कहते है। इसलिये प्रत्येक अमावस्या और पूर्णिमा के बीच कुल चौदह तिथियां होती है। शून्य को अमावस्या और पंद्रहवी तिथि को पूर्णिमा कहा जाता है।

तिथियों के स्वामी—

तिथिशा वह्निका गौरी गणेशोऽ हिर्गुहो रविः ।
शिवो दुर्गान्तको विश्वे हरिः कामः शिवः शशी ।।

तिथि	स्वामी	तिथि	स्वामी
प्रतिपदा	अग्नि	नवमी	दुर्गा
द्वितीया	ब्रह्मा	दशमी	यम
तृतीया	गौरी	एकादशी	विश्वेदेव
चतुर्थी	गणेश	द्वादशी	विष्णु
पंचमी	सर्प	त्रियोदशी	कामदेव
षष्ठी	स्कन्द	चतुर्दशी	शिव
सप्तमी	सूर्य	पूर्णिमा (शुक्ल पक्ष)चन्द्रमा	
अष्टमी	शिव	अमावस्या (कृष्ण पक्ष) पितर	

इसी प्रकार से अमावस्या के तीन भेद हैं- सिनीवाली, दर्श और कुहू । प्रातः काल से लेकर रात्रि तक रहनेवाली अमावस्या को सिनीवाली, चतुर्दशी से विद्ध को दर्श एवं प्रतिपदा से युक्त अमावस्या को कुहु कहते हैं

नन्दादितिथिसंज्ञाचक्र—

नन्दा च भद्रा च जया च रिक्ता पूर्णेति तिथ्योऽशुभ मध्यशस्ताः ।
सितेऽसिते शस्तसमाधमाः स्युः सितज्ञभौमार्किगुरौ च सिद्धाः ।।

नन्दा	प्रतिपदा षष्ठी, एकादशी ,
भद्रा	द्वितीया सप्तमी, द्वादशी ,
जया	तृतीया अष्टमी, त्रियोदशी ,
रिक्ता	चतुर्थी नवमी, चतुर्दशी ,
पूर्णा	पञ्चमी दशमी, पूर्णिमा , अमावस्या ,

सिद्धादि तिथियाँ—

वार	तिथि
मंगलवार	तृतीया अष्टमी, त्रियोदशी ,
बुधवार	द्वितीया सप्तमी, द्वादशी,

गुरुवार	पञ्चमी दशमी, पूर्णिमा ,
शुक्रवार	प्रतिपदा षष्ठी, एकादशी,
शनिवार	चतुर्थी नवमी, चतुर्दशी ,

ये तिथियाँ सिद्धि को देने वाली होती है। इन तिथियों में किया गया कार्य सिद्धिदायक होता है।

दग्ध, विष, हुताशन तिथियों का परिचय—

वार	दग्ध तिथियाँ	वार	विषतिथियाँ	वार	हुताशन तिथियाँ
रविवार	द्वादशी	रविवार	चतुर्थी	रविवार	द्वादशी
सोमवार	एकादशी	सोमवार	षष्ठी	सोमवार	षष्ठी
मंगलवार	पञ्चमी	मंगलवार	सप्तमी	मंगलवार	सप्तमी
बुधवार	तृतीया	बुधवार	द्वितीया	बुधवार	अष्टमी
गुरुवार	षष्ठी	गुरुवार	अष्टमी	गुरुवार	नवमी
शुक्रवार	अष्टमी	शुक्रवार	नवमी	शुक्रवार	दशमी
शनिवार	नवमी	शनिवार	सप्तमी	शनिवार	एकादशी

इनके नाम के अनुसार ही ये तिथियाँ बाधा कारक मानी गयी है। इन तिथियों में शुभ कार्य करने से विघ्न –बाधाओं का सामना करना पड़ता है, इसलिये ये तिथियाँ शुभ कार्य में वर्जित हैं।

2. वार विचार—

यह पञ्चांग का दूसरा अंग वार है,पञ्चांग में तिथि के पास वार दिया रहता है। भारतीय ज्योतिष परम्परा में वार को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भारतीय वैदिक परम्परा में सूर्योदय से लेकर अगले दिन के सूर्योदय तक का समय एक दिन कहलाता है ।जिस दिन की प्रथम होरा का जो ग्रह स्वामी होता है, उस दिन उसी ग्रह के नाम का वार रहता है। अभिप्राय यह है कि ग्रहों कि कक्षा क्रम के आधार पर ज्योतिषशास्त्र में शनि, बृहस्पति, मंगल, रवि, शुरू बुध और चन्द्रमा-ये ग्रह एक-दूसरे से नीचे-नीचे माने गये हैं। अर्थात् सबसे ऊपर शनि, उससे नीचे बृहस्पति उससे नीचे मंगल, मंगल के नीचे रवि इत्यादि क्रम से ग्रहों की कक्षा हैं। एक दिन में २४ होराएँ होती हैं एक-एक घण्टे की एक-एक होरा होती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि घण्टे का दूसरा नाम होरा है। वारों के गणना क्रम को समझने के लिये चक्र से सुगमता से समझा जा सकता है ।

आदित्यश्चंद्रमा भौमो बुधाश्चाथ बृहस्पतिः।
शुक्रः शनैश्चरश्चैते वासराः परिकीर्तिताः ।।

रवि,सोम,मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि ये सात वार हैं ।

वार होरा चक्र

होरा	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
१	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
२	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु
३	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल
४	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य
५	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र
६	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध

७	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र
८	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
९	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु
१०	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल
११	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य
१२	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र
१३	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध
१४	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र
१५	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
१६	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु
१७	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल
१८	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य
१९	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र
२०	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध
२१	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र
२२	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
२३	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु
२४	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल

शुभाशुभवार—

गुरुश्चन्द्रो बुधः शुक्रः शुभा वाराः शुभे स्मृताः। क्रूरास्तु क्रूरकृत्येषु ग्राह्या भौमार्कसूर्यजाः॥ २॥

बुध, गुरु, शुक्र, और (शुक्ल पक्ष में) चन्द्र ये शुभ दिन हैं। इनमें शुभ कार्य सिद्ध होता है। रवि, मंगल, शनि ये क्रूर एवं पाप हैं। इन दिनों में क्रूर कर्म सिद्ध होता है॥ २॥

आवश्यक वारदोषपरिहार—

न वारदोषाः प्रभवन्ति रात्रौ देवेज्यदैत्येज्यदिवाकराणाम्।

दिवा शशांकार्कजभूतानां सर्वत्र निन्द्यो बुधवारदोषः॥ ३॥

आवश्यक कार्य में सूर्य, गुरु, शुक्र के दिन का दोष रात्रि में नहीं होता है अर्थात् इनमें दिन में जो कार्य निषिद्ध हैं उसे रात्रि में किया जा सकता है। इसी प्रकार सोम, शनि, मंगल को रात्रि का निषिद्ध कार्य दिन किया जा सकता है, इनमें रात्रि का दोष दिन में नहीं होता है। बुधवार का दोष रात्रि और दिन समान रूप से निन्द्य है॥ ३॥

3. नक्षत्र परिचय—

यह पञ्चांग का तीसरा महत्वपूर्ण अंग नक्षत्र है। वैदिक ज्योतिष में नक्षत्रों का अत्यधिक महत्व है। जन्म नक्षत्र ऐसा नक्षत्र है जो किसी व्यक्ति के जन्म के दौरान अस्तित्व में आता है। जन्म नक्षत्र किसी व्यक्ति की विशेषताओं, लक्षणों, विचार स्वरूप में एक अंतर्दृष्टि प्रदान करता है और दशा अवधि की गणना में मदद करता है। कई ताराओं के समुदाय का नक्षत्र कहते हैं। आकाश-मण्डल में जो चारिकाओं से कहीं अश्व, शकट, सर्प, हाथ आदि के आकार बन जाते हैं।जिस प्रकार लोक व्यवहार में एक स्थान से दूसरे स्थान की दूरी मीलों या कोसों में

नापी जाती है, उसी प्रकार आकाश मण्डल की दूरी नक्षत्रों से ज्ञात की जाती है। समस्त आकाश-मण्ड को ज्योतिषशास्त्र ने २७ भागों में विभक्त कर प्रत्येक भाग का नाम एक-एक नक्षत्र है।

अश्विनी भरणी चैव कृतिका रोगी मृगः। आर्द्रा पुनर्वसू पुष्यस्तथाश्लेषा मघा ततः।।
पूर्वाफाल्गुनिका चैव उत्तराफाल्गुनी ततः । हस्तचित्रा तथा स्वाती विशाखा तदनन्तरम् ॥
अनुराधा ततो ज्येष्ठा ततो मूलं निगद्यते । पूर्वाषादीत्तराषाढा त्वभिच्छ्रिवणा ततः ॥
धनिष्ठा शतताराख्यं पर्वाभाद्रपदा ततः । उत्तराभाद्रपदा चैव रेवत्येतानि भानि च ॥

अश्विनी	मघा	मूल
भरणी	पूर्वाफाल्गुनी	पूर्वाषाढा
कृतिका	उत्तराफाल्गुनी	उत्तराषाढा
रोहिणी	हस्त	श्रवण
मृगशिरा	चित्रा	धनिष्ठा
आर्द्रा	स्वाती	शतभिषा
पुनर्वसु	विशाखा	पूर्वाभाद्रपदा
पुष्य	अनुराधा	उत्तराभाद्रपदा
आश्लेषा	ज्येष्ठा	रेवती

अभिजित् को २८ वां नक्षत्र माना गया है। उत्तराषाढा की अंतिम की १५ घटी व श्रवण की प्रथम ४ घटी कुल मिलाकर १९ घटी का मान अभिजित् का माना गया है। यह समस्त शुभ कार्यों में अच्छा माना जाता है।

नक्षत्र मुखादि संज्ञा चक्र

मुखादि संज्ञा	नक्षत्र
ऊर्ध्वमुख	रो ,आ, पुष्य, उफा, उषा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, उभा ,
अधोमुख	भरणी,कृतिका, अश्लेषा, मघा, पूफा, विशाखा, पूषा, पूर्वाभा ,
पार्श्वमुख	अश्विनी ,मृग, पुन, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनु, ज्येष्ठा, रेवती ,

१. ऊर्ध्वमुख नक्षत्रों में देवालय व गृह निर्माण कार्य, ध्वजारोहण, मंडप-बाग-बगीचा निर्माण कार्य,विवाहादि मांगलिक कार्य, राज्याभिषेक, जैसे कार्यों को करना अभीष्ट फलदायक होता है।

२. अधोमुख नक्षत्रों में कुआं-बावडी-तलब-हौज तथा खान का खनन कार्य आरम्भ करना, गड़े हुये द्रव्य का निकलना, गणित व ज्योतिष विद्या का अध्ययन, शिल्प-कला-लेखन आदि को प्रारम्भ करना,तृणआदि का संचय करना विशेष उत्तम माना गया है।

३. पार्श्वमुख नक्षत्रों में चोपाये वस्तुओं को खरीदना और उनका प्रशिक्षण करवाना, हल चलाना, पत्र व्यवहार करना तथा जल-थल-नभ की यात्राओं को करने में लाभकारी रहते है।

नक्षत्र स्वामी बोधक चक्र

नक्षत्र	देवता	नक्षत्र	देवता	नक्षत्र	देवता
अश्विनी	अ.कु.	मघा	पितर	मूल	राक्षस
भरणी	यम	पूर्वाफाल्गुनी	भग	पूर्वाषाढा	जल
कृतिका	अग्नि	उत्तराफाल्गुनी	अर्यमा	उत्तराषाढा	विश्वे
रोहिणी	ब्रह्मा	हस्त	रवि	श्रवण	विष्णु
मृगशिरा	चन्द्रमा	चित्रा	विश्वेदेव	धनिष्ठा	वसु

आर्द्रा	शिव	स्वाती	वायु	शतभिषा	वरुण
पुनर्वसु	अदिति	विशाखा	इन्द्राग्नी	पूर्वाभाद्रपदा	अजपाद
पुष्य	बृह.	अनुराधा	मित्र	उत्तराभाद्रपदा	अहिर्बुध्न्य
आश्लेषा	सर्प	ज्येष्ठा	इन्द्र	रेवती	पूषा

अन्धाक्ष नक्षत्र संज्ञा चक्र

संज्ञा	**नक्षत्र**
अन्धाक्ष	रोहिणी, पुष्य, उफा, विशाखा, पूषा, धनि, रेवती
मध्याक्ष	भरणी, आर्द्रा, मघा, चित्रा, ज्येष्ठा, अभि, पूर्वाभाद्रपदा
मंदाक्ष	अश्विनी, मृगशिरा, आश्लेषा, हस्त, अनुराधा, उत्तराषाढा, शतभिषा
सुलोचन	कृतिका, पुनर्वसु, पूर्वाफाल्गुनी, स्वाती, मूल, श्रवण, उत्तराभाद्रपदा

यह नक्षत्र चक्र विशेषकर खोई हुई वस्तुओं के बारे में व लाभालाभ के बारे में ज्ञान कराने में विशेष सहयोगकर होता हैं।

अन्धाक्ष नक्षत्रों में खोई हुई वस्तु पूर्वदिशा की और जाती है, और उसकी पुनः प्राप्ति शीघ्र हो जाती है।

मध्याक्ष नक्षत्रों में चोरी हुई वस्तु पश्चिम दिशा की और दूर चली जाती है, वस्तु का पता भी चल जाता है, पर हाथ में नही मिल पाती।

मंदाक्ष नक्षत्रों में कोई वस्तु चोरी हो गयी हो तो वह दक्षिण दिशा की और जाती है, तथा खोजने पर वह प्राप्त हो जाती है।

सुलोचन नक्षत्रों में कोई वस्तु चोरी हो गयी हो तो वह उत्तर दिशा की और गयी हुई होती है है, परन्तु न तो उसका पता ही चलता है न तो वह मिल पाती है।

पंचक संज्ञक नक्षत्र—

धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती-इन पांच नक्षत्रों का समूह ज्योतिष संसार में पंचक नाम से प्रसिद्ध है। इस नक्षत्र पंचक का भाभोग कुम्भ और मीन राशि गत चन्द्रमा के भोग्य काल के बराबर भी माना जाता है, यह पंचक नक्षत्र कई कार्यों में त्याज्य माना जाता है। पंचक के प्रति ऐसा भी कथन है किइसमें किये गये सभी कार्यों कि पांच बार पुनरावृति होती है। अर्थात् इन नक्षत्रों में किसी के पुत्रोत्पत्ति हो तो और पांच पुत्र होते है,और यदि किसी के घर में मृत्यु हो जाती है तो पांच मृत्यु होने कि पूर्ण सम्भावना रहती है। इसलिये मृत्यु के समय पंचक दोष हो तो उसकी शान्ति करवानी अति आवश्यक है।

गंडमूल संज्ञक नक्षत्र—

अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों में से ६ नक्षत्र ज्येष्ठा, आश्लेषा, रेवती, मूल, मघा और अश्विनी ये नक्षत्र गंडमूल संज्ञक हैं। इन नक्षत्रों में उत्पन्न जातक-जातिका स्वयं व कुटुम्बी जनों के लिये कष्टकारी माने गये है।

जातो न जीवति नरो मातुरपथ्यो भवेत्स्वकुलहन्ता।
यदि जीवति गण्डान्ते बहुगज तुरगो भवेदभूतः ।।

गण्डमूल नक्षत्र व फल

नक्षत्र	अश्विनी	आश्लेषा	मघा	ज्येष्ठा	मूल	रेवती
प्रथम	पिता को	शान्ति से	माता को	बड़े भाई	पिता को	राज्य

चरण	भय	शुभ	कष्ट	को कष्ट	कष्ट	सम्मान
द्वितीय चरण	सुख-सम्पत्ति	धनहानि	पिता को भय	छोटे भाई को कष्ट	माता को कष्ट	मंत्रित्व पद प्राप्ति
तृतीय चरण	मंत्रित्व पद प्राप्ति	माता को कष्ट	सुख	माता को कष्ट	धनहानि	धनसुख - प्राप्त
चतुर्थ चरण	राज्य सम्मान	पिता को कष्ट	धनविद्या - प्राप्ति	सुख में कमी	शान्ति से शुभ	अनेक कष्ट

4. योग विचार —

पञ्चांग का यह चौथा अंग योग है। चन्द्र सूर्य कि गति में जब १३ अंश २० कला अन्तर आ जाता है तब एक योग बनता है। अर्थात् जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों अश्विनी नक्षत्र से ८०० कलाएं चल लेते है,तब एक योग होता है। योग का अर्थ है जोड़ अर्थात् सूर्य व चन्द्रमा कि यात्रा का जोड़। योग नक्षत्रों कि तरह कोई तारा पिंड नहीं है अपितु वह सूर्य-चन्द्र के अन्तर कि माप है। सूर्य और चन्द्रमा के स्पष्ट स्थानों को जोड़कर तथा कलाएँ बनाकर ८०० का भाग देने पर गत योगों की संख्या निकल आती है। शेष से यह अवगत किया जाता है कि वर्तमान योग की कितनी कलाएँ बीत गयी हैं। शेष को ८०० में से घटाने पर वर्तमान योग की गम्य कलाएँ आती हैं। इन गत या गम्य कलाओं को ६० से गुणा कर सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट दैनिक गति के योग से भाग देने पर वर्तमान योग की गत और गम्य घटिकाएँ आती हैं। अभिप्राय यह है कि जब अश्विनी नक्षत्र के आरम्भ से सूर्य और चन्द्रमा दोनों मिलकर ८०० कलाएँ आगे चल चुकते हैं तब एक योग बीतता है, जब १६०० कलाएँ आगे चलते हैं तब दो, इसी प्रकार जब दोनों १२ राशियाँ-२१६०० कलाएँ अश्विनी से आगे चल चुकते हैं तब २७ योग बीतते हैं।

योगों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। नैसर्गिक व तात्कालिक। नैसर्गिक योगों का सदैव एक ही क्रम रहता हैऔर एक के बाद एक आते रहते है। विष्कुम्भादि योग नैसर्गिक श्रेणी में आते है। परन्तु तात्कालिक योग तिथि-वार-नक्षत्रादि के विशेष संगम से बनते है।

विष्कुम्भः प्रीतिरायुष्मान् सौभाग्यः शोभनस्तथा।
अतिगण्डः सुकर्मा च धृतिः शूलस्तथैव च॥
गण्डो वृद्धिर्ध्रुवश्चैव व्याघातो हर्षणस्तथा।
कज्रः सिद्धिर्व्यतीपातो वरीयान् परिघः शिवः॥
साध्यः सिद्धः शुभः शुक्लो ब्रह्मेन्द्रौ वैधृतिस्तथा॥

योग	स्वामी	फल
१. विष्कुम्भ	यम	अशुभ
२. प्रीति	विष्णु	शुभ
३. आयुष्मान	चन्द्र	शुभ
४. सौभाग्य	ब्रह्मा	शुभ
५. शोभन	बृहस्पति	शुभ
६. अतिगण्ड	चन्द्र	अशुभ
७. सुकर्मा	इन्द्र	शुभ
८. धृति	जल	शुभ

९. शूल	सर्प	अशुभ
१०. गण्ड	अग्नि	अशुभ
११. वृद्धि	सूर्य	शुभ
१२. ध्रुव	भूमि	शुभ
१३. व्याघात	वायु	अशुभ
१४. हर्षण	भग	शुभ
१५ .वज्र	वरुण	अशुभ
१६. सिद्धि	गणेश	शुभ
१७. व्यतिपात	रूद्र	अशुभ
१८. वरीयान्	कुबेर	शुभ
१९. परिध	विश्वकर्मा	अशुभ
२०. शिव	मित्र	शुभ
२१. सिद्ध	कार्तिकेय	शुभ
२२ .साध्य	सावित्री	शुभ
२३. शुभ	लक्ष्मी	शुभ
२४. शुक्ल	पार्वती	शुभ
२५. ब्रह्म	अश्विनीकुमार	शुभ
२६. ऐन्द्र	पितर	अशुभ
२७. वैधृति	दिति	अशुभ

योगों का त्याज्यकाल—

परिवस्य त्यजेदर्द्ध शुभकर्म ततः परम् । त्यजादी पक्ष विष्कम्भे सप्त शूले च नाडिकाः ॥
गण्डव्याघातयोः षट्कं नव हर्षणवज्रयोः । वैधृतिं च व्यतीपातं समस्तं परिवर्जयेत् ॥
विष्कम्भे घटिकास्तिस्रः शूले पञ्च तथैव च। गण्डातिगण्डयोः सप्त नव व्याघातवज्रयोः ॥

परिघयोग का आधा भाग त्याज्य है, उत्तरार्ध शुभ है, विष्कुम्भयोग की प्रथम पाँच घटिकाएँ, शूलयोग की प्रथम सात घटिकाएँ, गण्ड और व्याघात योग की प्रथम छह घटिकाएँ; हर्षण और वज्र योग की नौ घटिकाएँ एवं वैधृति और व्यतीपात योग समस्त परित्याज्य हैं। मतान्तर से विष्कुम्भ के तीन दण्ड, शूल के पाँच डण्ड, गण्ड और-अतिगण्ड के सात दण्ड एवं व्याघात और बज्र योग के नौ दण्ड शुभ कार्य करने में त्याज्य हैं। कृत्यचिन्तामणि के अनुसार शुभ कार्यों में साध्य योग का एक दण्ड, व्याघात योग के दोदण्ड, शूलयोग के सात दण्ड, घज्रयोग के छह दण्ड एवं गण्ड और अतिगण्ड के नौ दण्ड त्याज्य हैं।

आन्नदादि योग—

वार और नक्षत्र के समायोजन से तात्कालिक आन्नदादि २८ योगों का प्रादुर्भाव होता है। इन योगों को ज्ञात करने के हेतु वार विशेष के जो नक्षत्र है उनसे जिस दिन का योग जानना हो उस तक गणना कि जाती है जैसे – रविवार कि अश्विनी से , सोमवार को मृगशिरा से, मंगलवार को आश्लेषा से, बुध को हस्त से, गुरुवार को अनुराधा से, शुक्रवार को उत्तराषाढ़ा से, शनिवार को शतभिषा से तद्दिन के चन्द्रर्क्ष तक गिनने पर प्राप्त संख्या को ही उस दिन का वर्तमान आन्नदादि योग होता है।

योग	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	फल
आन्नद	आश्वि	मृग	आश्ले	हस्त	अनु	उषा	शत	अर्थसिद्धि
कालदंड	भर	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष	अभि	पुभा	मृत्युभय
धूम्र	कृति	पुन	पूफा	स्वाती	मूल	श्रवण	उभा	दुःख
प्रजापति	रो	पुष्य	उफा	विशा	पूषा	धनि	रेव	सौभाग्य
सौम्य	मृग	आश्ले	हस्त	अनु	उषा	शत	आश्वि	बहुसुख
ध्वान्क्ष	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष	अभि	पुभा	भर	अर्थनाश
केतु	पुन	पूफा	स्वाती	मूल	श्रवण	उभा	कृति	सौभाग्य
श्रीवत्स	पुष्य	उफा	विशा	पूषा	धनि	रेव	रो	ऐश्वर्य
वज्र	आश्ले	हस्त	अनु	उषा	शत	आश्वि	मृग	धनक्षय
मुद्गर	मघा	चित्रा	ज्येष	अभि	पुभा	भर	आर्द्रा	धननाश
छत्र	पूफा	स्वाती	मूल	श्रवण	उभा	कृति	पुन	राजसम्मान
मित्र	उफा	विशा	पूषा	धनि	रेव	रो	पुष्य	सौख्य
मानस	हस्त	अनु	उषा	शत	आश्वि	मृग	आश्ले	सौभाग्य
पद्म	चित्रा	ज्येष	अभि	पुभा	भर	आर्द्रा	मघा	धनागम
लुम्ब	स्वाती	मूल	श्रवण	उभा	कृति	पुन	पूफा	लक्ष्मीनाश
उत्पात	विशा	पूषा	धनि	रेव	रो	पुष्य	उफा	प्राणनाश
मृत्यु	अनु	उषा	शत	आश्वि	मृग	आश्ले	हस्त	मरणभय
काण	ज्येष	अभि	पुभा	भर	आर्द्रा	मघा	चित्रा	क्लेशवृद्धि
सिद्धि	मूल	श्रवण	उभा	कृति	पुन	पूफा	स्वाती	अभीष्टसिद्धि
शुभ	पूषा	धनि	रेव	रो	पुष्य	उफा	विशा	कल्याण
अमृत	उषा	शत	आश्वि	मृग	आश्ले	हस्त	अनु	राजसम्मान
मुसल	अभि	पुभा	भर	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष	अर्थक्षय
गद	श्रवण	उभा	कृति	पुन	पूफा	स्वाती	मूल	रोग
मातंग	धनि	रेव	रो	पुष्य	उफा	विशा	पूषा	कुलवृद्धि
राक्षश	शत	आश्वि	मृग	आश्ले	हस्त	अनु	उषा	बहुपीडा
चर	पुभा	भर	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष	अभि	कार्यलाभ
सुस्थिर	उभा	कृति	पुन	पूफा	स्वाती	मूल	श्रवण	गृहप्राप्ति
वर्धमान	रेव	रो	पुष्य	उफा	विशा	पूषा	धनि	सुमंगल

5. करण परिचय—

तिथि के आधे भाग को करण कहते हैं अर्थात् एक तिथि में दो करण होते हैं। कुल इग्यारह करण होते है, इनमे से ७ चर और ४ स्थिर करण होते है।

बवबालवकौलवतैतिलगरवाणिजविष्टयः सप्त ।

शकुनिचतुष्पदनागकिस्तुघ्नानि ध्रुवाणि करणानि ।।

बव, बालव,कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि, ये सात चर करण हैं, तथा शकुनि, चतुष्पद, नाग, किस्तुघ्न ये स्थिर करण हैं।

पतयः स्युरिन्द्रकमलजमित्रार्यमभूश्रियः सयमाः ।

चर करणों के स्वामी क्रमशः इन्द्र, ब्रह्मा, मित्र, अर्यमा, पृथ्वी, लक्ष्मी, और यम, हैं।

कलिवृषफणिमारुताः पतयः ।

स्थिर करणों के स्वामी क्रमशः कलि, वृष, फणी, मारुत हैं ।।

तिथियों में करणों को जानने का प्रकार

कृष्णपक्षे तिथिर्द्विघ्नी मुनिभिर्भागमाहरेत ।

शेषाङ्केन बवाद्यं च तिथ्यादी करणं विदुः ।।

कृष्ण पक्ष की तिथि संख्या को २ से गुणा कर, ७ से भाग देने से १ आदि शेष बचने से तिथि के पूर्वार्ध में बवादि चर करण समझना तथा अभिम करण उत्तरार्ध में समझना चाहिये ।। १।।

तिथिर्द्विघ्नी द्विकोना च शुक्लपक्षे सदा बुधैः ।

शेषाङ्के सप्तभिभांगस्तिथ्यादी करणं मतम् ।।

शुक्ल पक्ष की तिथि संख्या को २ से गुणा कर, उसमें २ घटा कर ७ का भाग देने से शेषाङ्क से तिथि के पूर्वार्ध में बवादि करण समझना और उसका अग्रिम तिथि के उत्तरार्ध में समझना चाहिये ।।२।।

शुक्ल पक्ष के करण **कृष्ण पक्ष के करण**

तिथि	पूर्वार्ध	उत्तरार्ध	तिथि	पूर्वार्ध	उत्तरार्ध
१.	किस्तुघ्न	बव	१	बालव	कौलव
२ .	बालव	कौलव	२	तैतिल	गर
३ .	तैतिल	गर	३	वणिज	विष्टि
४ .	वणिज	विष्टि	४	बव	बालव
५ .	बव	बालव	५	कौलव	तैतिल
६ .	कौलव	तैतिल	६	गर	वणिज
७ .	गर	वणिज	७	विष्टि	बव
८ .	विष्टि	बव	८	बालव	कौलव
९ .	बालव	कौलव	९	तैतिल	गर
१०	तैतिल	गर	१०	वणिज	विष्टि
११ .	वणिज	विष्टि	११	बव	बालव
१२ .	बव	बालव	१२	कौलव	तैतिल
१३ .	कौलव	तैतिल	१३	गर	वणिज
१४ .	गर	वणिज	१४	विष्टि	शकुनि
१५ .	विष्टि	बव	३०	चतुष्पद	नाग

करणों में शुभाशुभ कार्य—

बव करण में पौष्टिक कार्य, बालव करण में ब्राह्मणों के षट्कर्म, कौलव करण में स्त्रीकर्म, मैत्री कार्य, तैतिल करण में सौभाग्यवती स्त्री के कार्य, गर करण में बीजारोपण, हल चलाना, वणिज करण में व्यापार कार्य, विष्टि कर्ण में अग्नि से सम्बंधित कार्य, विष देना, युद्धारम्भ, दण्ड देना आदि कार्य, शकुनी करण में ओषधि निर्माण कार्य, मन्त्र साधना, पौष्टिककर्म का कार्य, चतुष्पद करण में राज्य कार्य, नाग करण में गौ-ब्राह्मणादि कार्य,किस्तुघ्न करण में मांगलिक कार्यों को करना शास्त्र सम्मत माना गया है।

बोध प्रश्न—

पञ्चांग का चौथा अंग कौन सा है ?

योगों कि संख्या है ?

नन्दा तिथि कौन-कौन सी है ?

चतुर्थी तिथि का स्वामी होता है ?

चर करण कितने है ?

1.5 सारांश

इस इकाई के माध्यम से आप यह जान पाए होंगे कि पञ्चांग क्या है । किन-किन अवयवों से मिलकर पञ्चांग का निर्माण होता है,पञ्चांग कि दैनिक जीवन में क्या आवश्यकता होती है, तिथियों कि जानकारी से क्या-क्या कार्य हम सही समय पर कर सकते है,वारों का हमारे जीवन में क्या महत्त्व है,नक्षत्रों से किन किन बातों का विचार करना आवश्यक है । और किस नक्षत्र में किस कार्य को करने से शुभाशुभ कि प्राप्ति होती है । योगो के विषय में सही जानकारी आपको प्राप्त करने में सहायता होगी ।

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

१. योग

२. २७

३. प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी

४. गणेश

५. सात

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. मुहूर्तचिंतामणी

२. फलदीपिका

३. मानसागरी

४. सारावली

५. मुहूर्तकल्पद्रुम

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

१. पञ्चांग परिचय से आप क्या समझते है ग्रन्थानुसार वर्णन कीजिये

२. नक्षत्र प्रकरण का विस्तारपूर्वक वर्णन करें

इकाई. 2 मुहूर्त की परिभाषा एवं आवश्यकता

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 मुहूर्त का महत्त्व

2.3.1 मुहूर्त और संस्कार का मानव जीवन में प्रभाव

2.3.2 षोडश संस्कारों में मुहूर्त की भूमिका

2.4 गृह निर्माण मुहूर्त विचार

2.5 नवीन गृह प्रवेश मुहूर्त विचार

2.6 सारांश

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम मुहूर्त का महत्त्व एवं षोडश संस्कारों में मुहूर्त की भूमिका के विषय में जानकारी प्राप्त करने वाले हैं। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि संस्कार पर्यंत संस्कारों को मुहुर्त के नियमानुसार किया जाता है। भारतीय संस्कृति में 16 सोलह संस्कारों का विशिष्ट स्थान है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत इन संस्कारों की आवश्यकता होती है। जब हिरण्यगर्भ प्रभु ने इस जगत की रचना की उस समय संस्कारों को करने का आदेश दिया। प्रत्येक संस्कार में कोन-कोन सा कर्म करना चाहिए तथा संस्कारों का क्या विधान है।

जन्मोत्तर संस्कारों में प्रथम संस्कार गर्भाधान संस्कार होता है। यह संस्कार जातक के उत्पन्न होने के बाद विधि विधान से संपन किया जाता है । उसके बाद के संस्कारों में से नामकरण, अन्नप्राशनादि आदि संस्कार क्रमशः होते हैं। इस इकाई में आप सभी षोडश संस्कारों के मुहूर्त, गृहनिर्माण मुहूर्त, गृह प्रवेश मुहूर्तों के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस ईकाई का अध्ययन करनेके पश्चात् आप—

- मुहूर्त किसे कहते हैं, यह जान सकेंगे।
- संस्कारों का मानव जीवन में प्रभाव को जान सकेंगे।
- षोडश संस्कार मुहूर्त को जान पायेंगे।
- ज्योतिषशास्त्र के अनुसार संस्कारों में मुहूर्त की आवश्यकता क्या है,जान पायेंगे।
- गृह निर्माण तथा गृह प्रवेश के बारे में समझ सकेंगे।

2.3 मुहूर्त का महत्व

मुहूर्त से तात्पर्य है, किसी शुभ और मांगलिक कार्य को शुरू करने के लिए एक निश्चित समय व तिथि का निर्धारण करना। अगर हम सरल शब्दों में इसे परिभाषित करें तो, किसी भी कार्य विशेष के लिए पंचांग के माध्यम से निश्चित की गई समयावधि को 'मुहूर्त ' कहा जाता है।

भारतीय संस्कृति में किसी भी शुभ कार्य को करने के लिए मुहूर्त की आवश्यकता होती है। विना मुहूर्त के किसी भी शुभ कार्य को नही किया जा सकता है। कार्य के लिए निश्चित किया गया विशेष समय कालगणना के लिए निश्चित किया गया समय ही मुहूर्त कहलाता है। काल का नाम रात और दिन का 30 वा भाग भी कहलाता है।

प्रचीन काल में मुहूर्त का ज्ञान कुछ समय यानि(48 मिनट के लिए होता था) एक दिन में 30 मुहूर्त होते है। हमारे शास्त्रों में अनेक प्रकार के मुहुर्तों का वर्णन प्राप्त होता है। जिनका विशद वर्णन इस इकाई में किया गया है।

2.3.1 मुहूर्त और संस्कार का मानव जीवन में प्रभाव

मानव जीवन की सफलता किसी न किसी पर आधारित हैं मानव जीवन को पूर्णता की ओर ले जाने के लिए मुहूर्त ओर संस्कार की आवश्यकता होती हैं। मनुष्य किसी भी धर्म से हों उसका जन्म भी षोडश संस्कारों के अन्तर्गत होता हैं। जन्म से लेकर जो भी संस्कार प्रारंभ होते हैं, उस समय सही मुहूर्त के अनुसार ही उस संस्कार को विधि विधान के द्वारा पूरा किया जाता है जिसका प्रभाव उस मनुष्य पर शत प्रतिशत पड़ता हैं। और उसी के अनुसार उसका जीवन आगे

बढता रहता हैं सही दिशा की ओर बढ़ने के लिए जीवन को सफल करनें के लिए इन सभी संस्कारों तथा मुहूर्तों का मानव जीवन पर प्रभाव पड़ता रहता हैं जिससे की उस मनुष्य का मार्ग सही दिशा की ओर बढ़ सके तथा वह अपने जीवन मैं प्रसन्न रह सके यही संस्कार तथा मुहूर्त का प्रभाव होता है।

2.3.2 षोडश संस्कार में मुहूर्त की भूमिका

प्रायः जब किसी जातक का जन्म होता है तो जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त षोडश संस्कार के द्वारा ही जन्म और मृत्यु का यह विधान सम्पन्न होता हैं जिससे की वह जातक संस्कारों के माध्यम से कर्तव्य निष्ठ बन सके संस्कारों का हमारे जीवन मैं बहुत ही प्रभाव पडता है जैसा हमारा परिवेष होगा वैसे हमारे संस्कार होते हैं संस्कार के द्वारा ही जीवन का मार्ग एक सही तरह आगे बढ़ सकता हैं संस्कार हमारे पूर्वजों से लेकर चले आते हैं जिससे की हमारी कोई भी समस्या हो वह एक सही संस्कारों से ही दूर हो सकती हैं। अब हम जानेंगे की षोडश संस्कार के लिए मुहूर्त की आवश्यकता क्यों होती हैं। वस्तुत: मुहुर्त शास्त्र काल पर ही आधारित हैं बिना कालशास्त्र के मुहूर्त की गणना भी नहीं जा सकती है मुहुर्त का सामान्य अर्थ हैं शुभ समय को निश्चित करना , किस शुभ क्षण को मुहूर्त कहते है षोडश संस्कार मैं मुहूर्त की बहुत ही भूमिका रहती हैं।, गर्भाधान संस्कार से लेकर अन्त्येष्टि संस्कार पर्यन्त मुहूर्त की आवश्यकता होती हैं, जैसे गर्भाधान संस्कार के समय कैसा मुहूर्त था क्या शुभ समय मैं यह संस्कार हो पाया या नहीं यदि शुभ मुहूर्त मैं यह संस्कार हो जाता है तो उस संस्कार की पूर्णता हो जाती है यदि मुहूर्त के अनुसार नहीं हो पाया तो वह अशुभता प्रतीक माना जाता हैं। इसलिए षोडश संस्कारों मैं प्रत्येक संस्कार को पूर्ण करने के लिए मुहूर्त की आवश्यकता होती हैं।बिना मुहूर्त के संस्कारों की शुभता नही होती हैं। संस्कार और मुहूर्त का हमेशा से अन्तर्सम्बन्ध रहा हैं,ये एक दूसरे के पूरक कहे जाते हैं इन दोनों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

भारतीय परम्परा में षोडश संस्कार के द्वारा जातकों का विधि विधान से पूजन अर्चन किया जाता है। जिससे की जातक बड़ी से बड़ी समस्या को से मुक्ति पा सके।

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च
नामक्रियानिष्क्रमणेऽन्नाशनं वपन-क्रिया॥
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारंभक्रियाविधिः
केशांतः स्नानमुपद्रोहो विवाहान्निपरिग्रहः।।
त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः।
नवैताः कर्णवेधांता मंत्रवर्ज क्रियाः स्त्रियाः ॥
विवाहो मंत्रतस्तस्याः शूद्रस्यामंऽत्रतो दृश ॥

१. गर्भाधान संस्कार
२. पुंसवन संस्कार
३. सीमन्तोनयन संस्कार
४. जातकर्म संस्कार
५. नामकरण संस्कार
६. निष्क्रमण संस्कार
७. अन्नप्राशन संस्कार
८. कर्णविध संस्कार
९. विद्यारम्भ संस्कार
१०. चूड़ाकरण संस्कार
११. यज्ञोपवीत संस्कार
१२. वेदारम्भ संस्कार
१३. केशान्त संस्कार
१४. समावर्तन संस्कार

१५. विवाह संस्कार १६. अन्त्येष्टि संस्कार

1. गर्भाधान मुहूर्त—

भारतीय परम्परा में गर्भाधान संस्कार को प्रथम संस्कार के रूप में स्वीकार किया गया है। जातक के जन्म से पहले के तीन संस्कार हैं- गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन। इन तीनों संस्कारो को शुभ मुहूर्त में ही किया जाता है। तीनों संस्कारों को सम्पन्न करने का दायित्व पिता का ही होता है।

रजोदर्शन के प्रारम्भ की सोलह रात्रियों में गर्भाधान करना चाहिये। (चार रात्रि को गर्भाधान से सम रात्रियों के विषम रात्रियों में गर्भाधान से कन्या का जन्म होता है। चौथी रात्रि में निषेध हो तो दुःखी पुत्र का जन्म होता है। पाँचवीं रात्रि से सामान्य फल की प्राप्ति होती है,पुत्र या पुत्री कुछ भी प्राप्त हो सकती है। सातवीं रात्रि के गर्भाधान से अल्पायु कन्या होती है। आठवी रात्रि में सुन्दर कन्या उत्पन्न होती है। 10 वी रात्री में उत्कृष्ट पुत्र उत्पन्न होता है। नवमी में दीर्घायु पुत्र तथा ग्यारहवीं रात्रि में श्रेष्ठ कन्या की प्राप्ति होती है। बारहवीं रात्रि में धर्म के साथ चलने वाला पुत्र होता है तथा तेरहवीं रात्रि में सती कन्या उत्पन्न होती है। चौदहवीं रात्रि में सात्त्विक तथा शुभ पुत्र उत्पन्न होता है। पन्द्रहीं रात्रि में लक्ष्मी एवं सौभाग्य से कन्या का जन्म होता है। सोलहवीं रात्रि में दीर्घायु तथा राजा के समान पुत्र होता है ॥

तिथ्यर्क्षवारनिन्द्याश्चेत् सेककर्म न कारयेत्।
दोषाधिक्ये गुणाल्पत्वे तथापि न च कारयेत् ॥
ओजराश्यंशगे चन्द्रे लग्ने पुंग्रहवीक्षिते ।
उपवीती युग्मतिथौ सुस्नातां कामयेत् स्त्रियम् ॥
पुत्रार्थी पुरुषं त्यक्त्वा पौष्णमूलाहिपैतृभमम्।
युग्मेषु शशाङ्के च लग्ने स्त्रीग्रहवीक्षिते ॥
अयुग्मे दिवसे भार्या कन्यार्थी कामयेत् पतिः।
निर्बीजानामिमे योगाः सर्वदानिष्फलप्रदाः ॥ नारद. ज्यो. संहिता अ.15, श्लोक 7-10

रजोदर्शन प्रारम्भ से 4 रात्रि उपरान्त सम रात्रियों में रोहिणी, हस्त, मृगशिरा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा तीनों उत्तरा इन नक्षत्रों में मेष, कर्क, सिंह, धनु, मकर इन लग्नों मे तथा लग्न से 3-6-11वें स्थान पर पाप ग्रह हो रवि, मंगल, और गुरु की लग्न पर दृष्टि, नवांश विषम राशि का हो (स्त्री का विशेष रूप से चन्द्र श्रेष्ठ हो) ऐसे समय का विचार कर गर्भाधान संस्कार करें। पुनर्वसु, अश्विनी, पुष्य, चित्रा नक्षत्रों में गर्भाधान मध्यम होता है।

शुभ नक्षत्र	–	उत्तरा रोहणी, हस्त, मृगशिरा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा तीनों
मध्यम नक्षत्र	–	पुनर्वसु, अश्विनी, पुष्य, चित्रा
शुभ लग्न	–	मेष, कर्क, सिंह, धनु, मकर व लग्न से 3,6,11 वें पापग्रह
शुभ नवांश	–	1,3,5,7,9, 11
शुभ वार	–	सोमवार,गुरुवार ,बुधवार , शुक्रवार ,

2. पुंसवन संस्कार मुहूर्त—

जिस संस्कार को करने से पुत्र की प्राप्ति हो उसे पुंसवन संस्कार कहते हैं।पुमान् प्रसूयते येन कर्मणा तत् पुंसवनमीरितम् ॥ (नारद. ज्यो. संहिता अ.17)शास्त्रों मैं पुत्र प्राप्ति के लिए अनेक व्रतों के बारे मैं कहां गया हैं श्रीमद्भागवत पुराण मैं पयोव्रत का उल्लेख मिलता है यहां षोडश संस्कारों के

अन्तर्गत गत पुंसवन संस्कार को करने का यही मुख्य उद्देश्य था कि जिसके पास पुत्र न हो वह इस संस्कार का विधि विधान द्वारा पूजन कर उसे पुत्र रत्न की प्राप्ति होती थी।पुंसवन शब्द का वर्णन अथर्ववेद मैं प्राप्त होता हैं। अथर्ववेद के 6/11/11/ में पुंसवन शब्द का वर्णन प्राप्त होता है। जिसका अर्थ हैं पुत्र को जन्म देना है। ऋषि वृहस्पति के अनुसार भी इस संस्कार को करने से पुत्र कीप्राप्ति होती हैं।

गर्भः सुस्थापिते चास्य वक्ष्ये पुंसवनस्य च
काले यस्मिन् कृतो गर्भः पुमान्भवति निश्चितम्।। वृहद्देवज्ञरंजन

पुत्र की प्राप्ति के लिए पुंसवन संस्कार को किया जाता है। जिस भी व्यक्ति को पुत्र का अभाव हो उसे इस संस्कार के साथ साथ प्रजापत्य यज्ञ करना चाहिए।गर्भ के अभिव्यक्त होने पर यह संस्कार करना चाहिए। गर्भधारण के द्वितीय या तृतीय मास में इस संस्कार को करने का विधान है। कतिपय ग्रन्थों में इसे षष्ठ या अष्टम मास में भी करने को कहा गया है।

पूर्वोदितैः पुंसवनं विधेयं मासे तृतीये त्वथ विष्णुपूजा।
मासेऽष्टमे विष्णुविधातृजीवैर्लग्ने शुभे मृत्युगृहे च शुद्धे।।मु.चि.सं.प्र श्लोक 10

गुरु, रवि और भौमवासरों, मृगशिरा, पुष्य, मूल, श्रवण, पुनर्वसु तथा हस्त नक्षत्रों में रिक्ता ४,९,१४ अमावस्या, द्वादशी, षष्ठी और अष्टमी तिथियों को छोड़कर शेष तिथियों में गर्भमासपति के बलवान रहने पर आठवें अथवा छठें मास में शुभग्रहों के केन्द्र १,४,७,१० एवं त्रिकोण ५,९ भावों में स्थित रहने पर तथा पापग्रहों के ३,६,११ भावों में जाने पर पुंसवन संस्कार तीसरे मास में करना चाहिये। इसके अनन्तर आठवें मास में श्रवण, रोहिणी और पुष्य नक्षत्रों में शुभलग्न में अष्टम भाव के शुद्ध रहने पर गर्भिणी को भगवान विष्णु का पूजन करना चाहिये। गोभिल ऋषि के अनुसार पुंसवन संस्कार को तृतीय मास के तृतीय भाग में करना शुभ कारक होता है। पुत्र की कामना होने पर इस संस्कार को अवश्य करना चाहिए।

3. सीमन्तोनयन संस्कार—

भारतीय परम्परा में 16 संस्कारो को करना आवश्यक होता है इन संस्कारो में से एक सीमन्तोन्नयन संस्कार भी होता है जिसके करने से पत्नी की समस्यों को निवारण किया जाता है जिससे की यश की वृद्धि होती है। इस संस्कार को करने से गर्भ का अष्टम मांस का अधिपति बली हो तथा पत्ती पत्नी दोनों का चन्द्रमा बली हो तो **उस समय सीमन्तोनयन संस्कार किया जाता हैं।**

स्त्रीणां तु प्रथमे गर्भे सीमन्तोन्नयनं शुभम् ॥
पापेषु सत्सु चन्द्रेन्त्य निधनाद्यारिवर्जिते
क्रूरग्रहाणामेकोऽपि लग्ना दन्त्यात्मजाष्टगाः ।
सीमन्तिनीनां सद्गर्भ बली हन्ति न संशयः।। नारद. ज्यो. संहिता अ.18, श्लोक 4-6 ,

गर्भ के तृतीय मास में रवि, मंगल, गुरुवार को दम्पति के श्रेष्ठ चन्द्र मे. तारा शुद्धि मे रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, पुनर्वसु, हस्त, मूल. श्रवण, 3 उत्तरा नक्षत्रों में जन्म नक्षत्र को त्याग कर के , शुक्लपक्ष की 1, 2, 3, 4, 5, 7, 10, 11, 13 तथा कृष्ण पक्ष में दशमी तिथि पर्यन्त दिन के पूर्व भाग में पुरुष संज्ञक नवांश लग्न में होने पर तथा लग्न से 1, 4, 5, 7, 9, 10 स्थानों पर शुभ ग्रह तथा 3, 6, 11 वें स्थानों पर पापग्रहों की स्थिति में एवं चन्द्र की 1,6,8,12वें स्थिति न होने पर पुंसवन व सीमन्तनयन संस्कार उत्तम माना जाता है। इस संस्कार में गुरु शुक्रास्त का विचार नही करना चाहिए।

शुभ मास - गर्भ से 6, 8 मासों में मासाधिपति बली होने पर शुभ माना जाता है।
शुभ तिथि - शुक्लपक्ष की 1,2,3,4,5,7,10,11,13 तथा कृष्ण पक्ष में दशमी पर्यन्त
शुभ नक्षत्र - रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, पुनर्वसु, हस्त, मूल. श्रवण, 3 उत्तरा नक्षत्रों जन्म नक्षत्र को त्याग कर
शुभ लग्न - 13,5,7,11
शुभ वार - रवि, मंगल, बुध, गुरु, मतान्तर से सोम, बुध, शुक्

4. नामकरण संस्कार मुहूर्त—

षोडश संस्कारों मैं नामकरण संस्कार को बहुत ही महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता है जातकर्म संस्कार के बाद ही नामकरण संस्कार किया जाता है इसका विधान क्या हैं शास्त्रों मैं इसका सम्पूर्ण वर्णन प्राप्त होता हैं मुहूर्त चिंतामणिमणि ग्रंथ मैं आचार्य रामदैवज्ञ जी कहते हैं नामकरण संस्कार वर्णों के अनुसार की जाती है ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन सभी वर्णों के लिए अलग अलग दिनों मैं ही करना चाहिए जन्म से 11दिन मैं नामकरण संस्कार करना शुभ माना जाता हैं इस संस्कार को 10दिंन के सूत की समाप्ति पर ग्यारह दिन सूतक को दूर करने तथा बालक का नवीन नाम रखकर विधि विधानपूर्वक षोडशोपचार से पूजन कर नामकरण संस्कार करना शास्त्र सम्मत कहा गया हैं।

नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतुः।
नाम्नैव कीर्तिं लभते मनुष्यः ततः प्रशस्तं खलु नाम कर्म।

नाम अखिल व्यवहार का हेतु माना गया है। वह शुभावह कर्मों में भाग्य का कारण भी होता है। नाम का बहुत ही महत्व होता रहा है नाम से ही मनुष्य ख्याति प्राप्त करता है। अतः नामकरण संस्कार को प्रशस्त संस्कार माना जाता है। नामकरण सूतक निवृत्ति के उपरान्त ब्राह्मण का 11वें दिन, क्षत्रिय का 13वें दिन, शूद्र का 21वें दिन, कुल की परम्परा के अनुसार करना चाहिए। दस दिन से पूर्व कदापि शुद्धि के अभाव के करण नामकरण संस्कार न करें। सूतक समाप्ति होने पर 11वें या 12वें दिन नामकरण संस्कार करने का विधान है। 12 दिन के बाद भद्रा, व्यतिपात, वैधृति, संक्रान्ति रहित दिनों में रिक्ता 1,2,3,5,6,7,10,11,12,13 इन तिथियों में शुभवार, अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, ल अनुराधा, तीनों उत्तरा, अभिजित, स्वाति, मूल श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती नक्षत्रों में लग्न नवांश के बल का विचार कर नामकरण संस्कार करना शुभ होता है।

नामपूर्व प्रशस्तं स्यान्मङ्गलैश्च शुभाक्षरैः
सूतकान्ते नामकर्म विधेयं स्वकुलोचितम्।

शुभ तिथि - 1,2,3,5,6,7,8,10,11,12,13
शुभ वार - सोम, बुध, गुरु, शुक्र -
शुभ नक्षत्र - अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुर्नर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, अनुराधा, तीनों उत्तरा, अभिजित, स्वाति, मूल श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती
अशुभ मुहुर्त - जन्म से 10 दिन, भद्रा, व्यतिपान, वैधृति, संक्रान्ति रहित दिन में नही करना चाहिए।

5. निष्क्रमण संस्कार मुहूर्त—

जातक के जन्म के बाद नामकरणादि होने के पश्चात् जब प्रथम बार बालक को घर से बाहर निकाला जाता है उसे निष्क्रमण संस्कार कहते हैं। सही मुहुर्त अनुसार बालक को घर से

बाहर ले जाना ही निष्क्रमण संस्कार कहलाता है। जन्म से बारहवें दिन बिना मुहूर्त विचार के बालक का निष्क्रमण कर, सूर्य नक्षत्र का पूजन कर सूर्य नक्षत्र व देवताओं का दर्शन करावें। यदि बारहवें दिन यह न हो पाये तब 3 मास में मंगल शनि वर्जित वारों व रिक्ता, विष्टि, अमावस्य आदि अशुभ योग से भिन्न शुभ दिन में, अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनुराधा, स्वाति, मूल श्रवणा, धनिष्ठा नक्षत्रों में प्रथम निष्क्रमण शुभ है।

शुभ तिथि - 1,2,3,5,6,7,8,10,11,12,13,15

शुभ वार - सोम-बुध-गुरु-शुक्र

शुभ नक्षत्र - अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनुराधा, स्वाति, मूल श्रवण,धनिष्ठा

6. जातकर्म संस्कार मुहूर्त—

जातक के जन्म लेने पर किया जाने वाला संस्कार जातकर्म संस्कार कहलाता हैं। इसे नाभि वर्धन भी कहते हैं।नाभि को काटने से पूर्व इस संस्कार का विधि विधान के द्वारा पित्रों को साक्षी कर नांन्दी श्राद्ध के द्वारा पित्रों का पूजन करना चाहिए। जब किसी जातक का जन्म होते ही उसी समय उस जातक का नालछेदन से पूर्व इस संस्कार को करना चाहिये उसके बाद जातक का पूर्वक करना चाहिए अर्थात जातकर्म पितृक ।

तस्मिञ्जन्ममुहूर्तेऽपि सूतकान्तेऽपि वा शिशुः।

जातकर्म प्रकर्त्तव्यं पितृपूजनपूर्वकम्। नारद. ज्यो. संहिता अ.19 ,श्लोक 1

शुभ तिथि - 1,2,3,5,6,7,8,10,11,12,13

शुभ वार - सोम, बुध, गुरु, शुक्र -

शुभ नक्षत्र - अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुर्नवसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, अनुराधा, तीनों उत्तरा, अभिजित, स्वाति, मूल श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती

7. अन्नप्राशन संस्कार मुहूर्त—

जातक के जन्म के 6वें या आठवें महीने मैं अन्नप्राशन संस्कार किया जाता है इस संस्कार मैं जातक को अन्नके द्वारा जातक का मुंह जूठा किया जाता है उस दिन से उसका अन्न लेना प्रारंभ हो जाता हैं इसी संस्कार को अन्नप्राशन संस्कार कहते हैं। बालक के नामकरण, निष्क्रमण, भूमि उपवेशन के बाद 6,8,10,12वें महीने में पुत्र को और 5,7,9 वें मास में कन्या को अन्नप्राशन कराने का विधान है।

विशेष— उक्त मासों में भद्रा व्यतिपात दोष रहित 1,3,5,7,10,13,15 तिथियों में शुभवार अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त चित्रां स्वाति. अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, तीनों उत्तरा, रेवती नक्षत्रों में 1,3,4,5,7,9 स्थानों में शुभ ग्रह हो जन्म लग्न या जन्मराशि से अष्टम लग्न या नवांश तथा 12,1,8 लग्न को त्यागकर पाप-शुद्ध दशम भाव इन सभी बातों का विचार कर अन्नप्राशन संस्कार कराना उत्तम माना जाता है।

शुभ मास -6,8,10,12वें मास में पुत्र 5,7,9 वें मास मे कन्या

शुभ तिथि -13,5,7,10,13,15

शुभ वार -सोम, बुध, गुरु, शुक्र

शुभ नक्षत्र - अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा तीनों उत्तरा, रेवती

शुभ लग्न -1345679,10,11

8. कर्ण भेद संस्कार मुहूर्त—

भारतीय परम्परा मैं षोडश संस्कारों मै कर्णभेद संस्कार को भी महत्वपूर्ण माना जाता है। कर्ण -कान, वेध-छेदन,कान का छेदन ही कर्णवेध कहलाता हैं जिससे की इस संस्कार का विधान पूर्ण हो सके। कर्ण वेध के महत्व के सन्दर्भ मे आचार्य सुश्रुत ने कहा है कि कर्णवेध संस्कार करने से पान से अन्त्रवृद्धि, अण्डकोष वृद्धि आदि का निरोध होता है।

शंखोपरि च कर्णान्ते त्यक्त्वा यत्नेन् सेवनीयम्।
व्यत्यासाद्वा शिरां विध्येद् अन्त्रवृद्धि निवृत्तये ।।

समवर्ष, चैत्र, पौष, जन्ममास, देवशयन, जन्म नक्षत्र व तिथि, क्षयतिथि व रिक्ता को छोड़कर जन्म से 12वें या 16वें दिन अथवा 6, 7, 8वें मास में या विषम वर्षो में शुभवार, अश्विनि, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, रेवती नक्षत्रों में लग्न से अष्टम शुद्ध समय में वृष, तुला, धनु, मीन लग्न में तथा गुरु की लग्न में स्थिति होने पर कर्ण-वेध संस्कार शुभ होता है।

हित्वैतांश्चैत्रपीषावमहरिशयनं जन्ममासं च रिक्तां
युग्माब्दं जन्मतारामृतमुनिवसुभिः सम्मिते मास्यथो वा।|

शुभ वर्षादि - विषम वर्ष, 6,7,8 वें मास, जन्म से 12वें या 16वें दिन
शुभ तिथि - 12,3,5,6,7,8,10,11,12,13,15
शुभ वार - सोम, बुध, गुरु, शुक्र
शुभ नक्षत्र - अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा,
शुभ लग्न - 2,7,9,12
अशुभ मुहुर्त - समवर्ष, चैत्र, पौष, जन्ममास, देवशयन, जन्म नक्षत्र व जन्म तिथि, क्षयतिथि व रिक्ता।

9. विद्यारंभ संस्कार मुहूर्त—

इस विद्यारंभ संस्कार के द्वारा बालक को विद्वान बनानें के लिए गुरुके द्वारा ज्ञान दिया जाता है इस दिन से शिक्षा प्रारंभ करते हैं लेखनी पुस्तिका इन सब का पूजन कर यह संस्कार कशुभ दिनों मैं प्रारम्भ किया जाता हैं। शब्दों का ज्ञान अक्षरों के ज्ञान को करनें के लिए विद्यारंभ संस्कार किया जाता हैं।अक्षरारम्भ के उपरान्त विशेष ज्ञान को बढाने वाली किसी भी भाषास्थ विद्या (विशेषतः संस्कृत भाषस्थ विद्या) का प्रारम्भ फाल्गुन मास छोड़कर उत्तरायण 23,5,6,10,11,12 तिथियों में, रवि, बुध, गुरु शुक्र वारों में और अश्विनी आश्लेषा, अ मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, तीनों पूर्वा, रेवती इन नक्षत्रों में श्रेष्ठ हैं। अंग्रेजी, फारसी, उर्दू के हो विद्यारम्भ के लिये रवि, मंगल, शनिवार, रिक्ता तिथि, ज्येष्ठा. आश्लेषा, मघा, अपूर्वा, भरणी, कृतिका., विशाखा, आर्द्रा, उत्तराषाढ़ा, शतभिषा, इन नक्षत्रों में शुभ है। पर

शुभ तिथि -233,6,10,11,12 तिथियों में
विद्यारम्भ त्याज्य - फाल्गुन मास रिक्ता, अमावस्या तिथियां
शुभ वार -रवि, बुध, गुरु, शुक्र
शुभ नक्षत्र - अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, आश्लेषा, आर्द्रा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, तीनों पूर्वा, रेवती

10. चूडाकर्म संस्कार मुहूर्त—

किसी जातक के जन्म के बाद 5,3,7 वर्षों मैं चूडाकर्म संस्कार करना शुभ माना जाता है शुभ दिन मुहूर्त के अनुसारषोडशोपचार पूजन विधि के द्वारा यह संस्कार सम्पन्न किया जाता हैं।चित्रा, स्वाति, ज्येष्ठा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती नक्षत्रों में करना श्रेष्ठ है। अष्टम भाव शुद्ध होना चाहिये। ज्येष्ठ, चैत्र मास मे न करें। बालक की माता को रने पांच मास की गर्भ स्थिति होने पर 5 वर्ष से न्यून अवस्था के शिशु का मुण्डन करना अशुभ माना जाता है।

सूनोर्मातरि गर्भिण्यां चूडाकर्म न कारयेत्।
पञ्चाब्दात्प्रागथेर्ध्व तु गर्भिण्यामपि कारयेत्॥ ज्यो.संहिता अ.२२ ,श्लोक 3

शुभ वर्षादि - विषमवर्ष या उत्तरायण
शुभ तिथि - 2,3,5,7,10,11,13
शुभ वार - सोम, बुध, गुरु, शुक्र
शुभ नक्षत्र -अश्विनी, मृगशिरा, पुनवर्स, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाति, ज्येष्ठा, श्रवण, शतभिषा, रेवती।
अशुभ समय - लग्न से अष्टम ग्रह, ज्येष्ठ, चैत्र मास, समवर्ष, दक्षिणायन ।

11. उपनयन संस्कार मुहूर्त—

उपनयन संस्कार मैं बालक को यज्ञोपवीत धारण किया जाता है कुलपुरोहित के द्वारा विधिवत वैदिक मंत्रोंके द्वारा इस विधान को किया जाता है। इस संस्कार मैं कुलपुरोहित बालक को मंत्र देकर यह संस्कार पूर्णकराते हैं। जन्म से 5,8,16, वर्षों मैं वर्णानुसार इस संस्कार को कराया जाता है। उपनयन का अर्थ है समीप यानि गुरु के समीप जाकर के यह संस्कार किया जाता है।उपनयनसंस्कार बालक के जन्म से या गर्भ से ब्राह्मण का 8 वें, क्षत्रिय का 11 वें, वैश्य का 12 वें वर्ष में करना श्रेयस्करमाना जाता है। इस समय के व्यतीत हो जाने पर ब्राह्मण 16 वें वर्ष, क्षत्रिय 22 वें वर्ष वैश्य 24 वें वर्ष तक उपनयन संस्कार कर सकते हैं।

विप्राणां व्रतबन्धनं निगदितं गर्भाज्जनेर्वाष्टमे।
वर्षे वाप्यथ पञ्चमे क्षितिभुजां षष्ठे तथैकादशे।
वैश्यानां पुनरष्टमेऽप्यथ पुनः स्याद् द्वादशे वत्सरे।
कालेऽथ द्विगुणे गते निगदिते गौणं तदाहुर्बुधाः ॥

जिस बालक उपनयन संस्कार होना है उस बालक का गुरुबल तथा चन्द्रबल का विचार करें। देवशयन से पूर्व उत्तरायण सूर्य मे, रवि, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्रवारों में शुक्लपक्ष की 3,5,10,11,12 तथा कृष्णपक्ष की 2,35 तिथियों में अश्विनी, राहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, तीनों पूर्वा, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती इन नक्षत्रों के क्रूर तथा वेधरहित होने पर, पूर्वाह्न में, अभिजित मुहूर्त में, यज्ञोपवीत संस्कार अतिउत्तम माना जाता है।चैत्र व मीन के सूर्य में, वृष या कर्क के पूर्ण चन्द्रमा के लग्न में रहनेपर विशेष श्रेष्ठतम होता है।

12. वेदारंभ संस्कार मुहूर्त—

वेदारभ के अंतर्गत बालक को वेदों का ज्ञान कराया जाता है।जिससे की वह बालक वेदों को समझ सके प्राय देखा जाय तो वेदारंभ संस्कार को विद्यारंभ संस्कार ही कहा जाता है। क्योंकि विद्या प्राप्ति के पश्चात ही व्यक्ति वेदों तथा अन्य धर्मग्रंथों का अध्ययन करने में सक्षम होता था। तब शिक्षा का महत्त्व वेदाध्ययन की दृष्टि से अधिक था। इस कारण इस संस्कार को विद्यारंभ संस्कार अथवा वेदारंभ संस्कार के रूप में जाना जाता है।वेदों तथा अन्य धर्मग्रंथों के

अध्ययन से हमें इन सभी शास्त्रीय ज्ञान के बारे में बारे पूर्ण जानकारी प्राप्त होती थी। इस दृष्टि देखा जायतो इसे वेदारंभ संस्कार के नाम से ही जाना गया है। वेदाध्ययन के महत्त्व को इस प्रकार से वप्रकट किया गया है।

विद्यया लुप्यते पापं विद्यायाऽयुः प्रवर्धते।
विद्याया सर्वसिद्धिः स्याद्विद्ययाऽमृतमश्नुते ।।

अर्थात् वेद विद्या के अध्ययन सकरने से सभी पापों का लोप हो जाता है1 आयु की वृद्धि होती है, समस्त सिद्धियां की पप्राप्ति होती हैं, यहां तक कि उसके समक्ष अमृत-रस के रूप में भी प्राप्त हो जाता है। इसलिए शुभ मुहूर्त के द्वारा वेदारंभ संस्कार को करना उचित माना गया है

शुभ मास - फाल्गुन, मार्गशीर्ष, माघ,वैशाख, ज्येष्ठ,आषाढ़,
शुभ तिथि - 1,2,3,5,6,7,8,10,11.,15
शुभ वार - सोम-बुध-गुरु-शुक्र
शुभ नक्षत्र - अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनुराधा, स्वाति, मूल

13. केशांत संस्कार मुहूर्त—

वेदारंभ संस्कार के पूर्ण होने पर केशांत संस्कार किया जाता है, इस संस्कार को करने से बालक को बताया जाता है कि अब उसे सामजिक जिम्मेदारियों का पालन करना है. आइए जानते है केशांत संस्कार का महत्व, क्या है इसे कब करना चाहिए।

केशांत संस्कार का महत्व— केशांत दो शब्दों से मिलकर बनता है केश और अर्थ(केश – बाल, अंत – पूर्ण) अर्थात किसी व्यक्ति के बालों को पूरी तरह से काटना ही केशांत कहलाता है1 पहली बार बालक अपने दाढ़ी और मूंछ को काटता है. यहीं से उसका किशोरावस्था पूर्ण होता है और वो गृहस्थ जीवन की ज़िम्मेदारी उठाने योग्य बन जाता है. केशांत संस्कार एक युवा के वेदारंभ संस्कार की समाप्ति के पश्चात किया जाता है क्योंकि उसके बाद वह गुरुकुल से अपने घर और समाज में दोबारा लौटता हैकेशांत संस्कार 16 साल की उम्र से पहले नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे पहले वह वेदारंभ संस्कार के नियमों का पालन कर रहा होता है1 जिसमें उसे गुरुकुल में रहकर सिर तथा दाढ़ी के बाल कटवाने के लिए निषेध होता है।इस संस्कार को करते समय मुख्य-तौर पर कुछ मंत्रो का जप करना लाभदायक होता है।

शुभ मास - माघ,वैशाख, ज्येष्ठ, फाल्गुन,मार्गशीर्ष,
शुभ तिथि - 1,2,3,5,6,7,8,10,11,12,13,15
शुभ वार - सोम-बुध-गुरु-शुक्र
शुभ नक्षत्र - अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनुराधा, स्वाति, मूल श्रवण, धनिष्ठा

14. समावर्तन संस्कार मुहूर्त—

षोडश संस्कार मैं समावर्तन संस्कार का महत्व भी अधिक माना जाता हैं। जब शिशु धीरे धीरे बड़ा होकर

गुरुकुल मैं जाकर के गुरु के आश्रम मैं रहकर वेद शास्त्रों का अध्ययन करता है तो अध्ययन पूर्ण होने के पश्चात् वह शास्त्री, आचार्य की शिक्षा प्राप्त यानि स्नातक की शिक्षा प्राप्त कर ब्रह्मचर्य का पालन कर वह घशुभ दिन मैं सूर्य उत्तरायण मैं हो ऐसे समय पर वह विद्यार्थी घर लौटता है उसे समावर्तन संस्कार कहते हैं। इस संस्कार के बाद विद्यार्थी स्नातक कहलाता है गुरुकुल से लोटने पर उस बालक का संस्कार स्नान होता हैं। इसे धर्म शास्त्रों मैं समावर्तन कहते हैं।(सम्यक रुप से घर लौटना) ही समावर्तन संस्कार कहलाता हैं।

शुभ तिथि - 12,3,5,6,7,8,10,11,12,13,15

शुभ वार - सोम, बुध, गुरु, शुक्र

शुभ नक्षत्र - अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा,

शुभ लग्न - 2,7,9,12

15. विवाह संस्कार मुहूर्त—

षोडश संस्कार मैं विवाह संस्कार 15 वां संस्कार हैं। जब जातक सभी संस्कारों का विधिवत पालन करते करते आगे बढ़ता हैं तो फिर उसे विव संस्कार को भी करना पड़ता हैं। क्योंकि सभी चारों आश्रम गृहस्थ पर ही आधारित हैं जिससे की सृष्टि प्रक्रिया भी चलती रहे ओर सभी जीवों का पालन गृहस्थियों के द्वारा होती रहें सभी आश्रमों में यह श्रेष्ठ आश्रम कहां गया हैं। विवाह संस्कार होने पर धर्म का पालन भी होता हैं। हमारे शास्त्रों में इन संस्कारों के विषय मैं कहां गया हैं। शुभ मास, दिन, लग्न मैं विवाह संस्कार करना चाहिए।

सर्वाश्रमाणामाश्रेयो गृहस्थाश्रम उत्तमः।
यतः सोऽपि च योषायां शीलवत्यौ स्थितस्ततः।
तस्यास्तच्छीललब्धिस्तु सुलग्नवशतः खलु।
पितामहोक्तां सम्वीक्ष्य लग्नशुद्धिं प्रवच्यहम्।

शुभ तिथि - 12356.78.10,11,12,13,15

शुभ नक्षत्र - रेवती, अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, श्रवण, धनिष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाति, भरणी, मघा, तीनों उत्तरा, पुष्य, अनुराधा।

शुभ वार - चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र।

शुभ लग्न - स्थिर लग्नों में चतुर्थ एवं अष्टम भाव शुद्ध हो।

अशुभ दिन - व्यतिपात, क्षयतिथि, ग्रहण, वैधृति, अमावस्या, संक्रान्ति व रिक्ता तिथि

वधूप्रवेशो न दिवा प्रशस्तः राजप्रवेशो न निशि प्रशस्तः ।
दिवा च रात्रौ च गृहप्रवेशः सत्कीर्तिदः स्यात्त्रिविधः प्रवेशः ।।

16. अन्त्येष्टि संस्कार—

अन्त्येष्टि संस्कार/श्राद्ध संस्कार सबसे आखिर का संस्कार है जिसमे व्यक्ति का अंतिम संस्कार होता है। यह संस्कार मृत्यु के 24 घंटे के भीतर किया जाता है और इसमें शव को अग्नि में जलाना शामिल होता है। मुहूर्त, या शुभ समय, के संदर्भ में, दाह संस्कार को सूर्योदय और सूर्यास्त के बीच करना चाहिए। मरणोत्तर संस्कार: 10 वें या 13 वें दिन किया जाता है। श्राद्ध: 13 वें दिन या उससे पहले किया जाता है।

पंचक नक्षत्रों के दौरान अन्त्येष्टि संस्कार करना, कुछ ज्योतिषीय मान्यताओं के अनुसार, शुभ नहीं माना जाता है। पंचक पांच नक्षत्रों का समूह है: धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती। यह नक्षत्रों के इस समूह के दौरान एक विशेष अवधि होती है जिसे पंचक कहते हैं। कुछ मान्यताओं के अनुसार, पंचक के दौरान अन्त्येष्टि संस्कार करना अशुभ माना जाता है क्योंकि यह अवधि मृत्यु के साथ जुड़ी हुई है और इसमें नकारात्मक ऊर्जा होती है।

यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु पंचक के दौरान होती है, तो कुछ उपाय किए जा सकते हैं ताकि पंचक का अशुभ प्रभाव कम हो सके। गरुड़ पुराण के अनुसार, यदि किसी परिजन की

मृत्यु पंचक काल में हो जाए, तो शव के साथ आटे या कुश के पांच पुतले बनाकर शव के साथ रख दें और विधि-विधान से दाह संस्कार करें।

2.4 गृह-निर्माण मुहूर्त विचार

प्राय: देखा जाता हैं कि किसी भी प्राणी को गृह की प्रथम आवश्यक होती हैं जीव, जन्तु पशु,पक्षी आदि जितने भी प्राणी हैं उन सभी को मुख्य रुप से गृह की आवश्यकता अवश्य होती हैं। भूखंड पर शास्त्रों के अनुसार विधिवत परीक्षण कर उस भूमि का शास्त्रों के द्वारा पूजन कर वास्तु शास्त्र के अनुसार गृह का निर्माण करना ही श्रेयस्कर होता हैं क्योंकि यदि हमारा घर अशुभ स्थान पर बना हो तो वह हमेशा के ही परेशानी का कारण बना रहेगा। इसलिए शुभ मुहूर्त के अनुसार उस भूमि पर गृह का निर्माण प्रत्येक माह के नाग मुख को देखकर ही उस दिशा से पहली शिलान्यास कर पूजन करना चाहिए। जिससे की सुखसमृद्धि और यश की प्राप्ति होती रहें।

शुभ मास - वैशाख, श्रावण, मर्गशीर्ष, माघ फाल्गुन, एवं मेष, वृष कर्क, सिंह, तुला, वृश्चिक, मकर, कुम्भ सूर्य रहते गृहाराम्भ शुभ तथा भाद्रपद-कार्तिक मास भी समान्यतया मान्य होता हैं।

शुभतिथि - 2, 3, 5, 6, 7, 10, 11, 12, 13, 15 तथा कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा।

शुभवार - चन्द्र, बुध, गुरु, ष्ठशुक्र, ष्ठानि।

शुभनक्षत्र -रों., मृग., चित्रा, हस्त, स्वा., अनु., उत्तरा 3, धनि, ष्टात, रेवती तथा पुष्य

शुभ लग्न - मेष, मिथुन, सिंह, कन्या, वृश्चिक, कुम्भ, मीन, तथा लग्न बल हेतु केन्द्र त्रिकोण स्थानों में

शुभ ग्रह तथा 3 /6/ 11 में पाप ग्रह एवं आठवे स्थान शुद्ध होने पर नवीन घर का निर्माण शुभकारी होता है।

2.5 नवीन गृह प्रवेश मुहूर्त

जब गृह निर्माण का कार्य पूर्ण हो जाता है तो उसके बाद नवीन गृह में शुभ मुहूर्त शुभ माह में अपने कुल देवताओ का पूजन कर यज्ञ करना चाहिए।

शुभ मास - वैशाख, ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन आदि चान्द्र मास विशेष शुभ तथा कार्तिक मार्गशीर्ष

शुभ तिथि - चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी रहित सभी तिथि मान्य

शुभ लग्न -वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ लग्नों में सामान्यत: 369 12 लग्नों में भी मान्यता। लग्न से 1, 2, 3, 4, 5, 7, 9, 10 इन स्थानों शुभ ग्रह तथा 3, 6, 11 भावों में पाप ग्रह रहे तथा चन्द्रमा 1, 4, 6, 8, 12 स्थानों में नहीं होवें तथा चतुर्थ अष्टम भाव शुद्ध हो। जन्म राशि से अष्टम राशि का लग्न न हो।

शुभ वार - चन्द्र बुध, गुरु, शुक्र, शनि

शुभ नक्षत्र -रोहि., मृग., चि., अनु., उत्तरा 3 तथा रेवती विशेष शुभ एवं जीर्ण गृह में पुष्य स्वाति, इन सभी संस्कारो को मुहूर्त के अनुसार विचार करना चाहिय तथा जीवन की सुख समृधि के लिए इनका पालन करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न—

1. मुहूर्त किसे कहते हैं।
2. संस्कार कितने होते हैं।

3. प्राग्जन्म के कोन कोन संस्कार होते हैं।
4. गर्भाधान की उत्तम आयु क्या हैं।
5. चूडाकर्म के लिए शुभ नक्षत्र कोन से हैं।
6. वर्ष की आयु में कोन सा संस्कार किया जाता हैं।
7. ब्राह्मणों का उपनयन संस्कार कितने वर्ष मैं किया जाता हैं।
8. उपनयन संस्कार करने के लिए शुभ तिथि क्या हैं।
9. श्रत्रियों का जनेऊ कब किया जाता हैं।
10. क्षिप्र संज्ञक नक्षत्र होते हैं।
11. मृदुसंज्ञक नक्षत्र हैं।
12. षोडश संस्कारों में विवाह संस्कार का कोन सा क्रम हैं।
13. गृह निर्माण में शुभ मास,तिथि,नक्षत्र
14. नवीन गृह में प्रवेश करना कब शुभ होता हैं।

2.6 सारांश

इस ईकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझ गये होंगे कि मुहूर्त किसे कहते हैं तथा षोडश संस्कारों के मुहूर्त के विषय में जाना। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त मनुष्य के अन्त करण मैं संस्कार व्याप्त रहता हैं जिससे कि उस मनुष्य की वृद्धि होती रहती हैं वह स्वयं के परिवेष के साथ साथ अन्य परिवेश को भी संस्कारित करताहैं। जिससे वह एक नये परिवेश का निर्माण कर सकें। वस्तुत सनातन संस्कृति मैं जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त षोडश संस्कार होते हैं। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त षोडश संस्कार होते हैं। इन सभी षोडश संस्कारमैं मुहूर्त का विचार करना आवश्यक होता हैं जिससे की षोडश संस्कार का मुहूर्त शुभ हो तथा उस संस्कारको करने के लिए मुहूर्त के द्वारा शुभ दिन निश्चित कर इन सभी संस्कारों को किया जा सकता है। यह सारासंसार काल के वश मैं होने के कारण यहां पर जितने भी प्राणी हैं उन सभी को इन षोडशो संस्कार से होकरआगे जाना होता हैं जिसमें की मुहूर्त की आवश्यकता होती हैं। शुभ मुहूर्त के द्वारा ही संस्कार को करना शुभमाना जाता है। अतः प्राग्जन्म के तीन संस्कार होते हैं गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन,इन तीनों संस्कार कोकरने का अधिकार पिता को होता है मां इस संस्कार मैं संवाहिका होती हैं। वह अपने स्वामी द्वारा सम्पन्नकराया जा रहा संस्कार पवित्र होकर धारण करती हैं। आगे के जो भी संस्कार होते हैं उसमें मां निमित्त बनकर नामकरण संस्कार, उपनयन संस्कार, चूड़ाकरण संस्कार, इत्यादि संस्कारों को करने के लिए दायित्व लेती हैं। पूर्व में हमारे ऋषियों के द्वारा कहे गये इन संस्कारों का हम सभी को पालन करना चाहिए। जिससे आने वाली पीढ़ियों पर सही प्रभाव पड़ सके। इसलिए षोडश संस्कारों में मुहूर्त की आवश्यकता विशेष रुप से होती हैं।

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

निष्क्रमण- बालक को घर से बाहर ले जाना ही निष्क्रमण संस्कार हैं

जातकर्म -जन्म के समय किया जाने वाला संस्कार जातकर्म कहलाता हैं।

संस्कार -संस्कृत करना अर्थात् विशुद्ध होना

मुहूर्त-शुभ समय को निश्चित करना

पुंसवन-पुत्र की प्राप्ति के लिए जिस संस्कार को किया जाता हैं उसे पुंसवन संस्कार कहते हैं।

कर्णवेध-कान पर छिद्र करना

सीमन्तोनयन -जिसमें गर्भिणी के केशों को ऊपर की और उठाया जाता है उस समय शास्त्र विधि से सीमन्तोनयन संस्कार किया जाता है।

नामकरण-जन्म से 11वें दिन किया जाने वाला संस्कार नामकरण कहलाता हैं जिसमें बच्चे का नाम किसी नकिसी अक्षर पर रखा जाता हैं।

गर्भाधान-शुभ कर्म के माध्यम से पति अपने पत्नी के गर्भ में बीज स्थापित करता हैं उसे गर्भाधानकहते हैं।

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. किसी भी कार्य विशेष के लिए पंचांग के माध्यम से निश्चित की गई समयावधि को 'मुहूर्त ' कहा जाता है।
2. षोडश 16
3. गर्भाधान संस्कार, पुंसवन संस्कार, सीमन्तोनयन संस्कार
4. 20 से 40 वर्ष
5. अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती
6. चूडाकर्म संस्कार
7. आठ वर्ष में
8. 3,5,10,11,12,2, तिथियों में
9. जन्म काल से 11वें वर्ष मैं
10. हस्त, अश्विनी,पुष्य
11. मृगशिरा,चित्रा, अनुराधा
12. 15 वा क्रम
13. वैशाख, 2,3,5,6,7,10,11,15, तिथि, रोहिणी, मृगशिरा, चित्रा,हस्त,स्वाती
14. शुभमास, वैशाख, माघ, शुभ तिथि 2, 6, 11, 15 शुभ नक्षत्र, रोहिणी, मृगशिरा, अनुराधा, उत्तरात्रय, शुभ लग्न, वृष, सिंह, कुम्भ, शुभ वार, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र

2.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. मुहूर्त चिंतामणि, श्रीरामाचार्य विरचित

2. नारदज्योतिषसंहिता, नारद मुनि

3. मुहूर्त मार्तण्ड, नारायण दैवज्ञ

4. वृहद्दैवज्ञरंजन

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. मुहूर्त किसे कहते हैं संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।

2. कर्ण भेद संस्कार, उपनयन संस्कार पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

3. गृहप्रवेश मुहूर्त का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।

4. नवीन गृह मुहूर्त का वर्णन कीजिए।

इकाई.3 विविध मुहूर्त विचार

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 विविध मुहूर्त विचार
3.3.1विवाह मुहूर्त
3.3.2 वधूप्रवेश मुहूर्त
3.3.3 द्विरागमन मुहूर्त
3.3.4 मैत्री-सन्धान मुहूर्त
3.3.5 विपणि-करण मुहूर्त्त दुकान खोलने का मुहूर्त
3.3.6 उन्नत-व्यापारारंभ-मुहूर्त
3.3.7 भूमि-क्रय- मुहूर्त
3.3.8 मन्दिर निर्माणारंभ मुहूर्त
3.3.9 जैन-मन्दिर-विहारादि निर्माण मुहूर्त
3.3.10 नौकरी आरम्भ मुहूर्त
3.3.11धन संग्रह मुहूर्त
3.312 सम्पत्ति (भूमि) लेन-देन मुहूर्त
3.3.13 हल जोतने का मुहूर्त
3.3.14 बीज बोने का मुहूर्त
3.3.15 भट्ठा (ईंट पकाने) में अग्नि देने मुहूर्त
3.3.16 व्यापारारम्भ मुहूर्त
3.3.17 उद्घाटन (Opening Ceremony)मुहूर्त
3.3.18 गृह निर्माणारम्भमुहूर्त
3.3.19 भूमिशयन विचार मुहूर्त
3.3.20 द्वार स्थापना मुहूर्त
3.3.21 गृहप्रवेश विचार मुहूर्त
3.4 सारांश
3.5 अभ्यासप्रश्नों का उत्तर
3.6 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
3.7 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई खण्ड दो मुहूर्त विचारकी तृतीय इकाई विविध मुहूर्त विचार नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। मुहूर्त एक विशेष समय अवधि को कहते हैं। जिसे किसी शुभ कार्य को शुरू करने के लिए उपयुक्त माना जाता है। यह ज्योतिष के सिद्धांतों के अनुसार निर्धारित किया जाता है और इसमें तिथि, नक्षत्र, वार, करण, योग, लग्न, मास, संक्रांति, और ग्रहण जैसे कारकों को शामिल किया जाता है। भारतीय सनातन परम्परा में प्रत्येक कार्य को करने के लिये एक निश्चित वा शुभ समय का मुहूर्त दिया गया है जिस कारण से हम जो भी कार्य कर रहें है उसमे हमे सफलता प्राप्त हो इसी को ध्यान में रखकर इस इकाई का निर्माण किया जा रहा है। हमे आशा है कि विद्यार्थियों को इससे लाभ प्राप्त होगा।

3.2 उद्देश्य

- इस इकाई में आप मुहूर्त क्या है, इसे जान सकेंगे
- विवाह के शुभ मुहूर्तों को आप सरल रूप में जान सकेंगे
- विवाह में गुरु-शुक्रादि दोष को समझ पायेंगे
- इसके अलावा अन्य मुहूर्तों का अध्ययन इस इकाई में कर सकेंगे

3.3 विविध मुहूर्त विचार

प्रिय शिक्षार्थियों पूर्व की इकाई में आपने मुहूर्त का अर्थ,मुहूर्त की परिभाषा एवं आवश्यकता के विषय में विस्तार पूर्वक अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में हम अन्य विविध मुहूर्तोंपर विचार करेंगे।

3.3.1विवाह मुहूर्त—

मूल, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, स्वाति, मघा, रोहिणी, इन नक्षत्रों में ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन, वैशाख, मार्गशीर्ष, आषाढ़, इन महीनों में विवाह करना शुभ है। विवाह में कन्या के लिए गुरूबल वर के लिए सूर्यबल और दोनों के लिए चन्द्रबल का विचार करना चाहिए। प्रत्येक पंचांग में विवाह मुहूर्त लिखे जाते है। इनमें शुभ सूचक खड़ी रेखाएँ और अशुभ सूचक टेढ़ी रेखाएँ होती है। ज्योतिष में दस दोष बताये गये है। जिस विवाह के मुहूर्त में जितने दोष नहीं होते है, उतनी खड़ी रेखाएँ होती है और दोषसूचक टेढ़ी रेखाएँ मानी जाती है। सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त दस रेखाओं का होता है। मध्यम सात आठ रेखाओं का और जघन्य पाँच रेखाओं का होता है। इससे कम रेखाओं के मुहूर्त को निन्द्य कहते है।

विवाह में गुरूबल विचार—

वृहस्पति कन्या की राशि से नवम पंचम, एकादश, द्वितीय और सप्तम राशि में शुभ, दशम, तृतीय षष्ठ और प्रथम राशि में दान देने से शुभ और चतुर्थ, अष्टम, एवं द्वादश राशि में अशुभ होता है।

विवाह में चन्द्रबल विचार—

चन्द्रमा वर और कन्या की राशि में तीसरा छठा, सातवों, दसवाँ, ग्यारहवाँ शुभ पहला, दूसरा, पॉचवों, नौवाँ दान देने से शुभ और चौथा, आठवाँ, बारहवाँ अशुभ होता है। विवाह में अन्धादि लग्न व उनका फल दिन में तुला और वृश्चिक राशि में तुला और मकर बधिर है तथा दिन में सिंह, मेष, वृष और रात्रि में कन्या, मिथुन, कर्क अन्ध संज्ञक है।

दिन में कुम्भ और रात्रि में मीन लग्न पंगु होते है। किसी- किसी आचार्य के मत से धनु, तुला एवं वृश्चिक ये अपराह्न में बधिर है। मिथुन, कर्क, कन्या ये लग्न रात्रि में अन्धे होते हैं। सिंह, मेष, एवं वृषलग्न ये दिन में अन्धे है और मकर, कुम्भ, मीन ये लग्न प्रातः काल दरिद्र दिवान्ध लग्न में हो तो कन्या विधवा, रात्रान्ध लग्न में हो तो सन्तति भरण, पंगु में हो तो धन नाश होता है।

विवाह लग्न विचार—

विवाह के शुभ लग्न तुला, मिथुन, कन्या, वृष व धनु है। अन्य लग्न मध्यम होते है।

लग्न शुद्धि —

लग्न से १२ वें शनि, दसवें मंगल तीसरे शुक्र लग्न में चन्द्रमा और क्रूरग्रह अच्छे नहीं होते लग्नेश शुक्र - चन्द्रमा छठें और आठवें में शुभ नहीं होता है और सातवें में कोई भी ग्रह शुभनहीं होता है।

ग्रहों का बल—

प्रथम, चौथे, पॉचवें, नौवें, दसवें स्थान में स्थित वृहस्पति सभी दोषों को नष्ट करता है। सूर्य ग्यारहवें स्थान में स्थित तथा चन्द्रमा सर्वोत्तम लग्न में स्थित नवमांश दोषों को नष्ट करता है। बुध लग्न, चौथे, पाँचवें, नौवें और दसवें स्थान में हो तो सौ दोषों को दूर करता है। यदि शुक्र इन्हीं स्थानों में वृहस्पति स्थित हो तो एक लाख दोषों को दूर करता है। लग्न का स्वामी अथवा नवमांश का स्वामी यदि लग्न, चौथे, दसवें, ग्यारहवें स्थान में स्थित हो तो अनेक दोषों को शीघ्र ही भस्म कर देता है।

विवाह से सम्बन्धित विभिन्न मुहूर्त—

वर वरण मुहूर्त्त—

वरवृत्तिं शुभे काले गीतवाद्यादिभिर्यतः ।
ध्रुवभे कृतिका पूर्वा कुर्याद्वापि विवाहभे ।।
उपवीतं फलं पुष्पं वसांसि विविधानि च ।
देयं वराय वरणे कन्याभ्राता द्विजेन वा ।।

शुभ मुहूर्त में गीत वाद्य से युक्त होकर ध्रुवसंज्ञक कृत्तिका, तीनों पूर्वा और विवाह में कहे हुए नक्षत्रों में, यज्ञोपवीत, फल- पुष्प तथा अनेक प्रकार के वस्त्र, रत्न आदि से युक्त होकर कन्या का भाई या ब्राह्मण वर का वरण तिलक करना चाहिए।

कन्या वरण मुहूर्त्त—

पूर्वात्रय श्रवण मित्रभ वैश्वदे हौताशवासवसमीरणदैवतेषु ।
द्राक्षाफलेक्षु कुसुमाक्षतपूर्णपाणिरश्रान्तशान्तहृदयो वरयेत्कुमारीम् ।।

तीनों पूर्व, श्रवण, अनुराधा, उत्तराषाढ़ा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, स्वाति और विशाखा इन नक्षत्रों में पुष्प, ऋतुफल, अक्षतादि से पूर्ण अंजलिबद्ध होकर शान्ति पूर्वक कुमारी (कन्या) का वरण करना शुभ

वर्जित सूर्य—

अष्टमे च चतुर्थे च द्वादशे च दिवाकरे । विवाहितो वरो मृत्युं प्राप्नोत्यत्र न संशयः ।।

वर की राशि से आठवें, चौथे या बारहवें सूर्य में विवाह किया जाय तो निःसन्देह वर की मृत्यु होती है।

सामान्य सूर्य—

एकादशस्तृतीयो वा षष्ठश्च दशमोऽपि वा। वरस्य शुभदो नित्यं विवाहे दिननायकः ।।

ग्यारहवें, तीसरे, छठें और दसवें सूर्य विवाह में वर के लिए बहुत शुभ हैं।

सूर्य परिहार—

गर्ग, अंगिरा, गौतम, कश्यप और पाराशर आदि मुनियों की आज्ञा है कि दूसरे, पाँचवें और नवें स्थान के सूर्य तेरह वर्ष की अवस्था के बाद शुभ हो जाते है। अतः इसके पश्चात् विवाहादि शुभकार्य किये जा सकते है तथा सुख समृद्धि प्राप्त होती है।

दक्षिणात्य पञ्चबाण दोष—

लग्नेनाद्या याततिथ्योऽङ्कतष्टाः । शेषे नाग द्व्यब्धितर्केन्दुसंख्ये ।।

रोगो वह्नी राजचौरो च मृत्यु । र्बाणश्चायं दाक्षिणात्य प्रसिद्धः ।।

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से लेकर जितनी तिथियों बीत गई हो, उस तिथि संख्या में विवाह की लग्न संख्या को जोड़कर ९ का भाग देनेसे यदि ८ शेष बचे तो रोग, २ शेष बचे तो अग्नि, ४ शेष बचे तो राज, ६ शेष बचे तो चौर और एक शेष बचे ता मृत्युबाण अन्य देशों में इसे नहीं देखना चाहिए। होता है। यह दक्षिणात्य में प्रसिद्ध है।

बाण दोष परिहार—

रात्री चौररूजौ दिवा नरपतिर्वह्निः सदा सन्ध्ययो ।

मृत्युश्चाथ शनौ नृपो विदि मृतिभौमेऽग्निचौरो रवी ।।

रोगोऽथ व्रतगेहगोपनृपसेवायानपाणिग्रहे । वर्ज्याश्च क्रमतो बुधै रूगनलक्ष्मापाल चौरा मृतिः ।।

१. रात में चौर रोग बाण, दिन में राजबाण, सर्वदा अग्निबाण और दोनों सन्ध्याओं में मृत्युबाण शुभ नहीं होता है।

२. शनिवार को राजबाण, बुधवार को मृत्युबाण, मंगलवार को अग्नि और चौरबाण, रविवार को रोगबाण हो तो कोई कार्य नहीं करना चाहिए।

३. उपनयन में रोगबाण, गृहच्छादन में अग्निबाण, नृपसेवा में राजबाण, यात्रा में चौरबाण और विवाह में मृत्युबाण को त्याग देना चाहिए।

3.3.2 वधूप्रवेश मुहूर्त्त—

विवाह के पश्चात् वधू का प्रथम बार पतिगृह में प्रवेश (डोली उतरना) वधूप्रवेश कहलाता है। सामान्यतः विवाह से अगले दिन ही वधूप्रवेश लोक में होता हुआ देखा जाता है। लेकिन जब तुरन्त प्रवेश की प्रथा न हो तो विवाह के दिन से १६ दिनों के भीतर सम दिनों में या ५,७,९ दिनों में वधू प्रवेश, शुभ वेला में शकुनादि विचार कर मांगलिक गीत वाद्यादि ध्वनि के साथ करवाना चाहिये। १६ दिनों के भीतर गुरू शुक्रास्तादि विचार भी नहीं होता है। १६ दिन व्यतीत हो जाने पर एक मास के अन्दर विषम दिनों में तथा १ वर्ष के भीतर विषम महीनों में पूर्ववत् तिथि वारादि शुद्धि देखकर वधूप्रवेश कहना चाहिये। पाँच वर्ष के पश्चात् यदि वधू प्रवेश हो तो स्वेच्छा से साधारण दिन शुद्धि देखकर वधूप्रवेश कराया जाना चाहिये।

वधूप्रवेश मुहूर्त्त विचार—

समाद्रिपञ्चाङ्ङ्कदिने विवाहाद्वधूप्रवेशोऽष्टिदिनान्तराले ।

शुभः परस्ताद्विषमाब्दमासदिनेऽक्षवर्षात्परतो यथेष्टम् ।।

विवाह के दिन से १६ दिन के भीतर सम (२,४.६,८,१०,१२,१४,१६) दिनों में और विषम में ५.७.९ वें दिनों में वधूप्रवेश शुभ होता है। यदि १६ दिन के भीतर नहीं हो सके तो उसके बाद प्रथम मास के विषम (१७,१९,२१,२३,२५,२७,२९ वें) दिनों में एक मास के बाद विषम

३.५,७.९.११ वें मासों में और एक वर्ष के बाद विषम वर्ष ३.५ वर्षों में वधूप्रवेश शुभ होता है। परन्तु ५वें वर्ष के बाद वर्ष मास का विचार नहीं होता है अर्थात् ५वें वर्ष के पश्चात् कभी भी शुभ मुहूर्त देखकर वधू प्रवेश कराना चाहिये।

विशेष- विवाह के पश्चात् प्रथम बार पति गृह में प्रवेश को वधूप्रवेश कहते हैं। वधूप्रवेश विवाह से १६ दिन के भीतर प्रत्येक विवाह मास में होती हैं, परनतु १६ दिन के भतर चैत्र- पौष-मलमास - हरिशयन का त्याग करना चाहिये।

अन्य मत में वधूप्रवेश विचार—

त्रिभवविश्वतिथिप्रभवासरान् नृपदिनेषु विहाय विवाहतः ।
अनववेश्मसु नूतनकामिनीनिशि विशेत् स्थिरभेऽथ ततः परम् ।।

विवाह संस्कार के बाद वधू का प्रथम पति के साथ पतिगृह में आना वधूप्रवेश है। विवाह का दिन शामिल करते हुए १६ दिनों के भीतर ३,११,१३,१५ वें दिन को छोड़कर अन्य दिनों में वधूप्रवेश शुभहै। वधूप्रवेश बिल्कुल नए गृह में अर्थात् जहाँ गृहप्रवेश के बाद वर के परिवारजनों ने रहना शुरू न किया हो, वहाँ न करें। वधूप्रवेश स्थिर नक्षत्रों में, रात्रि में हो तो विशेष शुभ है। वधूप्रवेश में मंगलवार, व शनिवार न हो तो (कहीं कहीं बुध भी) ध्रुव, मृदु, क्षिप्र, श्रवण, मूल, मघा, स्वाती नक्षत्र हों तो शुभ होता है।

वधूप्रवेश में नक्षत्र शुद्धि विचार—

ध्रुवक्षिप्रमृदु श्रोत्रवसुमूलमघानिले ।वधूप्रवेशः सन्नेष्टो रिक्ताराकें बुधे परेः ।।

ध्रुव - क्षिप्रं मृदु संज्ञक नक्षत्र, श्रवण, घनिष्ठा, मूल, मघा, और स्वाती इन नक्षत्रों में, रिक्ता (४.९,१४) तिथि और **मंगलवार -** रविवार को छोड़कर अन्य तिथि वारों में वधूप्रवेश होता है। अन्य आचार्य के मत से बुधवार को भी प्रवेश को वर्जित किया गया है।

ज्येष्ठे पतिज्येष्ठमथाधिके पतिं हन्त्यादिमे भर्तृगृहे वधूः शुचौ।
श्वश्रू सहस्ये श्वशुरं क्षये तनुं तातं मधो तातगृहे विवाहतः ।।

विवाह के पश्चात् प्रथम ज्येष्ठ मास में यदि स्त्री पतिगृह में रहे तो पति के ज्येष्ठ भाई को नाश करती है। यदि प्रथम मलमास में रहे तो पति को, प्रथम आषाढ़ में पतिगृह में रहे तो सास को, पौष में रहे तो श्वसुर को और प्रथम क्षयमास में रहे तो अपने को नाश करती है। इसी प्रकार विवाह के पश्चात् प्रथम चैत्र में यदि स्त्री पिता के गृह में रह जाय तो पिता को मारती है।

विशेष - इससे सिद्ध होता है कि विवाह के पश्चात् चैत्र में पिता के गृह में रह जाना, तथा ज्येष्ठ, आषाढ़ पौष, मलमास - क्षयमास में पतिगृह में रहना वधूप्रवेश यात्रा में शुभ नहीं होता है। अतः व्यावहारिक रूप में वधूप्रवेश के पश्चात् वर्जित समय को ध्यान देना आवश्यक है।

वधूप्रवेश मुहूर्त निर्णय करते समय निम्नलिखित स्थितियों का ध्यान होना आवश्यक है -

शुभ मास - वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, पौष, माघ, फाल्गुन व मार्गशीर्ष।

शुभ वार - सोम, बुध, गुरु व शुक्र ।

शुभ तिथि - 2, 3, 5, 6, 7, 8, 10, 12 (शुक्लपक्ष)।

शुभ नक्षत्र - रोहिणी, मृगशिरा, मघा, उफा., हस्त, स्वाति, अनुराधा, मूला, उषा., उभा., रेवती।

शुभ लग्न सप्तम में सभी ग्रह अनिष्टकारक कहे गए हैं। लग्न में 3, 6, 7, 9 व 12वीं राशि का नवांश श्रेष्ठ कहा गया है। जब जन्म राशि जन्म लग्न से आठवीं या बारहवीं न हो।

विवाह लग्न से सूर्यादि ग्रहों के शुभ भाव अधोलिखित हैं :

सूर्य-3, 6, 10, 11, 12वें भाव में। चन्द्र 2, 3, 11वें भाव में।
मंगल 3, 6, 11वें भाव में।
बुध व गुरु - 1, 2, 3, 4, 6, 9, 10, 11वें भाव में।
शुक्र 1, 2, 4, 5, 9, 10, 11वें भाव में।
शनि, राहु-केतु - 3, 6, 8, 11वें भाव में।

टिप्पणी - वधू प्रवेश नवीन गृह में सर्वथा त्याज्य है। विषम दिनों, विषम मासों या विषम वर्षों में वर्जित है। इसी तरह भद्रा, व्यतिपात, गुरु- शुक्रास्त, क्षीण चन्द्र भी वर्जित है।

3.3.3 द्विरागमन मुहूर्त्त—

चरेदथौजहायने घटालिमेषगे रवौ रवीज्यशुद्धियोगतः शुभग्रहस्य वासरे।
नृयुग्ममीनकन्यकातुलावृषे विलग्नके द्विरागमं लघुध्रुवे चरेस्रपे मृदूडुनि ।।

विवाह से एक वर्ष के पश्चात् विषम ३,५ वर्षों में सूर्य, कुम्भ, वृश्चिक और मेष राशि में हो तो अर्थात् सौर फाल्गुन, अग्रहण वैशाख मासों में, कन्या के लिये सूर्य – गुरू की शुद्धि रहने पर शुभग्रहों (चन्द्र, बुध, गुरू एवं शुक्र) के दिन में, मिथुन मीन कन्या तुला और वृष लग्न में, लघु संज्ञक ध्रुवसंज्ञक, चरसंज्ञक, मूल और मृदुसंज्ञक नक्षत्रों में द्विरागमन (विलम्बवधू प्रवेश के लिये पितृगृह से पतिगृह का यात्रा) कराना चाहिये।

द्विरागमन वधूप्रवेश का ही अंग है। वधूप्रवेश के ३ भेद हैं—

१. नूतन वधूप्रवेश
२. सामान्य वधूप्रवेश
३. विलम्बित वधूप्रवेश

विवाह के बाद १६ दिन के भीतर पिता के गृह से पतिगृह में प्रवेश को नूतन वधू प्रवेश कहते है।विवाह के पश्चात् एक वर्ष के भीतर मार्गशीर्ष, फाल्गुन, वैशाख क्रम से पतिगृह में प्रवेश को सामान्य वधूप्रवेश कहते हैं। इसमें सम विषम मासों दिनों का विचार एवं शुक्र का विचार नहीं होता है। जैसे -

नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशने परिधानके । वधूप्रवेशे मांगल्ये न मौयं गुरू - शुक्रयोः ।।

इस वचनानुसार सामान्य वधूप्रवेश में गुरू शुक्र के मौढ्यद्य अस्तादि का विचार आवश्यक नहीं होता हैं। व्यवहार में लोग इसे भी प्रथम वर्षीय द्विरागमन कहते हैं। इसमें पिताके गृह से चन्द्रतारानुकूलित यात्रा विचार सहित प्रस्थान के साथ पतिगृह में प्रवेश का मुहूर्त देखा जाता है।

विवाह के पश्चात् तृतीय-पंचम विषम वर्ष में पिता के गृह से पतिगृह के लिये स्त्री के प्रस्थान को विलम्बित वधूप्रवेश कहा जाता है। इसमें गुरू शुक्र के अस्तादि में शुक्र विचार की प्रधानता होती है। सम्मुख दक्षिण शुक्र का विचार प्रधान होता है। आवश्यक पक्ष में शुक्रान्ध नक्षत्र में यात्रा मुहूर्त देखकर पतिगृह में द्विरागमन होता है। शुक्रान्ध नक्षत्र रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, और मृगशिरा ये ६ नक्षत्र है। इसमें मार्गशीर्ष, फाल्गुन, वैशाख इन तीन मासों में शुक्ल पक्ष, कृष्णपक्ष की पंचमी तक विहित तिथि वार नक्षत्र आदि विचार आवश्यक होता है।

दूसरे शब्दों में, ससुराल से पिता के घर में जाकर फिर से पति- परमेश्वर के घर में आने का नाम द्विरागमन है। यह भी शुभ समय में करने श्रेष्ठ होता है। निम्नलिखित वार, तिथि, नक्षत्र एवं लग्न आदि में द्विरागमन शुभ होता है।

शुभ वर्ष- 1, 3, 5, 7, 9, 11, 13 15 व 17

शुभ मास- वैशाख, मार्गशीर्ष एवं फाल्गुन।
शुभ वार- रवि, सोम, बुध, गुरु एवं शुक्र।
शुभ तिथि - 1, 2, 3, 5, 7, 8, 10, 11, 13 (शुक्लपक्ष)।
शुभ नक्षत्र- रोहिणी, पुनर्वसु, मृगशिरा, अनुराधा, धनिष्ठा, श्रवण, चित्रा, स्वाति, रेवती, पुष्य, चित्रा,पूर्वाषाढा, अश्विनी, मूला, हस्त व उत्तरात्रय।
शुभ लग्न- 3, 4, 7, 9, 10 व 12वीं राशि।
टिप्पणी- शनि और मंगलवार, 4, 6, 9, 12, 14, 30 तिथियां त्याज्य हैं।

प्रथम समागम मुहर्त—

अधोलिखित वार, तिथि, नक्षत्र एवं लग्न आदि में वर- वधू का परस्पर प्रथम समागम करना शुभहोता है।
शुभ वार - रवि, सोम, बुध, गुरु एवं शुक्र।

द्विरागमन में शुक्र विचार-

प्रथमतया यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि कुछ विद्वानों के मत में वधूप्रवेश एवं द्विरागमन एक ही है, लेकिन ऐसा नहीं है। प्रथम बार पति गृह से पितृगृह में आकर पुनः पति गृह में वधू का आगमन 'द्विरागमन' कहा जाता है। द्विरागमन में ही शुक्र दोष का विचार किया जाता है, वधूप्रवेश में नहीं। द्विरागमन के लिए मुहूर्तचिन्तामणि में कहा गया है- "चरेदथौजहायने...." अर्थात् विषम वर्षों में ही द्विरागमन करना चाहिये। इसके लिए भी कोई सीमा नहीं है। जब कभी भी विषम वर्ष में द्वितीय वधूप्रवेश होगा उसे द्विरागमन कहेंगे। यह स्पष्ट मत है।

शुक्र विचार—

गुर्विण्या बालकेनापि नववध्वा द्विरागमे।
पदमेकं न गन्तव्यं शुक्रे सम्मुखदक्षिणे॥
पौष्णादिवह्निभाद्यंघ्रि यावत्तिष्ठति चन्द्रमा।
तावच्छुक्रो भवेदन्धः सम्मुखे दक्षिणे हितम्॥

गर्भिणी और बालक के यात्रा में तथा वधू के द्विरागमन में सम्मुख और दक्षिण शुक्र त्याज्य है। रेवती से कृत्तिका प्रथम चरणपर्यन्त, मतांतर से मगशिरा नक्षत्र पर्यन्त जब तक चन्द्रमा रहते हैं तब तक शुक्र अन्धा होता है। उपरोक्त कार्यों में अन्ध शुक्र सम्मुख और दाहिने शुभकर होता है।

द्विरागमन में सम्मुख शुक्र दोष—

दैत्येज्यो ह्यभिमुखदक्षिणे यदि स्याद्छेयुर्न हि शिशुगर्भिणीनवोढाः।
बालश्चेद्व्रजति विपद्यते नवोढा चेद्वन्ध्या भवति च गभिर्णी त्वगर्भा॥

शुक्र यदि सम्मुख और दाहिने हो तो बालक-बालिका, नवविवाहिता, और गर्भवती स्त्री को यात्रा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि शुक्र के सम्मुख और दाहिने रहने पर यदि बालक जाय तो बालक की मृत्यु हो जाती है। नवविवाहिता (नवोढ़ा) वन्ध्या हो जाती है और गर्भिणी का गर्भनष्ट हो जाता है। इससे सिद्ध हो जाता है कि शुक्र के दक्षिण सम्मुख रहने पर किसी भी स्त्री का द्विरागमन शुभ नहीं है।

विशेष - जब शुक्र सूर्य से आगे रहता है तो सन्ध्या में पश्चिम में उदित होता है उस समय पश्चिम की यात्रा में शुक्र सम्मुख और दक्षिण की यात्रा में दक्षिण होता है। अतः पूर्व उत्तर की यात्रा में पृष्ठ एवं वाम शुक्र होते हैं। इसी प्रकार जब शुक्र, सूर्य से पीछे रहता है, तो प्रातःकाल

पूरब में उदित रहता है उस समय पूर्व उत्तर की यात्रा में शुक्र सम्मुख दाहिना अशुभ होता है, किन्तु पश्चिम दक्षिण की यात्रा में शुक्र पृष्ठ - वाम होने से शुभ है। यह शुक्र का विचार तृतीयादि विषम वर्ष के द्विरागमन, नवविवाहिता तथा गर्भिणी की यात्रा में करना आवश्यक है।

3.3.4 मैत्री-सन्धान मुहूर्त—

मुकदमा, बाद-विवाद, शत्रुतामा व्यावहारिक तौर पर हुए मनमुटाव के समाधान या परस्पर सन्धि करने के लिये निम्न काल-शुद्धि वानछनीय है।

तिथि-२, ३, ५, ६, ८, १०, १२, १३ (शु) (८, १२ विशेष शुम)।

बार-चं. बु.गु. शु. ।

नक्षत्र- पु. म. पूफा अनु. ।

लग्न गुरु शुक्रादि शुभ ग्रहों से युक्त वा दृष्ट लग्न ।

विशेष-भद्रा, कुयोग, निर्बल चन्द्र को त्यागकर अन्य उपयुक्त काळ तथा तैतिल करण में राजी नामा शुभद होता है।

3.3.5 विपणि-करण मुहूर्त्त दुकान खोलने का मुहूर्त—

सीमित पैमाने पर व्यापार एवं दुकान आदि शुरु करने का मुहूर्त

तिथि-२, ३, ५, ७, १०, १२, १३ (शु.) ।

बार-सू. चं. बु. गु. शु. श. ।

नक्षत्र-अश्वि. रो. मृ. पु. उत्तरा. ३, इ. चि. स्वा. अनु. मू. श्र. अभि. घ. पूभा. रे.।

लग्न- कुंभराशि के विना ल्मन राशियाँ श्रेष्ठ हैं। परन्तु चन्द्र-बुध लग्न में ८, १२ वां स्थान शुद्ध तथा २, १०, ११ बें शुभ ग्रह हों।

बिशेष-कार्यारम्भ में भूरुदन (परिचय-प्रकाण्डोक्त), गुरु-शुक्रास्त, पौष, चातु-र्मास्य, व्याघात, भद्रा, म्यतीपात, वैधृति तथा अशक्त चन्द्र त्याज्य है।

3.3.6 उन्नत-व्यापारारंभ-मुहूर्त्त—

यह काल विशाल-पैमाने पर व्यापार करने में प्रयुक्त करना चाहिये ।

मास- मेष, वृष. मिथुन, तुला, वृश्चिक, मकर, एवं कुंभादि सौरमास ।

तिथि-२, ३, ५, ७, ११, १३ (शु.)।

वार-बु. गु. शु. ।

नक्षत्र- पु. उत्तरा. ३, इ. चि. ।

विशेष - लग्न-शुद्धि तथा अन्य शुभाशुभ विचार 'विपणिकरण-मुहूर्त' के सदृश हो ज्ञातव्य है। कर्त्ता की दशान्तर्दशा भी उत्तम होनी चाहिये ।

3.3.7 भूमि-क्रय-मुहूर्त्त—

निम्नलिखित काल का विचार करें-

तिथि- कृष्णा १ तथा शुक्ला ५, ६, १०, ११, १५ ।

बार-गु० शु० ।

नक्षत्र - मृ. पुन. श्ले. म. वि. अनु. पूर्वा ३. मृ. रे.।

3.3.8 मन्दिर निर्माणारंभ मुहूर्त्त—

प्रतिष्ठाध्य देवता की स्थापना में विहित काल हो उस देवता के मन्दिर-निर्माण में प्रयोज्य है-

यस्य देवस्य यः कालः प्रतिष्ठाध्वजरोपणे ।

गर्तादूरशिलान्यासे शुभदस्तस्य पूजितः ॥" - देवीपुराण।

तथापि, सामान्यतः निम्नलिखित मुहूर्त में भी मन्दिर बनवाना शुभावह है-

मास-चैत्र (मेषार्क), वैशाख, ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन।

तिथि (शुक्ला) -२, ३, ५, ७. ११ १२, १३।

बार-सू. चं. बु. गु. शु.।

नक्षत्र- अश्वि. रो. मृ. आ. पुन. पृ. उत्तरा. ३. ह. चि. वि. श्र. ध.।

विशेष-मास विचार के अतिरिक्त गृहारंभोक्त समस्त तत्त्वों को मन्दिर-निर्माण में भी तथैव प्रहण किया है। यदाह-

"गृहेषु यो विधिः प्रोक्तो विनिवेशप्रवेशयोः ।

स एव विदुषा कार्यो देवतायतनेष्वपि ॥" - कृत्यचिन्तामणि।

3.3.9 जैन-मन्दिर-विहारादि निर्माण मुहूर्त्त—

बौद्ध विहार, भिक्षुगृह, मठ, गिरजाघर तथा जैन स्थानकादि निर्माणारंभ में संयोज्य काल शुद्धि-

तिथि- शु.), २, ३, ५, ७, १०, ११, १२, १३, १५।

बार-चं. बु. गु. शु.।

चन्द्रमा व शुक्र के बलवान् रहने पर, शुभ लग्नों में लग्न शुद्धिपूर्वक खरीदना या बेचना शुभ होता है।

3.3.10 नौकरी आरम्भ मुहूर्त्त—

क्षिप्र व मृदु संज्ञक नक्षत्रों में, बुध, गुरु, शुक्र व रविवार में, सूर्य व मंगल के दशमस्थ होने पर, चन्द्रबल शुद्धि रहने से स्वामी व सेवक का योनि गणादि मिलान करके शुभ मुहूर्त (वेला) में वैतनिक कार्य का आरम्भ (Service Joining) करनी चाहिए।

3.3.11 धन संग्रह मुहूर्त्त—

आर्द्रा, श्रवण, पुष्य, मृगशिरा, अनुराधा, धनिष्ठा, शतभिषा तीनों उत्तरा, हस्त में, त्रिपुष्कर, द्विपुष्कर या पूर्वोक्त शुभ योगों में रिक्तादि तिथि में चन्द्र शुद्धिपूर्वक धन संग्रह करना चाहिए।

3.3.12 सम्पत्ति (भूमि) लेन-देन मुहूर्त्त—

नन्दा, पूर्णा, जया तिथि में, मृगशिरा, पुनर्वसु, श्लेषा, मघा, पू. फा., विशाखा, अनुराधा, मूल, पूर्वाषाढ, उ. भाद्र नक्षत्रों में, गुरु शुक्रवार में पूर्ववत् शुभ समय देखकर सम्पत्ति का सौदा करना चाहिये।

3.3.13 हल जोतने का मुहूर्त—

चित्रा, रेवती, अनुराधा, रोहिणी, हस्त, तीनों उत्तरा, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मघा, मृगशिरा नक्षत्रों में, रिक्ता, अमा., षष्ठी व अष्टमी तिथियों के अतिरिक्त शुभ वारों में प्रातःकाल हल जोतना श्रेष्ठ है।

3.3.14 बीज बोने का मुहूर्त्त—

विशाखा, पूर्वा भाद्रपद, मूल, रोहिणी, शतभिषा, उत्तरा फाल्गुनी में, शुभ तिथि व शुभ ग्रह के वार में धान्यरोपण करना श्रेष्ठ है।

3.3.15 भट्ठा (ईंट पकाने) में अग्नि देने का मुहूर्त्त—

मंगल, रवि, शनिवार में,

सायंकाल में, शुभ चौघड़िया देखकर ईंट के भट्ठे में अग्नि देनी चाहिए। अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, तीनों उत्तरा, हस्त, ज्येष्ठा, श्रवण, रेवती नक्षत्रों में, तिथि शुद्धि में, स्वामी का चन्द्र बल देखकर मुहूर्त बताना चाहिए।

3.3.16 व्यापारारम्भ मुहूर्त्त—

रिक्ता व अमावस्या रहित तिथियों में, शुभ वार में, सर्वार्थसिद्धि आदि योगों में, हस्त, चित्रा, रोहिणी, रेवती, तीनों उत्तरा, पुष्य, अभिजित्, अश्विनी नक्षत्रों में, चन्द्रबल देखकर दुकान या व्यवसाय का आरम्भकरना चाहिए।

3.3.17 उद्घाटन (Opening Ceremony) मुहूर्त्त—

व्यापारारम्भ मुहूर्त में, शुक्ल पक्ष में, शुभ वारों में, पूर्वान्ह में, स्थिर लग्न में. लग्न शुद्धि व चन्द्रबल प्रधान होने पर, नए स्थान ऑफिस, दुकान आदि का उद्घाटन करना चाहिए।

3.3.18 गृह निर्माणारम्भ—

वैशाख, श्रावण, मार्गशीर्ष, माघ, फाल्गुन मासों में 3.6.9 राशियों की संक्रान्ति को छोड़कर गृहारम्भ करना चाहिए। कार्तिक मास निर्माणारम्भ के लिए मध्यम है।

1.4.9.14.30 तिथियों को छोड़कर, कृष्ण पक्ष प्रतिपदा सहित शेष तिथियों में, रवि मंगलवार को छोड़कर शेष वारों में, जहां तक हो सके शुक्ल पक्ष में, अग्नि, मृत्यु, बाणादि की शुद्धि देखकर व भूमिशयन न होने पर गृहनिर्माणारम्भ करें।

वेधरहित चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, स्वाती, पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी, धनिष्ठा, हस्त, पुनर्वसु, शतभिषा, नक्षत्रों में पूर्ववत् लग्न शुद्धि देखकर गृहारम्म करना चाहिए। चर लग्न को गृहारम्भ में वर्जित करना चाहिए।

3.3.19 भूमिशयन विचार—

सूर्य के नक्षत्र से चन्द्रमा का नक्षत्र यदि 5.7.9.12.19.26वाँ पड़े तो भूमि को सुप्त माना जाता है। इन नक्षत्रों में बावडी तालाब या गृह निर्माणादि के लिए भूमि का खोदना वर्जित है।

गृहारम्भ के नक्षत्रानुसार वृष वास्तु आदि चक्रों से भी शुभाशुभ परीक्षा की जाती है।

3.3.20 द्वार स्थापना मुहूर्त—

यदि चौड़ाई में ही दरवाजा लगाना हो तो कोने में नहीं लगाना चाहिए। यह बात मुख्य प्रवेश द्वार, जिससे घुसते ही घर में पहुँच जाएँ, उस दरवाजे पर लागू होती है।

द्वारमायामतः कार्य पुत्रपौत्रधनप्रदम् । विस्तार कोणंद्वारं यत् दुःखशोकभयप्रदम्।।

जिस दिन दरवाजा, चौखट, चढ़ानी हो, उस दिन के नक्षत्र को पंचांग से देख लें। वह नक्षत्र सूर्य के नक्षत्र से कितनी संख्या पर है, तद्नुसर फल जानकर, शुभ नक्षत्रों में (पंचकरहित) दरवाजा लगाएँ।

सूर्य नक्षत्र से पहले 4 नक्षत्र धनागम

सूर्य नक्षत्र से पहले 8 नक्षत्र उद्वेग

सूर्य नक्षत्र से पहले 6 नक्षत्र सुख

सूर्य नक्षत्र से पहले 3 नक्षत्रमृत्यु

सूर्य नक्षत्र से पहले 4 नक्षत्र सुख

अश्विनी, तीनों उत्तरा, हस्त, पुष्य, श्रवण, मृगशिरा, रोहिणी, चित्रा, स्वाती व रेवती नक्षत्रों में, स्थिर लग्न व शुभ वारों में द्वार स्थापना (चौखट किवाड़) आदि करनी चाहिए।

ध्रुवभे शुभवारे च स्थिरलग्ने शुभे तिथौ।
द्वारं स्थाप्यं मृगे चित्रं वर्गसम्पद् विवर्धनः ॥ (बृहस्पति)

3.3.21 गृहप्रवेश विचार—

गृहप्रवेश तीन प्रकार का होता है। अपूर्व, सपूर्व व द्वन्द्व प्रवेश, ये तीन भेद हैं। नए घर में प्रवेश करना अपूर्व प्रवेश होता है। यात्रादि के बाद घर में प्रवेश करना 'सपूर्व' कहलाता है। जीर्णोद्धार किए गए मकान में प्रवेश का नाम द्वन्द्व प्रवेश है। इनमें मुख्यतः अपूर्व प्रवेश का विचार यहाँ विशेष अभीष्ट है।

माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ मास में प्रवेश उत्तम व कार्तिक, मार्गशीर्ष में मध्यम होता है।

माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभनः।
प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्यकार्तिकमासयोः ।। (नारद)

कृष्ण पक्ष में दशमी तिथि तक एवं शुक्ल पक्ष में चन्द्रोदयानन्तर ही प्रवेश करना चाहिए। जीर्णोद्धार वाले गृह प्रवेश में दक्षिणायन मास शुभ हैं। सामान्यतः

गुरु-शुक्रास्त का विचार जीर्णोद्धार किये या पुराने या किराये के मकान को छोड़कर सर्वत्र करना चाहिए।

तीनों उत्तरा, अनुराधा, रोहिणी, मृगशिरा, चित्रा, रेवती, धनिष्ठा, शतभिषा पुष्य, अश्विनी, हस्त में प्रवेश शुभ है। तिथि व वार शुभ होने पर स्थिर लग्न में शद्धि देखकर चन्द्रमा व तारा की अनुकूलता रहने पर गृह प्रवेश शुभ होता है।

प्रवेश के समय शुक्र पीछे व सूर्य बाएँ रहे तो शुभ होता है। पह के विषय में यात्रा विचार के प्रसंग में बताएँगे। वाम रवि का ज्ञान यहाँ प्रस्तुत है.

प्रवेश लग्न से 5.6.7.8.9 भावों में सर्य रहने से दक्षिणाभिमुख मकान में प्रवेश करते समय वाम सूर्य होता है। इसी प्रकार 8.9.10.11.12 भावों में प्रवेश समय सूर्य हो तो पूर्वाभिमुख मकान में, 2.3.4.5.6 भावों में सूर्य हो से पश्चिमाभिमुख मकान में एवं 11.12.1.2.3 स्थानों में सूर्य रहने से उत्तराभिमुख मकान में प्रवेश करने पर 'वाम सूर्य' रहता है।

अष्टमात् पंचमात् वित्ताल्लाभात् पंचस्थिते रवौ।
पूर्वद्वारादिके गेहे सूर्यो वामः प्रकीर्त्तितः ॥

गृहप्रवेश में कुम्भ चक्र विचार-सूर्य नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गिन। तद्नुसार फल जानें-

सूर्य नक्षत्र से 5 नक्षत्र में अशुभ, सूर्य नक्षत्र से 6-13 नक्षत्र में शुभ, सूर्य नक्षत्र से 14-21 में नक्षत्र में अशुभ, सूर्य नक्षत्र से 22-27 नक्षत्र में शुमा गृहारम्भ में वृष चक्र (साभिजित् गणना) एवं गृह प्रवेश में कुम्भ चक्र का विचार करना चाहिए।

मासिक राहु विचार-सूर्य की राशि जिस दिशा में हो तो उसी दिशा में सौर मास में राहु रहता है। राशियों की दिशा का विचार पहले बता चुके हैं। गृह प्रवेश में राहु बाएँ व पीछे अच्छा होता है। इसका विचार विवाह के बाद तीसरी बार पतिगृह आने परे व गृहप्रवेश में करना चाहिए। शुक्र व राहु बाएँ व पीछे तथा सूर्य बाएँ हो तो प्रवेश में शुभ है।

यद्राशिगोऽर्कः खलु तद्दिशायां,राहुः सदा तिष्ठति मासि मासि।
द्विरागमे वापि गृहप्रवेशे,राहुः प्रशस्तः किल वामपृष्ठे।

3.5 सारांश

हर कार्य को जब चाहे तब नहीं कर सकते। मुहूर्त ग्रन्थों में विभिन्न नक्षत्रों में किये जाने वाले कार्यों का विशद वर्णन है। जन्म से लेकर मरण तक किये जाने वाले सभी प्रकार के संस्कार, दैनन्दिन जीवन में किये जाने वाले सभी क्रय विक्रय यात्रा आदि सभी कार्यों के लिये उपयुक्त समय का स्वरूप मुहूर्त ग्रन्थों में विशद रूप से वर्णित है। उन सभी विषयों को जानने से पहले कार्य करने हेतु समय का विचार करने की क्या आवश्यकता है? और उसका क्या स्वरूप है? आदि प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर जानना भी आवश्यक है।तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण यानी पंचांग के विचार के अभाव में किसी व्रत, किसी मुहूर्त, किसी उत्सव एवं किसी पर्व का ज्ञान किसी भी व्यक्ति को नही हो सकता है। क्योकि कोई भी कार्य करते है तो उसका आधार तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण ही होते हैं। किसी दिन किसी नवीन कार्य का आरम्भ करते हैं तो उस दिन पंचांग का विचार कर लेते हैं क्योकि शुभ मुहूर्त में आरम्भकिया गया कार्य शुभ फल प्रदान करने वाला होता है तथा अशुभ मुहूर्त में प्रारम्भ किया गया कार्य अशुभ फल देने वाला होता है। साधारण रूप से सभी लोग शुभ फल की अभिलाषा रखते हैं जिसके कारण पंचांग का शुभाशुभ ज्ञान सभी लोगों के लिये अनिवार्य है। उसी क्रम में आप इस इकाई में कार्य के लिये अनुकूल समय, जिसे मुहूर्त नाम से जानते है, का स्वरूप एवं आवश्यकता के बारे में विभिन्न आचार्यों के वचनों के साथ अध्ययन किये है। काल निर्दोष नहीं होता है। कार्य दोष युक्त समय में सफल नहीं होता है। निर्दोष काल ही मुहूर्त कहा जाता है। अतः प्रत्येक कार्य के लिये मुहूर्त का निर्णय करना आवश्यक है। इसी प्रकार जन्मकालिक ग्रह स्थिति से जो जो अनिष्ट फल हो सकते है उन अनिष्ट फलों को भी सही समय में कार्य को प्रारम्भ करके दूर कर सकते है। इस जानकारी को भी स्पष्ट रूप से इस इकाई में हम अध्ययन किये है।

बोध प्रश्न-

1. इनमे से कौन सा लग्न विवाह के लिये शुभ होता है

क. तुला ख. मेष ग. सिह घ. मकर

2. वर की राशि से कौन से भाव का सूर्य वर्जित होता है

क. प्रथम ख. आठवां ग. दशम घ. तृतीय

3. वधुप्रवेश के कितने अंग है

क. 2 ख. 4 ग. 3 घ. 1

4. व्यापार आरम्भ करने के लिये कौन सा नक्षत्र शुभ है

क. अश्विनी ख. मूल ग. भरणी घ. हस्त

5. गृहप्रवेश कितने प्रकार का होता है

क. 2 ख. 3 ग. 4 घ. 1

3.6बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क 2. ख 3. ग 4. घ 5. ख

3.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. मुहूर्त चिंतामणी
2. अवकहडा चक्र
3. मुहूर्त कल्पद्रुम
4. मुहूर्त पारिजात

5. संस्कार विधान

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. विवाह के शुभाशुभ मुहूर्त व उसके गुण- दोषों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. किन्ही पांच मुहूर्तों का वर्णन कीजिए।

इकाई. 4 तिथि एवं नक्षत्र संज्ञा विचार

इकाई संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उदेश्य

4.3 पञ्चांग परिचय

4.3.1 तिथियों के नाम

4.3.2 तिथियों के स्वामी

4.4 तिथि वृद्धि एवं तिथि क्षय परिचय

4.4.1 तिथि वृद्धि

4.4.2 तिथि क्षय

4.5 तिथियों की नन्दादि संज्ञा

4.5.1 उदय तिथि ग्रहणम्

4.5.2 सिद्धास्तिथय

4.6 नक्षत्र परिचय

4.6.1 नक्षत्रों के नाम

4.7 नक्षत्र संज्ञा

4.7.1 नक्षत्रों का फलादेश

4.7.1 नक्षत्रों का फलादेश

4.7.2 योग और करण

4.8 सारांश

4.9 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

4.10 संदर्भित पाठ्य सामग्री

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों,

प्रस्तुत इकाई बी.ए.एस.एल चतुर्थ सेमेस्टर 'ज्योतिषशास्त्र के मूल सिद्धान्त' नामक पाठ्यक्रम से समन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है **'तिथि एवं नक्षत्र संज्ञा विचार'** जैसे कि आप लोग ज्योतिषशास्त्र के विषय में परिचित होंगे कि ज्योतिष शास्त्र क्या है, इसके अन्तर्गत किन-किन विषयों का बोध होता है । जैसे कि विदित है भारतीय मनीषियों को ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान अत्यन्त प्राचीन काल से था । यज्ञों के सम्पादन हेतु तिथि आदि निश्चित करने में इस शास्त्र का प्रयोजन मुख्य रूप से होता था । अयन चलन के क्रम का पता बराबर वैदिक ग्रंथों में मिलता है । जैसे, पुनर्वसु से मृगशिरा (ऋगवेद), मृगशिरा से रोहिणी (ऐतरेय ब्राह्मण), रोहिणी से कृत्तिका (तौत्तिरीय संहिता) कृत्तिका से भरणी (वेदाड्ग ज्योतिष) । तैत्तरिय संहिता से पता चलता है कि प्राचीन काल में वासंत विषुवद्दिन कृत्तिका नक्षत्र में पड़ता था। इसी वासंत विषुवद्दिन से वैदिक वर्ष का आरम्भ माना जाता था, पर अयन की गणना माघ मास से होती थी। इसके बाद वर्ष की गणना शारद विषुवद्दिन से आरम्भ हुई। ये दोनों प्रकार की गणनाएँ वैदिक ग्रंथों में पाई जाती हैं । वैदिक काल में कभी वासंत विषुवद्दिन मृगशिरा नक्षत्र में भी पड़ता था । इसे बाल गंगाधर तिलक ने ऋग्वेद से अनेक प्रमाण देकर सिद्ध किया है । कुछ लोगों ने निश्चित किया है कि वासंत विषुबद्दिन की यह स्थिति ईसा से ४००० वर्ष पहले थी । अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि ईसा से पाँच छह हजार वर्ष पहले हिंदुओं को नक्षत्र अयन आदि का ज्ञान था और वे यज्ञों के लिये पत्रा बनाते थे। शारद वर्ष के प्रथम मास का नाम अग्रहायण था जिसकी पूर्णिमा मृगशिरा नक्षत्र में पड़ती थी । इसी क्रम में पूर्व काल में देशान्तर लंका या उज्जयिनी से लिया जाता था। भारतीय ज्योतिषी गणना के लिये पृथ्वी को ही केंद्र मानकर चलते थे और ग्रहों की स्पष्ट स्थिति या गति लेते थे । इससे ग्रहों की कक्षा आदि के संबंध में उनकी और आज की गणना में कुछ अन्तर पड़ता है । क्रांतिवृत्त पहले २८ नक्षत्रों में ही विभक्त किया गया था । राशियों का विभाग पीछे से हुआ है । वैदिक ग्रंथों में राशियों के नाम नहीं पाए जाते । इन राशियों का यज्ञों से भी कोई संबंध नहीं हैं। बहुत से विद्वानों का मत है कि राशियों और दिनों के नाम यवन (युनानियों के) संपर्क के पीछे के हैं। अनेक पारिभाषिक शब्द भी यूनानियों से लिए हुए हैं, जैसे-होरा, दृक्काण केंद्र, इत्यादि ।

4.2 उदेश्य

प्रिय विद्यार्थियों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्तों से परिचित हो पाएंगे।
- तिथियाँ कौन-कौन सी हैं एवं तिथि का मान क्या होता है? जान पाएंगे।
- नक्षत्र की विविध संज्ञाओं का बोध कर सकेंगे।
- पंचांग के स्वरुप से भी परिचित होपाएंगे।

4.3 पञ्चांग परिचय

"पञ्चानाम् अड्गानां समाहाराः यस्य सः पञ्चाड्ग" अर्थात् पाँच अड्गों से समाहित हो जो वह पञ्चाड्ग कहलाता है। जिस प्रकार से आधुनिक युग में पाश्चात्य संस्कृति का कलेण्डर होता है जिसमें वर्ष, महीना, वार एवं तरीके दी गई होती है ठीक उसी प्रकार से पञ्चाड्ग होता

है।– **"तिथिवारञ्चनक्षत्रं योगः करणमेव च इति पञ्चाङ्गमाख्यातं व्रतपर्वनिदर्शक''** अर्थात् तिथि, वार, नक्षत्र योग करण के समूह को पञ्चाङ्ग कहते हैं। तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण पर सम्पूर्ण सनातन धर्म के पर्व, व्रत, शुभाऽशुभ कार्य, जन्म-मृत्यु, ग्रह मण्डल इत्यादि निर्भर है। या यह कह सकते है कि इन सभी के ज्ञान के लिए पञ्चांङ्ग की आवश्यकता होती है। बिना पञ्चाङ्ग के हम किसी भी कार्य को भलिभाँति सुनिश्चित नहीं कर सकते। मानव मात्र को कोई भी कार्य (शुभाऽशुभ) करवाने के लिए पञ्चाङ्ग की आवश्यकता होती है। पञ्चाङ्ग में सर्वप्रथम तिथि का वर्णन है।पक्ष-पक्ष दो होते हैं एक शुक्ल पक्ष एवं दूसरा कृष्णपक्ष जब सूर्य एवं चन्द्रमा का अन्तर 360° (0°) हो जाता है तब अमावस्या होती है और जब सूर्य चन्द्रमा का अन्तर 180° का हो तो पूर्णिमा होती है।

दो पक्षों में 30 तिथियाँ भ्रमण करती हैं। उस भ्रमण के पूरे हो जाने को चान्द्रमास कहते हैं। तिथि-अमावस्या के अन्त बिन्दु पर जब सूर्य एवं चन्द्रमा के मध्य 0deg - 0' -0^ prime primeपर होते हैं उसे अमान्त काल कहते हैं। अमान्त में जब सूर्य से चन्द्रमा 12degआगे बढ़ता है तो 1 तिथि का निर्माण होता है। जब यह अन्तर 24° का हो जाता है तो दूसरी तिथि का निर्माण होता है। इसी प्रकार जब यह अन्तर 180degका होता है तो पूर्णिमा काल होता है। पुनः जब यह अन्तर 360deg (0deg - 0' -0^ prime prime) का हो जाता है तो अमावस्या तिथि हो जाती है।

तिथियों की संख्या 30 होती है। तिथियों को दो हिस्सों में बाँट दिया गया है। शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष। जब सूर्य एवं चन्द्रमा का अन्तर "0" हो जाता है तो अमावस्या तिथि होती है। उसके पश्चात् 12° का अन्तर शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से शुरू होते-होते 180degपर पूर्णिमा हो जाती है। तत्पश्चात् जहाँ से 192° का अन्तर सूर्य एवं चन्द्रमा में हो वहाँ से कृष्ण पक्ष शुरू हो जाता है। प्रतिपदा तिथि प्रारम्भ हो जाती है जब यह अन्तर 360degका हो जाये अर्थात् (0deg) भी कह सकते हैं तो अमावस्या हो जाती है। इसी प्रकार से 15 तिथि शुक्ल पक्ष की और 15 तिथि कृष्ण पक्ष की होती है दोनों का योग करें तो 30 तिथियाँ पूर्ण हो जाती है।

4.3.1 तिथियों के नाम

एक माह में दो पक्ष होते हैं। शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष उक्त तिथियों के का क्रम इस प्रकार है।
1. प्रतिपदा 2. द्वितीय 3. तृतीय 4. चतुर्थी 5. पञ्चमी 6. षष्ठी 7. सप्तमी 8. अष्टमी 9. नवमी 10. दशमी
11. एकादशी 12. द्वादशी 13. त्रयोदशी 14. चतुर्दशी 15. पूर्णिमा 16. अमावस्या।

तिथियों के स्वामी—

"वह्निर्विरञ्चिर्गिरिजा गणेशः फणी विशाखो दिनकृन्महेशः दुर्गान्तकौ विश्वहरी स्मरश्च शर्वः शशी चेति पुराणदृष्टः। अभायाः पितरः प्रोक्तास्थिीनामधिपाः क्रमात्॥ शुक्ल पक्ष की तिथि एवं कृष्ण पक्ष की तिथियों के स्वामी एक होते हैं। परन्तु शुक्ल पक्ष के अन्त में पूर्णिमा का चन्द्रमा एवं अमावस्या के स्वामी पितर होते हैं।

4.3 .2 तिथियों के स्वामी

1. प्रतिपदा- अग्नि 2. द्वितीय- ब्रह्मा 3. तृतीय- गौरी 4. चतुर्थी- गणेश 5. पञ्चमी-सर्प 6. षष्ठी- स्कन्द (कार्तिकेय) 7. सप्तमी- सूर्य 8. अष्टमी- शिव 9. नवमी- दुर्गा 10. दशमी- यम

11. एकादशी- विश्वेदेवा 12. द्वादशी- हरि (विष्णु) 13. त्रयोदशी- कामदेव 14. चतुर्दशी- महादेव 15. पूर्णिमा- चन्द्रमा 16. अमावस्या- पितर।

4.4 तिथि वृद्धि एवं तिथि क्षय परिचय

चन्द्र अपनी कक्षा में 12° में जितनी घटी भोगता है उतना ही घटी की एक तिथि होती है। चन्द्रमा यदि शीघ्रगामी हो जाये तो तिथि 60 घटी से 63-64 घटी तक बढ़ जाती है। और चन्द्रमा यदि मन्दगति हो जाये तो 57-58 घटी की एक तिथि होती है।

4.4.1 तिथि वृद्धि

सूर्योदय से अर्थात् यदि सूर्योदय के समय से पहले किसी तिथि का प्रारम्भ हो रहा हो और अगले दिन के सूर्य उदय पर वही तिथि हो तो इस स्थिति में तिथि की वृद्धि होती है। जैसे-यदि सूर्य उदय 6:45 मिनट पर हो और किसी तिथि का प्रारम्भिक काल 6:30 मिनट प्रातः हो और वह तिथि अगले सूर्योदय 6:45 के बाद तक भी समाप्त न हई हो (चाहे वह 6:48 पर समाप्त हो) तो उसे तिथि की वृद्धि कहते हैं। ऐसी स्थिति में पञ्चमी तिथि के पश्चात् पञ्चमी तिथि ही पञ्चाङ्ग में रहती है।

4.4.2 तिथि क्षय

यदि कोई भी तिथि सूर्योदय के बाद प्रारम्भ हो और अगले दिन के सूर्योदय से पहले ही समाप्त हो तो इसे क्षय तिथि कहते हैं। सूर्य उदय 6:45 तिथि प्रारम्भ 6:50 हो और दूसरे दिन का सूर्योदय 6:46 तिथि समापन 6:40 हो तो तिथि का क्षय हो जाता है।

4.5 तिथियों की नन्दादि संज्ञा

तिथियों को सरल एवं सुगम दृष्टि से स्मरण रखने के लिए एवं उनके शुभाशुभ फल का विवेचन करने के लिए उनकी नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता एवं पूर्णा संज्ञा बतलाई गई है।

संज्ञा		तिथियाँ
नन्दा	-	प्रतिपदा -षष्ठी - एकादशी
भद्रा	-	द्वितीय- सप्तमी- द्वादशी
जया	-	तृतीय- अष्टमी- त्रयोदशी
रिक्ता	-	चतुर्थी- नवमी - चतुर्दशी
पूर्णा	-	पञ्चमी- दशमी – पूर्णिमा

शुक्ल पक्ष की पंचमी तक क्षीण चन्द्रमा, पंचमी से दशमी तक मध्यम, दशमी से पूर्णमा तक पूर्ण चन्द्रमा होता है। इसी प्रकार कृष्ण पक्ष पंचमी तक पूर्णचन्द्रमा, पंचमी से दशमी तक मध्यम, दशमी से अमावस्या तक क्षीण चन्द्रमा होता है। तात्पर्य यह है कि शुक्ल दशमी से कृष्ण पंचमी तक पूर्ण चन्द्रमा एवं कृष्णदशमी तक मध्यम चन्द्रमा और कृष्ण एकादशी से शुक्ल पंचमी तक क्षीण चन्द्रमा होता है। पूर्ण चन्द्रमा श्रेष्ठ, मध्यम चन्द्रमा मध्यम एवं क्षीण चन्द्रमा निषिद्ध माना जाता है।

4.5.1 उदय तिथि ग्रहणम्

'यां तिथिं समनुप्राप्य ह्युदयं यातिभास्करः। सा तिथिः सकला ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु'(मुहूर्त संग्रह दर्पण) अर्थात् जिस तिथि में सूर्य उदय होता है या यह कह सकते

हैं कि सूर्योदय के समय जो तिथि होती है दान देने में पढ़ने में सारे दिन उसी तिथि को मानना चाहिए। चाहे सूर्योदय के दस मिनट बाद दूसरी तिथि का प्रारम्भ हो रहा हो फिर भी तिथि वही ग्रहण करें जो सूर्योदय के ठीक साथ में चल रही हो।

4.5.2 सिद्धास्तिथय

"नन्दा तिथिः शुक्रवारे सौम्ये भद्रा कुजे जया। रिक्ता मन्देगुरौ वारे पूर्णा स्यात्सर्वसिद्धिदा।। यहाँ हमने कुछ सिद्ध तिथियों का परिचय दिया है वारों के साथ जिनमें कोई कार्य करें तो सिद्धि प्राप्ति होती है।

शुक्रवार को नन्दा तिथि (1, 6, 11)

बुधवार को भद्रा तिथि (2, 7, 12)

मंगलवार को जया तिथि (3, 8, 13)

शनिवार को रिक्ता तिथि (4, 9, 14)

गुरुवार को पूर्णा तिथि (5, 10, 15)

नेष्ट तिथि:- नेष्ट तिथियों में कोई भी कार्य किया जाए तो वह शुभ फल दायक नहीं होती।

सूर्य, मंगलवार के दिन नन्दा तिथि शुक्र, सोमवार के दिन भद्रा तिथि बुधवार के दिन जया तिथि गुरुवार के दिन रिक्ता तिथि शनिवार के दिन पूर्णा तिथि ये सब तिथियाँ यदि इन वारों में हो तो नेष्ट मानी जाती है।

वार सात होते हैं। वार की गणना रविवार से प्रारम्भ होती है।

1. रविवार, 2. सोमवार, 3 मंगलवार, 4. बुधवार, 5. गुरुवार, 6. शुक्रवार, 7. शनिवार

रविवार स्थिर, चन्द्रवार-चर, मंगलवार उग्र, बुधवार मिश्रित, गुरूवार लघु, शुक्रवार मृदु, शनिवार तीक्ष्ण संज्ञक होता है। सूर्योदय काल से वार की प्रवृत्ति रावण की राजधानी अर्थात् लङ्का देश (भूमध्य रेखा) से होती है। इसके ऊपर तथा अधोभाग में स्थित नगरों में दोनों देशों के चरार्द्ध और देशान्तर घट्यादि के ऋण अथवा धनादि अन्तर करने पर वार प्रवृत्ति होती है।

सूर्य रक्तवर्ण के, चन्द्रमा श्वेतवर्ण मङ्गल अत्यन्त लाल, बुध पीला, गुरु स्वर्णिम, शुक्र चाँदीवर्ण, तथा शनि काले शरीर वाला माना गया है।

सूर्यवार के दिन वस्त्र धारण करने से वस्त्र फट जाता है। चन्द्रमा के दिन जल से गीला होता है। मंगल के दिन अग्नि से जल जाता है, बुध के दिन लक्ष्मी देने वाला होता है, गुरु के दिन लाभ कराने वाला होता है, शुक्र के दिन प्रिय वस्तु की प्राप्ति कराने वाला तथा शनि के दिन वस्त्र धारण करने से वस्त्र मलिनता से युक्त होता है। सूर्यादि ग्रह अपने-अपने वारों में ऐसा फल करते हैं।

वारों के स्वामी-

	वार		**देवता**
1.	रवि	-	शिव
2.	सोम	-	दुर्गा
3.	मंगल	-	कार्तिक
4.	बुध	-	विष्णु
5.	गुरु	-	ब्रह्मा
6.	शुक्र	-	इन्द्र
7.	शनि	-	काल

4.6 नक्षत्र परिचय

राशि चक्र का 27वाँ भाग नक्षत्र कहलाता है। सम्पूर्ण राशि चक्र में 360 अंश हैं। अतः 360° 27-13°-20' एक नक्षत्र का मान होता है और एक नक्षत्र के चार चरण होते हैं एक चरण का मान 3°-20 कला होता है। यही व्यवहार में उपयोगी नक्षत्र है। इससे सिद्ध होता है कि ग्रह भ्रमण पथ में 27 समान भागों की कल्पना की गई है। तब उस 13°-20' के सम्पूर्ण क्षेत्र में पड़ने वाले तारों में से किसी तारा विशेष के आधार पर उन नक्षत्र खण्डों या नक्षत्र प्रदेशों का नामकरण कर दिया गया था। ये नक्षत्र एक प्रकार से मील का पत्थर का कार्य करते हैं। उनके द्वारा आकाश में ग्रहों की स्थिति का ठीक-ठीक बोध होता है।

"नक्षति शोभां गच्छति" इस व्युत्पत्ति से सुशोभित होने वाले, चमकने वाले तारा मण्डलों का नाम नक्षत्र है। अथवा एक स्थान से दूसरे स्थान पर पृथ्वी के अयन चलन के कारण खिसकते हुए प्रतीत होने वाले तारामण्डलों का नाम नक्षत्र है। तैतरीय ब्राह्मण में नक्षत्र शब्द की उत्पत्ति इस तरह दी गई है।

"प्रबाहुवी अग्रे क्षत्राण्यातेपुः तेषामिन्द्रः क्षत्राण्यादत्त। न वा इमानि क्षत्राण्यभूवन्निति तन्नक्षत्राणं नक्षत्रत्वम्।। अर्थात् जो क्षत नहीं है वह नक्षत्र है। निरूक्त में यास्क ने 'नक्ष' धातु से नक्षत्र शब्द को निष्पन्न कहा है। "नक्षतेर्गतिकर्मणः।" नक्ष धातु का अर्थ हिलना, डुलना, चलना है। लेकिन ज्योतिष उपयोगी नक्षत्र परिभाषा वही है जो सबसे पहले बताई गई है। वैदिक मंत्रों से केवल नामकरण का आधार ही ज्ञात होता है। नक्षत्र से मिलता जुलता शब्द तारा है। ध्यान रहे कि तारा मण्डल को ही नक्षत्र विभाग या नक्षत्र प्रदेश माना जाता है। इसी ब्राह्मण ग्रन्थ में एक कथा आती है कि सर्वत्र जल रहने पर सृष्टि के आदि में जो तर गये, पार हो गये वे तारे है।"सलिलं वाइमन्तरासीत् यदतरन्। तत्तारकाणां तारकत्वम् ।।

4.6.1 नक्षत्रों के नाम

स्पष्ट हो चुका है कि तारापुंजो या तारामण्डलों के उस एक भाग का नाम नक्षत्र है जो चन्द्रमा के भ्रमण मार्ग का 27वां भाग हैं। अर्थात् सम्पूर्ण चन्द्रभ्रमण पथ को 27 से भाग देने से मिलने वाले भाग को नक्षत्र मण्डल न कहकर नक्षत्र ही कहेंगे। पहले हमने वैदिक उदाहरणों से इस बात को सिद्ध कर दिया है कि नक्षत्रों की परिकल्पना, उनका नामकरण व तारासंख्या किसी अफीमची की उड़ान नहीं है, अपितु खूब बुद्धिमत्ता व तत्परता से आकाश या खगोल का निरीक्षण करके ही इन्हें ये नाम दिए गए हैं। 27 नक्षत्रों के नाम इस प्रकार है-"उत्तराषाढ़ व श्रवण के बीच में अभिजित् नक्षत्र अतिरिक्त मानने से इनकी संख्या 28 सिद्ध होती है।अश्वनि, भरनी, कृतिका, रोहिणी , मृगशिरा , आर्द्रा , पुनर्वसु , पुष्य , आश्लेषा , मघा , पूर्वा फाल्गुनी , उत्तराफाल्गुनी , हस्ता, चित्रा , स्वाति , विशाखा , अनुराधा , ज्येष्टा , मूल , पुर्वाषाढा , उत्तराषाढा , अभिजित , श्रवण , धनिष्ठा , शतभिषा , पूर्वाभाद्रपदा , उत्तराभाद्रपदा, रेवती ।

नक्षत्रों के देवता-

	नक्षत्र	-	**देवता**
1.	अश्विनी	-	अश्विनी कुमार
2.	भरणी	-	यम
3.	कृतिका	-	अग्नि
4.	रोहिणी	-	ब्रह्मा/प्रजापति

5. मृगशिरा	-	सोम/चन्द्र
6. आर्द्रा	-	शिव
7. पुनर्वसु	-	अदिति
8. पुष्य	-	गुरु
9. आश्लेषा	-	सर्प
10. मघा	-	पितर
11. पू. फा	-	भग
12. उ. फा	-	अर्यमा
13. हस्त	-	सविता
14. चित्रा	-	त्वष्टा
15. स्वाति	-	वायु
16. विशाखा	-	इन्द्राग्नि
17. अनुराधा	-	मित्र
18. ज्येष्ठा	-	इन्द्र
19. मूल	-	नैऋति
20. पू.षा	-	जल
21. उ.षा	-	विश्वेदेव
22. अभिजित्	-	ब्रह्म
23. श्रवण	-	विष्णु
24. धनिष्ठा	-	वसु
25. शतभिषा	-	वरुण
26. पू.भा	-	अनेकपाद
27. उ.भा	-	अहिर्बुध्न्य
28. रेवती	-	पूषा

नक्षत्र नाम पहले बता ही दिये हैं। लेकिन किसी विशेष मुहूर्त के लिए नक्षत्रों की अलग-अलग संज्ञा होती है। और विशेष कार्य के लिए विशेष मुहूर्त अवश्य देखें क्योंकि विशेष मुहूर्त में किया गया कार्य कभी भी निरर्थक नहीं होता।

4.7 नक्षत्र संज्ञा

ध्रुव/स्थिरनक्षत्र नाम	वार
उ.फा, उ.षा, रोहिणी उ.भा	रविवार

कार्य :- स्थिर कार्य करें ग्रह प्रवेश, बीज बोना, व्यापार आरम्भ, ग्रहशान्ति, मंदिर, गृह निर्माण इत्यादि।

चर/चल नक्षत्र :- स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषासोमवार

कार्य ;- सवारी करना, हल जोतना, यात्रा, मन्त्रसिद्धि आदि।

उग्र/क्रूर संज्ञक नक्षत्र :- पू. फा., पू.षा., पू.भा., भरणी, मघा , मंगलवार

कार्य:- उग्रकार्य, तान्त्रिक प्रयोग, मुकदमा दायर करना, शत्रु पर आक्रमण, सन्धि कार्य, चतुराई एवं चालाकी के कार्य।

मिश्र/साधारण संज्ञक नक्षत्र :- कृतिका, विशाखाबुधवार

कार्य :- अग्निहोत्र, युद्ध की पहल करना, तथा उग्र नक्षत्रों के काम भी किये जा सकते हैं।क्षिप्र/लघ

चर संज्ञक नक्षत्र:-अश्विनी, पुष्य, हस्त, अभिजित्गुरुवारस्त्री रति, कार्य :- खरीद-बेच, मंगल कार्य, विद्यारम्भयात्रादि तथा चर संज्ञक नक्षत्रों के कार्य सिद्ध होते हैं।

मृदु/मैत्र संज्ञक नक्षत्र :- मृगाशिरा, चित्रा,शुक्रवार। कार्य :- कोमल, कार्य, सन्धि इत्यादि।

तीक्ष्ण/दारूण:- मूल, ज्येष्ठा,आर्द्रा, आश्लेषाशनिवार। कार्य :- उग्र कार्य, फूट डालना, पशुओं की ट्रेनिंग प्रहार कार्य इत्यादि।

पंचक संज्ञक नक्षत्र :- धनिष्ठा का उत्तरार्ध, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती ये पाँच नक्षत्र (सैद्धान्तिक दृष्टि से साढ़े चार) पंचक कहलाते हैं। पंचक का अर्थ ही है पाँच का समूह। सरल शब्दों में कहे तो कुम्भ व मीन में जब चन्द्रमा रहे तब पंचक रहते हैं। कहीं-कहीं पर धनिष्ठा नक्षत्र को पंचक भी कहा जाता है।बहुत से विद्वान् पंचकों में धनिष्ठा नक्षत्र को पूरा ग्रहण करते हैं, परन्तु कोई-कोई विद्वान् इसका वही भाग ग्रहण करते हैं जिसमें दोष लगा होता है उदाहरण से कहें तो जैसे गला हुआ आधा सेब त्याज्य है लेकिन कुछ लोग गला भाग निकाल कर शेष प्रयोग कर लेते हैं। इत्यादि तर्क से कुछ लोग धनिष्ठा के बीच से उत्तरार्ध (Post half) में ही दोष मानते हैं। पंचक में दक्षिण दिशा की यात्रा, ईंधन के लिए लकड़ी इकट्ठा करना, शव दाह, घर पर छत आदि डालना, चारपाई बनवाना वर्जित है।

शून्य नक्षत्र:- शून्य नक्षत्र विशेष मास में कुछ नक्षत्रों के पड़ने से होते हैं। इन नक्षत्रों की शून्य संज्ञा होती है। इनमें कोई भी कार्य का शुभारम्भ नहीं करना चाहिए।

दग्ध नक्षत्र:- रविवार-भरणी, सोमवार-चित्रा, मंगलवार-उत्तराषाढ़ा, बुधवार-धनिष्ठा, गुरुवार-उत्तराफाल्गुनी, शुक्रवार ज्येष्ठा, शनिवार-रेवती।

अन्तरंग बहिरंग नक्षत्र:- जिस नक्षत्र में सूर्य गोचर करे, उससे गिनकर 4 नक्षत्र अन्तरंग 3 बहिरंग 4 अन्तरंग 3 बहिरंग होते हैं। इसमें अभिजित् भी गिना जाता है।

यमदंष्ट्रा नक्षत्र:-वार विशेष में यदि विशेष नक्षत्र पड़े तो यमदंष्ट्रा अर्थात् यमराज की दाढ़ नामक योग होता है। सब शुभ कार्यों में इसे छोड़ देना ही श्रेयस्कर है।

रविवार -	मघा, धनिष्ठा
सोमवार -	विशाखा, मूल
मंगलवार-	कृतिका, भरणी
बुधवार-	रेवती, पुनर्वसु
गुरुवार-	रेवती, अश्विनी
शुक्रवार-	रोहिणी, अनुराधा
शनिवार-	श्रवण, शतभिषा

यमघण्टक नक्षत्रये नक्षत्र शुभकार्यों में वर्जित होते हैं। रविवार मघा, सोमवार-विशाखा, मंगल-आर्द्रा, बुध-मूल, गुरूवार-कृत्तिका, शुक्र-रोहिणी, शनि-हस्त।

रवि योग नक्षत्र:- सूर्य नक्षत्र से चन्द्रमा के नक्षत्र (दिन नक्षत्र) तक गिनकर यदि दिन नक्षत्र 4, 9, 6, 10, 13, 20 वाँ पड़े तो उस दिन रवियोग होता है। इस स्थिति में बहुत से दोष नष्ट होते हैं। यह शुभ मुहूर्त हो जाता है।

अमृतसिद्धि नक्षत्र:- रवि-हस्त, सोम-मृगाशिरा, मंगल-अश्विनी, बुध-अनुराधा, गुरुवार-पुष्य, शुक्र-रेवती, शनिवार-रोहिणी। ये अमृत सिद्धि नक्षत्र हैं। ये सब शुभकार्यों में ग्राह्य हैं। सर्वार्थ सिद्धि नक्षत्र

रविवार, अश्विनी, हस्त, पुष्य, तीनों उत्तरा, मूल

सोमवार , श्रवण, अनुराधा, रोहिणी, पुष्य, मृगशिरा

मंगलवार, अश्विनी, कृतिका, आश्लेषा, उत्तरा भाद्रपद्

बुधवार, कृतिका, रोहिणी, मृगशिरा, हस्त, अनुराधा

गुरुवार, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, अनुराधा, रेवती

शुक्रवार, अश्विनी, पुनर्वसु, अनुराधा, श्रवण, रेवती

शनिवार, रोहिणी, स्वाति, श्रवण

इन वारों में यदि उक्त नक्षत्र हों तो उस दिन सर्वार्थसिद्ध योग होता है। ये सभी शुभ कार्यों में कभी-कभी विवाह को छोड़कर त्वरित मुहूर्त का काम करते हैं।

4.7.1 नक्षत्रों का फलादेश

जन्म कुण्डली में लग्न, भावों में स्थित ग्रहों (उच्च, नीच, स्वग्रही, शुभ ग्रही) योग, करण एवं जन्मवार का व्यक्ति के शरीर के निर्माण, स्वास्थ्य, स्वभाव, आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति, प्रतिष्ठा, सम्मान एवं जीवनयापन क्षेत्र आदि में योगदान होता है, उसी प्रकार जन्म नक्षत्र भी व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करता है।

अश्विनी- इस नक्षत्र में उत्पन्न व्यक्ति भाग्यवान, सुन्दर, विचारशील, धनवान, लोकप्रिय, चतुर, बुद्धिमान, शृंगार में रूची रखने वाला, लेखन कार्य में कुशल एवं अनुकूल ग्रह के होने पर ज्योतिष क्षेत्र में रुचि रखने वाला होता है।

भरणी- इस नक्षत्र में उत्पन्न व्यक्ति चालाक, निरोगी, सुखी और धनी, सत्यवादी तथा धार्मिक कार्यों में रुचि रखने वाला होता है।

कृतिका-तेजस्वी, कलह प्रेमी, धार्मिक आस्था वाला (कट्टर) तथा लड़ाई झगड़े में रूची रखने वाला होता है।

रोहिणी-सुन्दर, मधुभाषी, भूत-प्रेतों में विश्वास रखने वाला, सामाजिक कार्यकर्ता, स्थिर बुद्धि तथा चतुर होता है।

मृगशिरा-व्यक्ति चंचल, चतुर, शान-शौकत से रहने वाला, उद्यमी, अनैतिक कार्यो से धन कमाने वाला होता है।

आर्दा-दूरदर्शी, अभिमानी, क्रूर, अपने कुटुम्ब से कलह करने वाला, दूसरे के कार्यों में विघ्न डालने वाला होता है।

पुनर्वसु-लोकप्रिय, प्रत्येक कार्य को विचार पूर्वक करने वाला, क्रोधी, उच्चाभिलाषी, पुत्रों एवं मित्रों से सुखी एवं स्त्री धन को प्राप्त करने वाला होता है।

पुष्य-विद्वान्, शान्त स्वभाव, धर्म में आस्था रखने वाला, स्पष्टवक्ता, सुन्दर होता है। आश्लेषा-हंसमुख, आलसी, सत्यवक्ता, स्वार्थी, स्त्रीप्रेमी, छोटे लोगों से मित्रता करने वाला होता है।

मघा-धनी, भोगी, उद्यमी गुप्त कार्यों में रूची रखने वाला बड़े कुटुम्ब वाला एवं पिता का भक्त होता है।

पूर्वाफाल्गुनी-व्यापारिक कार्यों में रूची रखने वाला, पशुपालक एवं धार्मिक संस्थाओं में रूची रखने वाला होता हैं

उत्तराफाल्गुनी-एकान्तप्रिय, लोकप्रिय, तीक्ष्ण स्मरण शक्ति वाला, विद्या के माध्यम से धनी एवं सुखी होता है।

हस्त-असत्यवादी, अभिमानी, दूसरे की स्त्रियों पर बुरी नजर रखने वाला एवं अपने परिश्रम के बल पर उन्नति करने वाला होता है।

चित्रा-संतोषी, धनवान, ईमानदार, अद्भुत कार्य करने वाला,

आकर्षक एवं शृंगार प्रिय और साधारण सी बातों पर क्रोध करने वाला होता है।

स्वाती-उदार, दयावान, मधुरभाषी, चतुर, लोकप्रिय, पुष्ट शरीर, स्वतन्त्र विचार एवं अपनी बात पर जिद करने वाला होता है।

विशाखा-लोभी ईर्ष्यालु, व्यापारिक कार्यों में रुची रखने वाला एवं दूसरों को अच्छी सलाह देने वाला होता है।

अनुराधा-ईमानदार, चतुर, अपने काम को करने में कुशल, भ्रमण करने वाला ज्योतिष एवं संगीत में रूचि रखने वाला।

ज्येष्ठा-अपने कुल का विरोधी, बोलने में तेज, मित्रों पर अंधविश्वास करने वाला, लेखक एवं कविता की ओर अग्रसर (ग्रहों के अनुकूल होने पर)

मूल-अभिमानी, धनवान, सुखी, अपनी इच्छानुसार कार्य करने वाला, जादू टोने में विश्वास रखने वाला, औषधि के क्रय विक्रय से लाभ प्राप्त

पूर्वाषाढ़ा - भाग्यवान, लोकप्रिय, सब कार्यों में चतुर, ज्ञान कला में निपुण, शीघ्र सफलता प्राप्त करने वाला होता है।

उत्तराषाढ़ा-धर्मात्मा, अधिक मित्र वाला, भाषण देने में कुशल, मान-प्रतिष्ठा वाला, गृह कार्यों में कुशल, भविष्य के लिए सुख-सुविधा जुटाने वाला होता है।

श्रवण-चंचल स्वभाव, सर्वगुण सम्पन्न, भूमि सम्बन्धी कार्यों में निपुण धनवान, आकर्षक जल सम्बन्धी कार्यों में रूची रखने वाला होता है।

धनिष्ठा- शूरवीर, दानी, संगीत प्रेमी, स्त्री प्रेमी, ईमानदार, उन्नति की आकांक्षा रखने वाला एवं लोहे के कार्यों से लाभ प्राप्त करने वाला होता है।

शतभिषा-सत्यवक्ता, बिना सोचे कार्य करने वाला बुद्धिमान, विदेशों में रहने की अभिलाषा रखने वाला, स्वाभिमानी, मशीनरी के कार्यों में रूचि रखने वाला तथा सात्विक जीवन जीने वाला होता है।

पूर्वाभाद्रपदा-आराम पसन्द, चतुराई से कार्य करने वाला, अचानक लाभ प्राप्त करने वाला, शिक्षण कार्यों में रूची रखने वाला एवं स्त्री के आधीन रहने वाला होता है।

उत्तराभाद्रपदा-विद्यावान, उन्नतिशील, सहासी, भावुक, सम्मान पाने वाला, राज्यपक्ष से मित्रता रखने वाला होता है।

रेवती-सरल स्वभाव, बुद्धि से काम करने वाला, सुन्दर शरीर, एकान्त प्रिय, ईश्वर भक्त एवं अध्यात्मिक शक्ति से युक्त होता है। उपरोक्त फलित कुण्डली में स्थित ग्रहों की स्थिति के अनुसार थोड़ा अच्छा-बुरा अन्तर होने की संभावना हो सकती है यह केवल सूक्ष्म फलित है।

4.7.2 योग और करण

चन्द्रमा और सूर्य दोनों मिलकर जितने समय में एक नक्षत्र के बराबर दूरी (कोण) तय करते हैं उसे योग कहते हैं, क्योंकि ये चन्द्रमा और सूर्य की दूरी का योग है। ज्योतिष में ग्रहों की विशेष स्थितियों को भी योग कहा जाता है वह एक भिन्न विषय है। एक तिथि का आधा समय करण है।

4.8 सारांश

प्रिय अध्येताओं इस इकाई के अन्तर्गत हमने ज्योतिष शास्त्र से समन्धित तिथि – नक्षत्रादि का विस्तार पूर्वक अध्ययन किया और जाना कि ज्योतिष शतर में समय मापन और शुभ मुहूर्त निर्धारण के लिए पञ्चांग अत्यंत महत्वपूर्ण है। जिसका अध्ययन हमने उपरोक्त वर्णित पाठ्य सामग्री में जाना कि पंचांग का अर्थ है पांच अंगो वाला , जो भारत में प्राचीन काल से परंपरागत रूप से उपयोग में लाए जाते रहे हैं। पञ्चाङ्ग में समय गणना के पाँच अंग हैं : वार , तिथि , नक्षत्र , योग , और करण।

भारतीय पंचांग प्रणाली में एक प्राकृतिक सौर दिन को दिवस कहा जाता है। सप्ताह में सात दिन होते हैं और उनको वार कहा जाता है। दिनों के नाम सूर्य , चन्द्र , और पांच प्रमुख ग्रहों पर आधारित हैं , हर दिन का एक स्वामी ग्रह होता है, जैसे रविवार का स्वामी सूर्य और सोमवार का स्वामी चंद्रमा है। दिन के स्वामी ग्रह के आधार पर विभिन्न कार्यों के लिए शुभता या अशुभता निर्धारित की जाती है।

तिथि, पक्ष और माहहिन्दू पंचांगों में मास, माह व महीना चन्द्रमा के अनुसार होता है। अलग अलग दिन पृथ्वी से देखने पर चन्द्रमा के भिन्न भिन्न रूप दिखाई देते हैं। जिस दिन चन्द्रमा पूरा दिखाई देता है उसे पूर्णिमा कहते हैं। पूर्णिमा के उपरांत चन्द्रमा घटने लगता है और अमावस्या तक घटता रहता है। अमावस्या के दिन चन्द्रमा दिखाई नहीं देता और फिर धीरे धीरे बढ़ने लगता है और लगभग चौदह व पन्द्रह दिनों में बढ़कर पूरा हो जाता है। इस प्रकार चन्द्रमा के चक्र के दो भाग है। एक भाग में चन्द्रमा पूर्णिमा के उपरांत अमावस्या तक घटता है , इस भाग को कृष्ण पक्ष कहते हैं। इस पक्ष में रात के आरम्भ मे चाँदनी नहीं होती है। अमावस्या के उपरांत चन्द्रमा बढ़ने लगता है। अमावस्या से पूर्णिमा तक के समय को शुक्ल पक्ष कहते हैं। पक्ष को साधारण भाषा में पखवाड़ा भी कहा जाता है। चन्द्रमा का यह चक्र जो लगभग २९.५ दिनों का है चंद्रमास व चन्द्रमा का महीना कहलाता है । दूसरे शब्दों में एक पूर्ण चन्द्रमा वाली स्थिति से अगली पूर्ण चन्द्रमा वाली स्थिति में २९.५ का अन्तर होता है।चंद्रमास २९.५ दिवस का है , ये समय तीस दिवस से कुछ ही घटकर है। इस समय के तीसवें भाग को तिथि कहते हैं। इस प्रकार एक तिथि एक दिन से कुछ मिनट घटकर होती है। पूर्ण चन्द्रमा की स्थिति (जिसमे स्थिति में चन्द्रमा सम्पूर्ण दिखाई देता हो) आते ही पूर्णिमा तिथि समाप्त हो जाती है और कृष्ण पक्ष की पहली तिथि आरम्भ हो जाती है। दोनों पक्षों में तिथियाँ एक से चौदह तक बढ़ती हैं और पक्ष की अंतिम तिथि अर्थात पंद्रहवी तिथि पूर्णिमा व अमावस्या होती है।तिथियों के नाम निम्न हैं- पूर्णिमा (पूरनमासी), प्रतिपदा (पड़वा), द्वितीया (दूज), तृतीया (तीज), चतुर्थी (चौथ), पंचमी (पंचमी), षष्ठी (छठ), सप्तमी (सातम), अष्टमी (आठम), नवमी (नौमी), दशमी (दसम), एकादशी (ग्यारस), द्वादशी (बारस), त्रयोदशी (तेरस), चतुर्दशी (चौदस) और अमावस्या (अमावस)।माह के अंत के दो प्रचलन है। कुछ स्थानों पर पूर्णिमा से माह का अंत करते हैं और कुछ स्थानों पर अमावस्या से। पूर्णिमा से अंत होने वाले माह पूर्णिमांत कहलाते हैं और

अमावस्या से अंत होने वाले माह अमावस्यांत कहलाते हैं। अधिकांश स्थानों पर पूर्णिमांत माह का ही प्रचलन है। चन्द्रमा के पूर्ण होने की सटीक स्थिति सामान्य दिन के बीच में भी हो सकती है और इस प्रकार अगली तिथि का आरम्भ दिन के बीच से ही सकता है। नक्षत्र- तारामंडल में चन्द्रमा के पथ को २७ भागों में विभाजित किया गया है, प्रत्येक भाग को नक्षत्र कहा गया है। दूसरे शब्दों में चन्द्रमा के पथ पर तारामंडल का १३ अंश २०' का एक भाग नक्षत्र है। हर भाग को उसके तारों को जोड़कर बनाई गई एक काल्पनिक आकृति के नाम से जाना जाता है। प्रत्येक नक्षत्र का अपना ज्योतिषीय प्रभाव होता है, जो उस दिन के कार्यों को प्रभावित कर सकता है।

बोधात्मक प्रश्न

1.तिथियाँ होती है ।

क. 5 , ख.16 , ग. 14, घ. 15

2. तिथियों कि नन्दादी ...... कहलाती है ।

क. संज्ञा , ख. स्वरुप , ग. नक्षत्र, घ. राशि

3. पञ्चांग का अर्थ है –

क. पांच अंग , ख. तीन अंग , ग. योग विशेष घ. शुभ मुहूर्त

4 . अभिजीत को जोड़कर नक्षत्रों की संख्या है ।

क. 27 , ख. 28 ग. 15 , घ . 7

4.9 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

1.ख,2.क,3.क,4. ख

4.10 संदर्भित पाठ्य सामग्री

1. ज्योतिष सर्वस्व - डॉ सुरेश चन्द्र मिश्र
2. मुहूर्त चिंतामणी
3. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी०एल० ठाकुर
4. भारतीय कुण्डली विज्ञान - पण्डित मीठालाल हिंमतराम ओझा
5. ज्योतिष सर्वस्व चौखम्भा प्रकाशन
6. जन्मपत्रव्यवस्था चौखम्भा प्रकाशन
7. ताजिनीलकण्ठी - नीलकण्ठ दैवज्ञ
8. ज्योतिष सर्वस्व
9. सचित्र ज्योतिष शिक्षा
10. ताजिकनीलकण्ठ
11. भारतीय कुण्डली विज्ञान
12. ज्योतिष रहस्य
13. जन्मपत्रव्यवस्था
14. ज्योतिष प्रवेशिका

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. तिथियों का परिचय संज्ञा सहित विस्तार पूर्वक लिखिए।
2. नक्षत्रों का परिचय देते हुए उनके स्वामियों का भी उल्लेख कीजिए।
3. नक्षत्रों की विविध संख्या का विस्तार पूर्वक उल्लेख कीजिए।
4.पञ्चांग किसे कहते हैं विस्तार पूर्वक परिचय देते हुए प्रयोजन को सिद्ध कीजिए।

खण्ड- तीन (Section-C)
ज्योतिषशास्त्र : मेलापक विचार

इकाई-1 अष्टकूट परिचय एवं महत्त्व

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 मेलापक परिचय

1.4 अष्टकूट

1.5 सारांश

1.6 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

1.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई अष्टकूट नाम से है। भारतीय ज्योतिष में मेलापक का मुख्य उद्देश्य है कि दोनों वर एवं वधु में विवाह के उपरान्त मृत्यु पर्यन्त तक आपसी प्रेम एवं सदभाव बना रहे। तथापि भारतीय ज्योतिष के पितामह महर्षि पाराशर के होराशास्त्र का अध्ययन करें तो मिलान का उल्लेख कहीं पर प्राप्त नहीं होता। लेकिन पाराशर होराशास्त्र के अनन्तर हुए दैवज्ञों ने शोध करके यह निष्कर्ष निकाला है कि मिलान एक प्रकिया है जिसके द्वारा पति एवं पत्नी दोनों के गुण दोषों को अच्छी तरह से अध्ययन करके उनके भावी जीवन के विषय में जाना जा सकता है। प्रस्तुत अध्याय में विस्तार से उनके विचार और उनके विचारों का विष्लेषण प्रस्तुत है।

1.2 उद्देश्य

- इस इकाई में आप अष्टकूट किसे कहते है, इसे समझ सकेंगें।
- मेलापक किसे कहा जाता है, इसे आसानी से समझ सकते है।
- अष्टकूटों के प्रत्येक कूट का विस्तारपूर्वक अध्ययन आप कर सकेंगे।
- विवाह में अष्टकूट के महत्व को समझ सकेंगें।

1.3 मेलापक परिचय

हमारे मनीषी ऋषि-महर्षियों ने पूर्णतः अनेक सिद्धियों और साधनाओं के आधार पर भविष्य को देखने-समझने तथा आभास करने की उनमें विलक्षण शक्ति थी। हमारे परम पूज्य आचार्यो ने ज्योतिष विज्ञान के गर्भसागर की तलहटी से जीवन-रहस्य-सीप का हृदय चीरकर, सुखद दाम्पत्य प्राप्त करने हेतु जन्मांगों के मिलान के अद्भुत सूत्र एवं सिद्धान्त रूपी मोती प्रस्तुत किये। इन सिद्धान्तों के गंभीर तथा निष्पक्ष अनुसरण-अनुपालन करने के पश्चात् वर-कन्या का चुनाव पाणिग्रहण हेतु करना चाहिए ताकि दाम्पत्य जीवन का मधुर संगीत जीवन पर्यन्त एक दूसरे के प्रति प्रीति प्रतीति परिपूरित परिणय पथ को प्रशस्त करता रहे।

परिणय से पूर्व वर एवं वधू एक दूसरे से पूर्णतः अपरिचित तथा अनभिज्ञ होते हैं। दोनों के भिन्न-भिन्न आचरण में एकरूपता और सामंजस्य का अभाव अथवा उनके विचारों में विरोध तथा उनकी रुचियों में अन्तर की संभावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। आत्मीय सम्बन्धों की सरसता हेतु पति-पत्नी के मध्य आत्मिक एवं सहज सम्बन्ध आवश्यक है। आत्मिक सम्बन्धों की प्रगाढ़ता का अभाव दोनों के मध्य विसंगतियाँ तथा विषमताएँ उत्पन्न कर देता है जो पारिवारिक विघटन का सेतु बन जाता है। वर्तमान में असुरक्षा का भाव तलस्पर्शी चिन्ता का विषय है। इस स्थित में दाम्पत्य जीवन के प्रति शंका स्वाभाविक है। परिणय से पूर्व जीवन सहचर के विषय में कौतूहल एवं जिज्ञासा-पूर्ण अनेक प्रश्न, मन मस्तिष्क को आन्दोलित एवं आलोड़ित करते है। इस संदर्भ में ज्योतिष विज्ञान के उपयुक्त उपयोग एवं उसके तर्कसंगत विवेचन का महत्त्व अत्यन्त प्रखर हो जाता है। रूप और यौवन का आकर्षण, जब सामाजिक आचार संहिता का आचमन करता है, तब परिणय का पावन-पथ प्रारूपित होता है।

ज्योतिष शास्त्र-सूचक शास्त्र है। भारतीय ज्योतिष में मेलापक का मुख्य उद्देश्य है कि दोनों वर एवं वधु में विवाह के उपरान्त मृत्यु पर्यन्त तक आपसी प्रेम एवं सदभाव बना रहे तथापि भारतीय ज्योतिष के पितामह महर्षि पाराशर के होराशास्त्र का अध्ययन करें तो मिलान का उल्लेख कहीं पर प्राप्त नहीं होता। लेकिन पाराशर होराशास्त्र के अनन्तर हुए दैवज्ञों ने शोध करके

यह निष्कर्ष निकाला है कि मिलान एक प्रकिया है जिसके द्वारा पति एवं पत्नी दोनों के गुण दोषों को अच्छी तरह से अध्ययन करके उनके भावी जीवन के विषय में जाना जा सकता है।
मेलापक का उद्देश्य है कि वर एवं वधु दोनों के मध्य आपसी प्रेम- सद्भाव एवं एक दूसरे के मध्य आदर-सत्कार की भावना तथा विचारों का मेल-जोल बना रहे। ज्योतिष शास्त्र भविष्य का सूचक शास्त्र है। जीवन में प्रायः मानव अपने जन्म जन्मान्तरों में किये शुभाशुभ कर्मों के फलस्वरूप सुख एवं दुःख को प्राप्त करता है। जिसको दशा के माध्यम से जाना जाता है इसलिए कब जीवन का स्वर्णमयी युग आने वाला है और उसमें कब कष्टों का सामना करना पड़ेगा।

विवाह के पूर्व वर-कन्या की जन्मपत्रियों को मिलाने का आशय केवल परम्परा का निर्वाह नहीं है, किन्तु भावी दम्पति के स्वभाव, गुण, प्रेम और आचार-व्यवहार के सम्बन्ध में ज्ञात करना है। जब तक समान आचार-व्यवहार वाले वर-कन्या नहीं होते तब तक दाम्पत्य जीवन सुखमय नहीं हो सकता है। जन्मपत्रियों की मेलनपद्धति वर-कन्या के स्वभाव, रूप और गुणों को अभिव्यक्त करती है। भारतीय संस्कृति में प्रेमपूर्वक विवाह कल्याणकारी नहीं माना गया है किन्तु दो अपरिचित व्यक्तियों का जीवन-भर के लिए गठबन्धन मान दिया जाता है। यदि ऐसी परिस्थिति में उन दोनों के स्वभाव के बारे में संचिक ज्योतिष द्वारा कुछ जान लिया जाये तो अत्यन्त उपकार उन व्यक्तियों का हो सकता है। अतएव इस वैज्ञानिक मेलन-पद्धति की उपेक्षा करना नितान्त अनुचित है। ज्योतिष नक्षत्र, योग, ग्रह राशि आदि के तत्त्वों के आधार पर व्यक्ति के स्वभाव, गुण का निश्चय करता है। वह बतलाता है कि अमुक नक्षत्र, ग्रह व राशि के प्रभाव से उत्पन्न नारी के साथ सम्बन्ध करना अनुकूल है अथवा प्रतिकूल। या प्रभावशामक सामंजस्य के होने से दोनों के स्वभावगुण में समानता है। अतएव मेलन-पद्धति द्वारा वर-कन्या की जन्मपत्रियों का विचार करना चाहिए। यहाँ सर्वप्रथम ग्रह मिलाने की विधि लिखी जा रही है।

सर्वप्रथम अष्टकूट को सहज रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। इन अष्टकूटों में ३६ गुणों का योग है। १. वर्ण, २ वश्य, ३. तारा, ४. योनि, ५. राशिमैत्री, ६. गण, ७. भट, ८. नाड़ी। विवाह की अनुमति प्रदान करने हेतु १६.५ गुणों का साम्य अनिवार्य है, पर १८ गुणों का साम्य होना सहज दाम्पत्य जीवन को संकेतित करता है। २५ गुणों का मिलान उत्तम माना जाता है, ३० गुण मिलते हों तो मेलापक श्रेष्ठ सुखमय वैवाहिक जीवन को संरचना करता है, यदि ३० से ३६ गुणों के मध्य अष्टकूटों का साम्य हो तो असाधारण उत्तम ग्रह मेलापक की संज्ञा प्रदान की जाती है। इस मिलान से मंगली दोष, विषकन्या आदि दोष भी शिथिल पड़ जाते हैं तथा दम्पति, जीवन भर एक दूसरे के साथ प्रेमपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। यह ऋषियों मनीषियों तथा मेलापक विधान के विद्वानों का अभिमत है।

1.4 अष्टकूट

1. वर्णकूट-विचार—

समाज में प्रचलित वर्णों की भांति, राशियों में भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, चार वर्ण होते हैं। उच्च वर्ण में ऊँचे होने का भाव रहता है। जैसे क्षत्रिय वर्ण के मनुष्य पर यदि शूद्र वर्ण का मनुष्य प्रभाव दिखाना चाहे तो वह क्षत्रिय वर्ण का पुरुष, शूद्र वर्ण के पुरुष का दमन कर देगा। इसी प्रकार यदि ब्राह्मण या क्षत्रिय वर्ण की कन्या हो और शूद्र वर्ण का वर हो तो वह कन्या, उच्च वर्ण की होने के कारण, शूद्र वर्ण के वर को सदैव दबाती रहेगी। इस प्रकार स्त्री और पुरुष का जीवन गृहस्थाश्रम में सुखपूर्वक व्यतीत नहीं हो सकता। इसी समस्या से बचने के लिए "वर्ण" का विचार किया जाता है।

वर्णकूट का सम्बन्ध राशियों से है। कर्क, वृश्चिक तथा मीन राशियों का वर्ण ब्राह्मण, सिंह, धनु तथा मेष राशियों का वर्ण क्षत्रिय, कन्या, मकर तथा वृष राशियों का वर्ण वैश्य और तुला, कुम्भ तथा मिथुन का शूद्र वर्ण माना गया है।

कर्कान्त्य वृश्चिका विप्राःक्षत्राः सिंह धनुस्तुला ।
मेष युग्मषटा वैश्याः शूद्राः वृषमृगाङ्गनाः ।।

पुरुष का वर्ण, यदि कन्या की अपेक्षा उत्तम हो या समान हो तो अंक माना जाता है तथा वर्ण कूट का एक (१) अंक मिल जाता है। अर्थात् कन्या का वर्ण (कन्या की राशि का वर्ण) से हीन हो तो वर्ण कूट का अंक एक (१) अन्यथा शून्य (०) होगा। जैसे कन्या की राशि कर्क (ब्राह्मण वर्ण) और वर की राशि वृष (वैश्य वर्ण) हो तो वर्णकूट का अंक माना जायगा। जहाँ वर्णकूट का अंक शून्य हो वहाँ वर्णदोष माना जाता है। प्रकारान्तर से यह भी कहा जा सकता है कि वहाँ वर्णशुद्धि नहीं है।

वर्ण बोधक चक्र

वर्ण	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र
राशि	12/8/4	1/5/9	6/2/10	3/7/11

वर का वर्ण		ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र
कन्या का वर्ण	ब्राह्मण	1	0	0	0
	क्षत्रिय	1	1	0	0
	वैश्य	1	1	1	0
	शूद्र	1	1	1	1

महर्षि नारदजी का कथन है कि वर्ण दोष के रहने पर, कथमपि, विवाह न किया जाय अन्यथा पति की मृत्यु निश्चित है-

वर्णश्रेष्ठा तु या नारी वर्णहीनस्तु यः पुमान् विवाहं नैव कुर्वीत तस्या भर्त्ता न जीवति ।
(विवाहं यदि कुर्वीत तस्या भर्त्ता विनश्यति)

अर्थात् उच्च वर्ण की कन्या से हीन वर्ण के पुरुष के साथ विवाह न किया जाय अन्यथा उसके पति का विनाश निश्चित है। एक उदाहरण से देखें। यदि वर का जन्म आर्द्रा नक्षत्र के द्वितीय चरण मिथुन राशि में हुआ हो और कन्या का जन्म उ.भा. प्रथम चरण मीन में हुआ हो तो इनका मिलान करने पर मिथुन का शूद्र वर्ण और मीन राशि का ब्राह्मण वर्ण होता है। यहाँ कन्या उत्तम वर्ण की है। इसलिए वर्ण को शून्य अंक मिला। ऐसी स्थिति में विवाह होने पर पति को कष्ट या विदेश गमन अथवा पत्नी को गर्भपात होता है।

वर्णश्रेष्ठा तु या नारी वर्ण हीनस्तु या पुमान,
विवाहं नैव कुर्वीत तस्या भर्ता न जीवति,
यदि जीवति भर्ता च गर्भपातो विदेशगः ।।
वर्णश्रेष्ठां वर्णहीनो विवाहं नैव कारयेत्।
यदि कुर्यात्तु मोहेन सद्यो भर्ता विनश्यति ।।

अतः ऐसी स्थिति में विवाह नहीं करना चाहिए। और भी कहा गया है।

वर्णाधिका यदा नारी तस्या भर्ता न जीवति। अथवा जीविते तस्मिन् पुत्रोधनवर्जितः।।

अर्थात् उच्च वर्ण की कन्या का निम्न वर्ण के वर के साथ विवाह होने पर पति की मृत्यु होती है और यदि किसी तरह जीवित है तो उसकी वंशवृद्धि असंभव है।

वर्ण दोष – परिहार—

१. राशीश-मैत्री - (वर कन्या के राशीश परस्पर मित्र-मित्र या मित्र सम)

२. राशीश एकता (वर कन्या का एक ही राशीश)

३. नवमांशेश मैत्री - (वर कन्या के नवमांशेश परस्पर मित्र-मित्र अथवा मित्र सम)।

४. नवमांशेश एकता - (वर कन्या का एक ही नवमांशेश)

५. कन्या के राशीश का वर्ण, वर के राशीश के वर्ण से हीन हो।

2. वश्यकूट—

"वश्य" प्रकरण में विचार किया जाता है कि स्त्री, पति के अधीन, रहने वाली है या नहीं। वस्तुतः स्त्री का पति के अधीन रहना भी आवश्यक है, क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि स्त्री की देखभाल बचपन में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र, करता है।

पिता रक्षति कौमार्ये, भर्ता रक्षति यौवने पुत्रो रक्षति वृद्धत्वे न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।

इस प्रकार स्त्री कभी भी स्वतंत्र, स्वच्छन्द रूप से नहीं रह सकती, क्योंकि स्त्री कोमल-प्रेमिल-भावनाओं की प्रतिमूर्ति होती है। अनर्थ से बचने और गृहस्थाश्रम सुखपूर्वक व्यतीत करने के लिए "वश्य" का विचार किया जाना चाहिए।

"वश्य" का अर्थ है "वश में करने योग्य।" सिंह राशि को छोड़कर सब राशियाँ, पुरुष राशियों के अधीन होती हैं। अर्थात् सभी राशियाँ, सिंह की वश्य होती है किन्तु वृश्चिक राशि उनसे अलग होती है। शेष सभी राशियाँ, अपने स्वरूप के अनुसार वश्य अथवा अ-वश्य होती है।

मेष और वृष की चतुष्पद मिथुन, कन्या, तुला, धनु, कुम्भ की द्विपद, कर्क, मकर, मीन की जलचर, सिंह की वनचर और वृश्चिक की कीट जाति है। इन राशियों की, इनकी अपनी-अपनी जाति प्रकृति के अनुसार परस्पर मित्र-शत्रु, भक्ष्य-वश्य, वश्य-भक्ष्य, वश्य- वैर और वैर-भक्ष्य सम्बन्ध है। जैसे द्विपद राशियों का जलचर राशियों से वश्य-भक्ष्य, सिंह से वैर-भक्ष्य, चतुष्पदों से मैत्री-सम्बन्ध हैं। इसी प्रकार अन्य राशियों के सम्बन्ध भी, इन राशियों की प्रकृति के अनुसार समझ लेना चाहिए। राशियों के इसी सम्बन्ध को "वश्य" की संज्ञा दी गयी है। वर-कन्या की राशियों में मैत्री सम्बन्ध होने पर वश्य के गुण २, वश्य-वैर होने पर १ (एक), वश्य-भक्ष्य होने पर १/२ और वैर-भक्ष्य होने पर शून्य (०) होगा।

वैरभक्ष्ये गुणाभावो, द्वयोः सख्ये गुणद्वयम् ।
वश्य वैरं गुणस्त्वेको वश्यभक्ष्ये गुणार्धकः ।।

वश्य गुण –बोधक चक्र

वर का वश्य		चतुष्पद	सर्प	द्विपद	कीट	जलचर
कन्या का वश्य	चतुष्पद	2	0	1	1	1
	सर्प	0	2	0	0	1
	द्विपद	1	0	2	1	1/2
	कीट	1	0	0	2	1
	जलचर	1	1	1/2	1	2

वश्यकूट परिहार—

१. राशीश - मैत्री (दोनों के राशीश परस्पर मित्र-मित्र अथवा मित्र-सम)।

२. राशीश एकता दोनों का एक ही राशीश।

३. नवमांशेश मैत्री दोनों के नवमांशेश परस्पर मित्र-मित्र या मित्र-सम।

४. नवमांशेश - एकता दोनों का एक ही नवमांशेश।

५. योनि मैत्री - योनिकूट के ३ पाद गुण।

3. ताराकूट—

ताराकूट का सम्बन्ध नक्षत्रों से है। जन्म-नक्षत्र से गिनने पर तारा का ज्ञान होता है। जन्म सम्पद्, विपद्, क्षेम, प्रत्यरि साधक, वध, मैत्र, अतिमैत्र ये नक्षत्र ही ताराएँ होती हैं। ये शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के हैं। कन्या के नक्षत्र से वर के नक्षत्र तक गिनकर तथा उसी प्रकार वर के नक्षत्र से कन्या के नक्षत्र तक गिनकर अलग से ९ का भाग दें। शेष संख्यानुसार उपरोक्त ताराएँ होती हैं। जन्मनक्षत्र से गिनने पर तारा का ज्ञान होता है। ३,५,७ ताराएँ अशुभ हैं। शेष शुभ होती हैं। यदि दोनों प्रकार से शुभ तारा या ताराशुद्धि अथवा ताराकूट दोष का अभाव है। यदि एक प्रकार से "शुभ तारा" और दूसरे प्रकार से "अशुभ तारा" मिले तो ताराकूट अशुभ माना जाता है। ताराशुद्धि होने पर ताराकूट के ३ अंक मिलते हैं। और ताराकूट अशुभ (ताराकूट दोष) होने पर १, १/२ अंक मिलते हैं। ध्यान देने योग्य है कि दोनों प्रकार से अशुभ तारा कभी भी प्राप्त नहीं होते हैं।

तारा बोधक चक्र—

वर की तारा	1	2	3	4	5	6	7	8	9
कन्या की तारा 1	3	3	1।।	3	1।।	3	1।।	3	3
2	3	3	1।।	3	1।।	3	1।।	3	3
3	1।।	1।।	0	1।।	0	1।।	0	1।।	1।।
4	3	3	1।।	3	1।।	3	1।।	3	3
5	1।।	1।।	0	1।।	0	1।।	0	1।।	1।।
6	3	3	1।।	3	1।।	3	1।।	3	3
7	1।।	1।।	0	1।।	0	1।।	0	1।।	1।।
8	3	3	1।।	3	1।।	3	1।।	3	3
9	3	3	1।।	3	1।।	3	1।।	3	3

तारादोष परिहार—

१. राशीश मैत्री (दोनों के राशीशं परस्पर मित्र-मित्र या मित्रसम)

२. राशीश एकता (दोनों का राशीश एक हो)

३. नवमांशेश मैत्री (दोनों के नवमांशेश मित्र-मित्र या मित्रसम)

४. नवमांशेश एकता (दोनों का नवमांशेश एक हो)

4. योनिकूट—

योनिकूट का सम्बन्ध नक्षत्रों से है। अश्विनी आदि अट्ठाइस नक्षत्रों की अश्व गज, मेष, सर्प आदि योनियाँ मानी गयी हैं। योनियों का सम्बन्ध परस्पर पाँच प्रकार का है

१. स्वभाव (अपनी ही योनि)

२. मित्र

३. उदासीन

४. शत्रु
५. महाशत्रु।

वर और कन्या के नक्षत्रों की योनि एक हो अथवा दोनों के नक्षत्र भिन्न योनि के हों तो विवाह-सम्बन्ध शुभ माना गया है। यदि दोनों के नक्षत्र परस्पर उदासीन योनि के हो तो विवाह-सम्बन्ध सामान्य होता है। यदि वर कन्या के नक्षत्र परस्पर शत्रु योनि के हों तो अशुभ, और यदि महाशत्रु योनि के हैं तो महा-अशुभ होता है। इस सम्बन्ध में महर्षि अत्रि का कथन है-

एक योनिषु समपत्यै दम्पत्याः संगमः सदा
भिन्न योनिषु मध्यः स्यादरिभावो न चेत्तयोः ।
योनेरभावे नोद्वाहः स तु कार्यो वियोगदः ॥

अर्थात् एक या समान योनि के दम्पति के संयोग से सदैव सुख तथा सम्पत्ति होगी। भिन्न योनि के वर-कन्या का विवाह मध्यम श्रेणी का होता है। यदि वर-कन्या के नक्षत्रों की योनियों में परस्पर वैर भाव है तो वियोग अथवा कष्ट अवश्य होगा। योनि वैर को महादोष माना गया है।

योनि ज्ञान विधि-

अश्विनी, शतभिषा की अश्व योनि; स्वाति, हस्त की महिष योनि;
पूर्वाभाद्रपद, धनिष्ठा की सिंह योनि; भरणी, रेवती की गज योनि;
कृत्तिका, पुष्य की मेष (मेढ़ा) योनिः श्रवण, पूर्वाषाढ़ा की वानर योनि;
उत्तराषाढ़ा, अभिजित् की नकुल योनि; रोहिणी, मृगषिरा की सर्प योनि;
ज्येष्ठा, अनुराधा की मृग योनि; मूल, आर्द्रा की श्वान योनि;
पुर्नवसु, आष्लेषा की बिलाव योनि; पूर्वाफाल्गुनी, मघा की मूषक योनि;
विषाखा, चित्रा की व्याघ्र योनि उत्तराफाल्गुनी तथा उत्तराभाद्रपद की गौ योनि होती है।

योनि सम्बन्ध में गुणों की गणना निम्नलिखित प्रकार से होती है-

१. दोनों के नक्षत्र स्वभाव (एक ही) योनि के हों तो योनिकूट के गुण. - 4
२. दोनों के नक्षत्र मित्र योनि के हों तो योनिकूट के गुण - 3
३. दोनों के नक्षत्र उदासीन योनि के हों तो योनिकूट के गुण - 2
४. दोनों के नक्षत्र शत्रु योनि के हों तो योनिकूट के गुण - 1
५. दोनों के नक्षत्र महाशत्रु योनि के हों तो योनिकूट के गुण - 0

योनी गुण बोधक चक्र

वर योनी		अश्व	गज	मेष	सर्प	श्वान	विलाव	मूषक	गौ	महिष	व्याघ्र	मृग	वानर	नकुल	सिंह
कन्या	अश्व	4	2	3	2	2	3	3	3	0	1	3	2	2	1
की	गज	2	4	3	2	2	3	3	3	3	1	3	2	2	0
योनी	मेष	3	3	4	2	2	3	3	3	0	1	3	0	2	1
	सर्प	2	2	2	4	2	1	1	2	2	2	2	1	0	2
	श्वान	2	2	2	2	4	1	2	2	2	2	0	2	2	2
	वि	3	3	3	1	1	4	0	3	3	2	3	2	2	2
	लाव	3	3	3	1	2	0	4	3	3	2	3	2	1	1
	मूष	3	3	3	2	2	3	3	4	3	0	3	2	2	1
	क	0	3	3	2	2	3	3	3	4	1	1	2	2	1
	गौ	1	1	1	2	2	2	2	1	1	4	1	2	2	1

	महि ष व्या घ्र मृग वानर नकु ल सिंह	3 2 2 1	3 2 2 0	3 0 2 1	2 1 0 2	0 2 2 2	3 2 2 2	2 2 1 2	3 2 2 1	3 2 2 1	1 2 2 2	4 2 2 1	2 4 2 2	2 2 4 2	3 2 2 4

योनिदोष के परिहार—

१. राशीश मैत्री (दोनों के राशीश परस्पर मित्र-मित्र या मित्रसम)
२. राशीश एकता (दोनों का एक ही राशीश)
३. नवमांशेश मैत्री (दोनों के नवमांशेश परस्पर मित्र-मित्र या मित्र-सम)
४. भकूट-शुद्धि (सद्भकूट)
५. वश्य-शुद्धि (वश्यगुण १ या २ होने पर)

5. राशीश (ग्रह) मैत्री कूट—

इस कूट का सम्बन्ध राशियों से है। यदि वर-वधू दोनों की राशियों का एक ही स्वामी हो अथवा दोनों की राशियों के स्वामी परस्पर मित्र-मित्र हों तो विवाह-सम्बन्ध अत्युत्कृष्ट माना जाता है। यदि मित्र-सम (एक दूसरे का मित्र तथा दूसरा उसका सम) हों तो उत्कृष्ट विवाह-सम्बन्ध होगा। यदि दोनों की राशियों के स्वामी सम-सम हों तो विवाह-सम्बन्ध सामान्य होगा।

यदि दोनों की राशियों के स्वामी मित्र-शत्रु हों तो विवाह सम्बन्ध निकृष्ट माना जाता है। यदि सम-शत्रु हों तो निकृष्टतर विवाह सम्बन्ध होगा और यदि दोनों की राशियों के स्वामी शत्रु-शत्रु हों तो निकृष्टतम विवाह सम्बन्ध माना जाता है।

ग्रह –मैत्री गुण- बोधक चक्र

वर राशि स्वामी		सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गु रु	शुक्र	शनि
कन्या राशि स्वामि	सूर्य चन्द्र मंगल बुध गुरु शुक्र शनि	5 5 5 4 5 0 0	5 5 4 1 4 ॥ ॥	5 4 5 ॥ 5 3 ॥	4 1 ॥ 5 ॥ 5 4	5 4 5 । । 5 । । 3	0 ॥ 3 5 ॥ 5 5	0 ॥ ॥ 4 3 5 5

राशीश मैत्री कूट के गुणों की गणना

१. दोनों के राशीश एक हों तो गुण......................................5
२. दोनों के राशीश मित्र-मित्र हों तो गुण..............................5

३. दोनों के राशीश मित्र सम हों तो गुण................................4

४. दोनों के राशीश सम-सम हों तो गुण................................3

५. दोनों के राशीश मित्र-शत्रु हों तो गुण................................1

६. दोनों के राशीश सम-शत्रु हों तो गुण.................................1/2

७. दोनों के राशीश शत्रु-शत्रु हों तो गुण.................................0

राशीश-मैत्रीदोष के परिहार

१. नवमांशेष मैत्री (दोनों के नवमांशेष परस्पर मित्र-मित्र या मित्र सम)।

२. नवमांशेष एकता (दोनों का नवमांशेष एक ही हो)।

३. दोनों की राशियाँ भिन्न-भिन्न और नक्षत्र एक हों।

४. सद्भकूट हो।

6. गणकूट—

गण तीन होते हैं - देव, मनुष्य और राक्षस। मनुष्य को, यदि ज्ञात हो जाय कि वर, मनुष्य और कन्या, राक्षस गण की है तो, राक्षस के स्वभाव को स्मरण कर मनुष्य यह निश्चित रूप से सोच लेगा कि कन्या, वर का विनाश कर देगी। यदि वर-कन्या, देवगण तथा राक्षसगण के होंगे तो दोनों मे सदैव लड़ाई होगी। समान गण में प्रेम तथा सौमनस्य होगा। वर-कन्या राक्षसगण की हानि से बच सकें और उनमें परस्पर प्रेम हो, इसलिए गणकूट पर विचार किया जाता है।

रक्षोनरामरगणाः क्रमतो मघाहिवस्विन्द्रमूलवरुणानलतक्षराषाः।
पूर्वोत्तरात्रयविधात्यमेशभानि मैत्रादितीन्दुहरि पौष्णमरुल्लमूनि ।।

देवगण, मनुष्यगण तथा राक्षसगण- इन तीनों को, मनुष्य के तीन गुणों-सत्व, रजस तथा तमस् का प्रतीक माना गया है। इनका सम्बन्ध जन्मनक्षत्रों से है, जिसे निम्नांकित गण-बोधक चक्र द्वारा स्पष्ट किया गया है

गण बोधक चक्र

गण	नक्षत्र
देव	आश्वि. मृग. पुन. पुष्य. हस्त. स्वाती. अनु. श्रवण. रेव.
मनुष्य	भरणी. रोहि. आर्द्रा. पूफा. उफा. पूषा. उषा. पूभा. उभा.
राक्षस	कृत्ति. आश्लेषा. मघा. चित्रा. विशा. ज्येष्ठा. मूल. धनिष्ठा. शत.

देवगण-

देवगण में उत्पन्न जातक स्वभावतः सात्विक प्रवृत्ति का होता है। उसमें भावुकता, उदारता, सहनशीलता, शालीनता, उदात्तभाव, प्रेम, उपकार की भावना, दया, धैर्य, आत्मविश्वास तथा बन्धुत्व की भावना पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है।

मनुष्य गण-

मनुष्य गण में उत्पन्न व्यक्ति चतुर, चैतन्य, साहसी, दूरदर्शी, स्वाभिमानी, सौन्दर्यप्रेमी, व्यवहारकुशल, प्रभावशाली तथा यशस्वी होता है।

राक्षसगण-

राक्षसगण में व्यक्ति क्रोधी, स्वार्थी, धूर्त, दुराग्रही, क्षणिकमति, बलवान, दम्भी, कटुभाषी, परनिन्दक तथा आत्मश्लाघी होता है। स्वार्थ के लिए, दूसरों की बड़ी हानि कर सकता है। उग्रता एवं एकाधिकार में दृढ़ विश्वास रखता है।

वर और कन्या दोनों का गण समान है तो विवाह शुभ होता है। देवगण तथा मनुष्य गण के नक्षत्र वाले वर-कन्या का विवाह भी शास्त्रकारों ने शुभ माना है। देवगण का राक्षसगण तथा मनुष्य गण का राक्षसगण के साथ विवाह शुभ नहीं माना गया है।

गण गुण-बोधक चक्र

गण वर		देव	मनुष्य	राक्षस
कन्या	देव	6	5	1
गण	मनुष्य	6	6	0
	राक्षस	1	0	6

१. वर-कन्या के नक्षत्रों के गण क्रमशः देव-देव हों तो गुण.........................6

२. वर-कन्या के नक्षत्रों के गण क्रमशः मनुष्य-मनुष्य हों तो गुण.................6

३. वर-कन्या के नक्षत्रों के गण क्रमशः मनुष्य-देव हों तो गुण.....................6

४. वर-कन्या के नक्षत्रों के गण क्रमशः राक्षस-राक्षस हों तो गुण.................6

५. वर-कन्या के नक्षत्रों के गण क्रमशः देव-मनुष्य हों तो गुण......................5

६. वर-कन्या के नक्षत्रों के गण क्रमशः देव-राक्षस हों तो गुण...................1

७. वर-कन्या के नक्षत्रों के गण क्रमशः राक्षस-देव हों तो गुण...................0

८. वर-कन्या के नक्षत्रों के गण क्रमशः मनुष्य-राक्षस हों तो गुण................0

गण दोष परिहार-

१. राशीश मैत्री (दोनों के राशीश परस्पर मित्र-मित्र या मित्रसम)

२. राशीश एकता (दोनों का एक ही राशीश)

३. नवमांशेश मैत्री (दोनों के नवमांशेश परस्पर मित्र-मित्र अथवा मित्र-सम)

४. नवमांशेश - एकता (दोनों का एक ही नवमांशेश)

५. सद्भकूट

७. भकूट या राशिकूट

भकूट जानने की विधि-

कन्या की जन्मराशि से वर की जन्मराशि तक गिनना चाहिए तथा इसी प्रकार वर की जन्मराशि से कन्या की जन्मराशि तक भी गिनना चाहिए। यदि गिनने से दोनों की राशि छठी और आठवीं हो तो दोनों की मृत्यु, नवमी और पाँचवीं हो तो सन्तान की हानि तथा दूसरी और बारहवीं हो तो निर्धन होते हैं। इससे भिन्न राशियों में दोनों सुखी रहते हैं। भकूट का तात्पर्य वर एवं कन्या की राशियों के परस्पर अन्तर से है। यह छह प्रकार का होता है-

१. प्रथम-सप्तक	२. द्वितीय-द्वादश
३. तृतीय-एकादश	४. चतुर्थ-दशम
५. पंचम-नवम	६. षडष्टक

इनमें द्विर्द्वादश, नवपंचम एवं षडष्टक अशुभ भकूट है तथा शेष, प्रथम सप्तक, तृतीय एकादश और चतुर्थ-दशम शुभ भकूट होते हैं। भकूट क़ो जानने की सरल विधि यह है कि वर की राशि से कन्या की राशि तक तथा कन्या की राशि से वर की राशि तक गणना करनी चाहिए। यदि दोनों की राशि आपस में दूसरे और बारहवें स्थान पर पड़ती हों तो द्विद्वादश भकूट होता है। यदि इनकी राशि परस्पर नवीं और पाँचवी पड़ती है तो नव-पंचम भकूट होता है। और यदि वर-कन्या की

राशियाँ परस्पर छठे एवं आठवें स्थान पर होती हैं तो षडष्टक भकूट होता है। मेलापक में इन तीनों भकूटों को बहुत महत्त्व दिया गया है।

मृत्युः षष्ठाष्टके ज्ञेयोऽपत्यहानिर्नवात्मजे ।
द्विर्द्वादशे निर्धनत्वं द्वयोरन्यत्र सौख्यकृत् ।।

नक्षत्र-मेलापक में द्विद्वादश , नवपंचम तथा षडष्टक में तीनों भकूट अशुभ एवं त्याज्य माने गये हैं।

द्विद्वादश-

दूसरा स्थान धन तथा बारहवाँ स्थान व्यय का होवा है। द्विर्द्वादश भकूट में एक ही राशि से, दूसरे की राशि बारहवें सथान पर पड़ती है जो इस बात का प्रतीक है इन दोनों के व्यय में अधिक वृद्धि होगी। तात्पर्य यह है कि द्विद्वादश भकूट, भावी जीवन में व्यय को बढ़ाकर आर्थिक संतुलन को बिगाड़ देता है।

नवपंचम-

नवपंचम भकूट, दाम्पत्य सम्बन्धों में विरक्ति तथा सन्तान की हानि करता है। वर-वधू की राशियों, जब परस्पर पाँचवें तथा नवें स्थान पर हों तो धार्मिक भावना, तप-त्याग, दार्शनिक दृष्टि, अहं की भावना दाम्पत्य सम्बों में दूरी अथवा वैराग्य उत्पन्न कर देती है। दाम्पत्य जीवन को सुखमय बनाने के लिए अनुरक्ति, आकर्षण एवं आसक्ति का होना अनिवार्य है। तात्पर्य यह है कि अनुराग आकर्षण एवं आसक्ति के बिना, भोग तथा सम्भोग असम्भव है। इसीलिए विक्ति उत्पन्न करने वाले नवपंचम भकूट का परिणाम, सन्तान का अभाव बताया गया है।

षडष्टक-

षडष्टक भकूट एक महादोष है। क्योंकि छठा स्थान शत्रुता का और आठवाँ स्थान मृत्यु का होता है। यदि वर-कन्या के बीच षडष्टक भकूट है तो भावी जीवन में शत्रुता, विवाद, कुलह होते रहते हैं। पार्थक्य, हत्या अथवा आत्महत्या की अधिकांश घटनाएँ, षडाष्टक भकूट की देन होती है। इसलिए षडष्टक महादोष है और मेलापक में सर्वथा त्याज्य है।

शेष तीन भकूट - तृतीय-एकादश-चतुर्थ दशम और प्रथम-सप्तम शुभ होते हैं।

प्रथम सप्तक भकूट में दाम्पत्य सुख तथा अच्छी सन्तान होती है।

तृतीय एकादश में आर्थिक स्थिति एवं जीवन स्तर उन्नत एवं समृद्धि पूर्ण होता है।

चतुर्थ पंचम भकूट में, विवाह करने से दमति में अतिशय प्रेम बना रहता है।

वर राशि		मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
कन्या राशि	मेष	7	0	7	7	0	0	7	0	0	7	7	0
	वृष	0	7	0	7	7	0	0	7	0	0	7	7
	मिथुन	7	0	7	0	7	7	0	0	7	0	0	7
	कर्क	7	7	0	7	0	7	7	0	0	7	0	0
	सिह	0	0	7	0	7	0	7	7	0	0	7	0
	कन्या	0	0	7	7	0	7	0	7	7	0	0	7
	तुला	7	0	0	7	7	0	7	0	7	7	0	0
	वृश्चिक	0	7	0	0	7	7	0	7	0	7	7	0

	धनु	0	0	7	0	0	7	7	0	7	0	7	7
	मकर	7	0	0	7	0	0	7	7	0	7	0	7
	कुम्भ	7	7	0	0	7	0	0	7	7	0	7	0
	मीन	0	7	7	0	0	7	0	0	7	7	0	7

भकूट दोष परिहार—

१. राशीश मैत्री (दोनों के राशीश परस्पर मित्र-मित्र या मित्रसम)

२. राशीश एकता (दोनों का एक ही राशीश)

३. नवमांशेश मैत्री (दोनों के नवमांशेश परस्पर मित्र-मित्र या मित्र-सम)

४. नवमांशेश - एकता (दोनों का एक ही नवमांशेश)

8 नाडी-

ज्येष्ठार्यम्णेशनीराधिपभयुगयुगं दास्रभं चैकनाडी
पुष्येन्दुत्वाष्ट्रमित्रान्तकवसुजलभं योनिबुध्ने च मध्या।
वाय्वग्निव्यालविश्वोडुयुगयुगमथो पौष्णभं चापरास्या
छम्पत्योरेकनाड्यं परिणयनमसन्मध्यनाड्वं हि मृत्युः ।।

आदि मध्य और अन्त्य नाड़ियों के नक्षत्र और परिणाम ज्येष्ठा, मूल, आर्द्रा, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, शततारा, पूर्वाभाद्रपद और अश्विनी नक्षत्रों की गणना आदि संज्ञक नाड़ी में, पुष्य, मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, भरणी, धनिष्ठा, पूर्वाषाढ़, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराभाद्र नक्षत्रों मध्य नाड़ी में और स्वाती, विशाखा, कृत्तिका, रोहिणी, आश्लेषा, मघा, उत्तराषाढ़, श्रवण और रेवती इन नौ नक्षत्रों की गणना अन्त्य नाड़ी में होती है।

वर-कन्या दोनों के नक्षत्र एक नाड़ी में (वर नक्षत्र आदि कन्या नक्षत्र भी आदि नाड़ी में, एवं वर नक्षत्र मध्य नाड़ी कन्या नक्षत्र भी मध्य नाड़ी में और वर नक्षत्र अन्त्य नाड़ी कन्या नक्षत्र भी अन्त्य नाड़ी में) होने से विवाह अशुभ होता है। जैसे दो व्यक्तियों के बैठने के लिए (एक आसन ठीक नहीं) दो आसन होने चाहिए वैसे ही दोनों वर-कन्या की एक नाड़ी उचित नहीं होती।

	वर नाडी			
	नाडी	आदि	मध्य	अन्त्य
कन्या नाडी	आदि	0	8	8
	मध्य	8	0	8
	अन्त्य	8	8	0

ब्राह्मणादिक वर्ण विशेष में अन्त्य नाड़ी के कहीं पर परिहार वचन भी प्राप्त होते हैं किन्तु दोनों की एक नाड़ी का विवाह अशुभ होते हुए मध्य नाड़ी का विवाह तो मृत्युकारक ही बताया गया है। अहल्या देश में चतुर्नाड़ी, पाञ्चाल में पञ्चनाड़ी का दोष कहा गया है किन्तु त्रिनाड़ी दोष (आदि मध्य अन्त्य) सर्वदेशों में वर्जित होता है। सर्व देश से तात्पर्य है कि अहल्या और पाञ्चाल देशों को छोड़कर सर्वत्र त्रिनाड़ी दोष मान्य होता है।

गुरु-शिष्य की परस्पर की एक नाड़ी में द्वेष, मन्त्र और साधक की परस्पर की एक नाड़ी में रोग, देवता और पूजक की परस्पर एक नाड़ी होने से पूजक की मृत्यु हो जाती है।

वर-कन्या की एक नाड़ी होने पर उस नक्षत्र के चरणों में यदि परस्पर वेध न हो तों नाड़ीदोष परिहार हो जाता है।

वर-कन्या दोनों के एक नक्षत्र में, वर का जन्मनक्षत्र प्रथम चरण में, कन्या का जन्म चतुर्थ चरण में अथवा वर का जन्म क्रमशः द्वितीय या तृतीय चरण में एवं कन्या का जन्म तृतीय या द्वितीय में हो तो एक ही नक्षत्र में एक ही नाड़ी रहते हुए न्सूक्ष्म चरण वेध दोष न होने से नाड़ीदोष नहीं होता।

वर-कन्या में वर का नक्षत्र ज्येष्ठा ३ चरण, और कन्या का नक्षत्र अश्विनी १ चरण है तो चरणवेध चक्र से यहाँ नक्षत्रवेध होते हुए भी चरणवेध नहीं होता है। ऐसी स्थिति में नाड़ीदोष ग्राह्य है।

कुण्डली मिलाने के अन्य नियम-

1. वर के सप्तम स्थान का स्वामी जिस राशि में हो वही राशि कन्या की हो तो दाम्पत्य-जीवन सुखमय होता है।

2. यदि कन्या की राशि वर के सप्तमेश को उच्च स्थान हो तो दाम्पत्य-जीवन में प्रेम बढ़ता है। सन्तान की प्राप्ति और सुख होता है।

3. वर के सप्तमेश का नीच स्थान यदि कन्या की राशि हो तो भी वैवाहिक जीवन सुखी रहता है।

4. वर का शुक्र जिस राशि में हो, वही राशि यदि कन्या की हो तो विवाह कल्याणकारी होता है।

5. वर की सप्तमांश राशि यदि कन्या की राशि हो तो दाम्पत्य-जीवन सुखकारक होता है। सन्तान, ऐश्वर्य की वृद्धि होती है।

6. वर का लग्नेश जिस राशि में हो, वही राशि कन्या की हो या वर के चन्द्रलग्न से सप्तम स्थान में जो राशि हो वही राशि यदि कन्या की हो तो दाम्पत्य-जीवन प्रेम और सुखपूर्वक व्यतीत होता है।

7. वर की राशि से सप्तम स्थान पर जिन-जिन ग्रहों की दृष्टि हो, वे ग्रह जिन-जिन राशियों में बैठे हों, उन राशियों में से कोई भी राशि कन्या की जन्मराशि हो तो दम्पती में अपूर्व प्रेम रहता है।

8. जिन कन्याओं की जन्मराशि वृष, सिंह, कन्या या वृश्चिक होती है, उनको सन्तान कम उत्पन्न होती है।

9. यदि पुरुष की जन्मकुण्डली की षष्ठ और अष्टम स्थान की राशि कन्या की जन्मराशि हो तो दम्पती में परस्पर कलह होता है।

1.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के द्वारा आप यह समझने में सहायक हो सके होंगे की विवाह में अष्टकुटों का क्या महत्व है, और यह क्यों आवश्यक है। मेलापक का उद्देश्य है कि वर एवं वधु दोनों के मध्य आपसी प्रेम- सद्भाव एवं एक दूसरे के मध्य आदर-सत्कार की भावना तथा विचारों का मेल-जोल बना रहे। ज्योतिष शास्त्र भविष्य का सूचक शास्त्र है। जीवन में प्रायः मानव अपने जन्म जन्मान्तरों में किये शुभाशुभ कर्मों के फलस्वरूप सुख एवं दुःख को प्राप्त करता है। जिसको दशा के माध्यम से जाना जाता है इसलिए कब जीवन का स्वर्णमयी युग आने वाला है और उसमें कब कष्टों का सामना करना पड़ेगा। विवाह के पूर्व वर-कन्या की जन्मपत्रियों को मिलाने का आशय केवल परम्परा का निर्वाह नहीं है, किन्तु भावी दम्पति के स्वभाव, गुण, प्रेम और आचार-व्यवहार के सम्बन्ध में ज्ञात करना है। जब तक समान आचार-व्यवहार वाले वर-कन्या नहीं होते तब तक दाम्पत्य जीवन सुखमय नहीं हो सकता है। जन्मपत्रियों की मेलनपद्धति वर-कन्या के

स्वभाव, रूप और गुणों को अभिव्यक्त करती है। भारतीय संस्कृति में प्रेमपूर्वक विवाह कल्याणकारी नहीं माना गया है किन्तु दो अपरिचित व्यक्तियों का जीवन-भर के लिए गठबन्धन मान दिया जाता है। यदि ऐसी परिस्थिति में उन दोनों के स्वभाव के बारे में संचिक ज्योतिष द्वारा कुछ जान लिया जाये तो अत्यन्त उपकार उन व्यक्तियों का हो सकता है। अतएव इस वैज्ञानिक मेलन-पद्धति की उपेक्षा करना नितान्त अनुचित है। ज्योतिष नक्षत्र, योग, ग्रह राशि आदि के तत्त्वों के आधार पर व्यक्ति के स्वभाव, गुण का निश्चय करता है। वह बतलाता है कि अमुक नक्षत्र, ग्रह व राशि के प्रभाव से उत्पन्न नारी के साथ सम्बन्ध करना अनुकूल है अथवा प्रतिकूल। या प्रभावशामक सामंजस्य के होने से दोनों के स्वभावगुण में समानता है। अतएव मेलन-पद्धति द्वारा वर-कन्या की जन्मपत्रियों का विचार करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न-

1. नाडी कितने प्रकार की होती है।

क. दो ख. चार ग. तीन घ. पांच

2. भकूट होते है।

क. तीन ख. चार ग. दो घ. पांच

3. गण होते है।

क. तीन ख. चार ग. दो घ. पांच

4. वर्णों की संख्या है

क. तीन ख. पांच ग. दो घ. चार

5. अश्विनी, शतभिषा नक्षत्र की योनि होती है।

क. अश्व ख. महिष ग. व्याघ्र घ. विलाव

6. रोहिणी, मृगषिरा नक्षत्र की योनि होती है।

क. अश्व ख. सर्प ग. व्याघ्र घ. विलाव

1.6 अभ्यासप्रश्नों का उत्तर

1. ग 2. क 3. ख 4. घ 5. क 6. ख

1.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

वृहज्जातकम् - चौखम्भा प्रकाशन

वृहत्पराशरहोराशास्त्र - चौखम्भा प्रकाशन

ज्योतिष सर्वस्व – चौखम्भा प्रकाशन

चमत्कार चिंतामणि- चौखम्भा प्रकाशन

भावप्रकाश - चौखम्भा प्रकाशन

सरावली- चौखम्भा प्रकाशन

मानसागरी- चौखम्भा प्रकाशन

1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. अष्टकूट क्या है ? इसका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

2. मेलापक का विचार करते हुये,अष्टकूट के महत्व पर प्रकाश डालिये।

इकाई.2 विवाह प्रकार एवं गुण-दोष विचार

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 विवाह परिचय

2.4 विवाह प्रकार एवं गुण-दोष विचार

2.5 सारांश

2.6 अभ्यासप्रश्नों का उत्तर

2.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई खण्ड तीन की मेलापक विचार के द्वितीय इकाई विवाह के प्रकार एवं गुण-दोष विचार नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। भारतीय सनातन परम्परा में विवाह को मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है। वैवाहिक बन्धन जीवन का सबसे महत्वपूर्ण बन्धन है। विवाह प्रेम तथा स्नेह पर आधारित एक बन्धन है। जिस पर सम्पूर्ण परिवार का भविष्य निर्भर करता है इसलिए इसका विचार बहुत ही महत्वपूर्ण है। सृष्टि चक्र को अनवरत चलाने के उद्देश्य से विवाह संस्कार का जन्म दिया गया विवाह संस्कार का उद्देश्य यह था कि स्त्री और पुरूष के मध्य नैतिक सम्बन्ध स्थापित हो ताकि समाज में स्वस्थ वातावरण का निर्माण हो। इन सभी विषयों की जानकारी आप को बहुत ही सरलतापूर्वक प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् प्राप्त होगी।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- विवाह के महत्व को समझ सकेंगें।
- विवाह कितने प्रकार के होते है, इसे जान पायेंगें।
- विवाह के गुण-दोषों को आसानी से समझ पायेंगें।

2.3 विवाह परिचय

विवाह, जिसे शादी भी कहा जाता है, दो लोगों के बीच एक सामाजिक या धार्मिक मान्यता प्राप्त मिलन है विवाह मानवसमाज की अत्यंत महत्वपूर्ण प्रथा या समाजशास्त्रीय संस्था - है। यह समाज का निर्माण करने वाली सबसे छोटी इकाई है। एक-दूसरे से पूर्णतः अपरिचित वर-वधू को सुखद दाम्पत्य प्रदान करने में, ज्योतिष विज्ञान की सर्वाधिक उपयोगी भूमिका है। पूर्णतः अपरिचित वर-वधू जब दाम्पत्य के सोपान पर पहला पद रखते हैं, तभी उन्हें एक-दूसरे के स्वभाव, व्यवहार का आभास होता है, किस बात पर पत्नी की क्या प्रतिक्रिया होगी? कब वह प्रसन्न होगी और कब रुष्ट? पति के आचरण में आत्मीयता है या शुष्कता ? पति प्रातः विलम्ब तक सोता है या प्रातःकाल शीघ्र जागकर व्यस्त दिनचर्या में संलग्न हो जाता है। पति को किस तरह का व्यवहार हर्षित करता है और कौन सी बात उसे उग्र कर देती है? ऐसी सहस्रों वास्तविकताएँ तथा प्रतिक्रियाएँ, वर-वधू को विवाह के उपरान्त एक-दूसरे के सान्निध्य में आकर ही ज्ञात होती हैं। विवाह से पूर्व किसी को भी यह ज्ञात नहीं होता है कि विवाहोपरान्त एक-दूसरे का साथ कैसा प्रतीत होगा? विवाहोपरान्त मानसिक संरचना, प्रतिक्रियात्मक चिन्तन तथा अभिनव स्थितियों, परिस्थितियों में आमूल परिवर्तन प्रस्फुटित होता है जिसकी अनुकूलता, एकरूपता तथा शुभता ही सुखमय वैवाहिक जीवन का आधार है। विरोधात्मक प्रतिक्रिया तथा नकारात्मक विचार-विमर्श, उत्तेजना, उग्रता, व्यग्रता, संशय तथा भययुक्त आशंका का समावेश वर-वधू के दाम्पत्य जीवन में प्रवेश कर जाय तो परिणय सम्पुष्ट न होकर खण्डित हो जाता है। पार्थक्य, परित्याग, हिंसा, कलह, तर्क-वितर्क, वाद-विवाद, आघात-प्रतिघात आदि जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण तथा श्रेष्ठतम सुख, हर्षोल्लास और आनन्द के स्रोत विवाह को ध्वस्त कर देते हैं। ज्योतिष विज्ञान की सर्वाधिक उपयोगी देन है जिसके सविधि उपयोग और प्रयोग से दाम्पत्य जीवन, प्रेम विश्वास, समर्पण तथा अटूट सम्बन्धों तथा आत्मीयता की भावना से अभिसिंचित हो

उठता है। सभी नकारात्मक स्थितियाँ, परिस्थितियाँ तथा परस्पर विरोधी विचारों का शमन होता है और स्वार्थपरता में विरोधाभास कदापि उत्पन्न नहीं होता तथा परस्पर प्रीति के साथ वंश परम्परा का विस्तार-प्रसार होता है।

1.4 विवाह प्रकार

मुख्यतः विवाह आठ प्रकार के माने गये है, उनमे से भी प्रथम चार विवाह शुभ व इनमे भी परम दो को अत्यंतशुभ की श्रेणी में रखा गया है।

1. ब्रह्म विवाह, 2. दैव विवाह, 3. आर्ष विवाह, 4. प्राजापत्य विवाह, 5. गांधर्व विवाह, 6. आसुर विवाह, 7. राक्षस विवाह, 8. पैशाच विवाह

1. ब्रह्म विवाह

ब्रह्म विवाह को सबसे श्रेष्ठ और आदर्श विवाह माना गया है। इस प्रकार के विवाह में कन्या का विवाह उस वर से होता है जो विद्वान, चरित्रवान और योग्य हो। इस विवाह में कोई लेनदेन या - यह विवाह पूरी तरह से धार्मिक और सामाजिक नियमों के अंतर्गत होता है। दहेज नहीं होता। इसमें कन्या का पिता वर को अपनी कन्या प्रदान करता है, यह कहते हुए कि वह धर्म का पालन करे और जीवन में उच्च आदर्शों को अपनाए।

2. दैव विवाह

दैव विवाह धार्मिकता का प्रतीक है। इस प्रकार के विवाह में कन्या को यज्ञ या धार्मिक अनुष्ठान करने वाले ब्राह्मण को पत्नी रूप में दान दिया जाता है। यह विवाह तब प्रचलित था जब यज्ञ और धार्मिक अनुष्ठानों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। हालांकि, इसे ब्रह्म विवाह से कमतर माना गया है।

3. आर्ष विवाह

आर्ष विवाह में वर पक्ष कन्या के पिता को गाय या अन्य उपहार देकर विवाह करता है। यह विवाह ऋषियों और मुनियों द्वारा स्वीकार किया गया था, क्योंकि इसमें दहेज की अवधारणा नहीं थी, बल्कि गाय जैसे उपयोगी वस्त्र का आदानप्रदान होता था। इसे श्रेष्ठता में ब्रह्म और दैव - रखा गया है। विवाह से नीचे

4. प्राजापत्य विवाह

यह विवाह समाज में पारिवारिक परम्परओं का पालन करते हुये किया जाता है।जिसमें कन्या की सहमती होती है ।और विवाह का उद्देश्य जीवन के धर्म-अर्थ और मोक्ष की प्राप्ति में सहयोग करना होता है। इस प्रकार के विवाह में पारिवारिक समरसता और परम्परा का विशेष महत्व होता है।

5. गांधर्व विवाह

गांधर्व विवाह को प्रेम विवाह कहा जा सकता है। इसमें वर और कन्या दोनों की आपसी सहमति से विवाह होता है। यह विवाह नियमों और परंपराओं से परे होता है और प्रेम को प्राथमिकता देता है। हालांकि, वैदिक काल में इसे समाज की दृष्टि से श्रेष्ठ नहीं माना गया, लेकिन इसे मान्यता दी गई थी।

6. आसुर विवाह

इस प्रकार का विवाह तब होता है जब वर, कन्या के परिवार को धन देकर विवाह करता है। यह विवाह भौतिकता और लेनदेन पर आधारित है-, इसलिए इसे निम्न स्तर का माना गया है।

7. राक्षस विवाह

राक्षस विवाह में बल और सामर्थ्य का उपयोग होता है। यह तब होता है जब युद्ध में विजेता राजा या योद्धा पराजित पक्ष की कन्या का बलपूर्वक अपहरण करके उससे विवाह करता है। इसे धर्म और सामाजिक दृष्टि से अनुचित माना गया है।

8. पैशाच विवाह

पैशाच विवाह को सबसे अधम और अनैतिक विवाह माना गया है। इसमें वर कन्या को धोखे से, नशे की अवस्था में, या बलपूर्वक प्राप्त करता है। यह विवाह घोर पाप माना गया है और इसे समाज में कभी भी स्वीकार्यता नहीं मिली।

गुण-दोष विचार—

१. ज्येष्ठा नक्षत्र में जन्म : वैवाहिक संत्रास की आशंका

ज्येष्ठ जातिका या ज्येष्ठ मास में किया गया विवाह 'ज्येष्ठ द्वन्द्व' या द्विज्येष्ठ' विवाह कहलाता है। इस विवाह को मुहूर्तकारों ने मध्यम (सामान्य फल वाला-न अच्छा न बुरा) लिखा है। कुछ मुहूर्तकार तो इस 'ज्येष्ठ द्वन्द्व' विवाह को मान्यता नहीं देते, वे इसका निषेध 1 करते हैं। कुछ मुहूर्तकार का मत है कि कृतिका गत सूर्य के काल को छोड़कर शेष ज्येष्ठ मास में 'ज्येष्ठ द्वन्द्व' का विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं है।

ज्येष्ठ जातक और ज्येष्ठ जातिका का परस्पर विवाह ज्येष्ठ मास में किया जाए तो उस विवाह को 'त्रिज्येष्ठ' विवाह कहा जाता है। त्रिज्येष्ठ विवाह की सभी मुहूर्तकारों ने निन्दा की है। कुछ दैवज्ञों का मत है कि कृतिकागत सूर्य के काल को छोड़कर ज्येष्ठ मास में ज्येष्ठ जातिका व ज्येष्ठ जातक का भी परस्पर विवाह किया जा सकता है। लेकिन जहाँ तक हो सके, त्रिज्येष्ठ' विवाह से बचना ही चाहिए ऐसा अधिकांश आचार्यो का मत है।

आद्यगर्भसुतकन्ययोर्द्वयो र्जन्ममासभतिथौ करग्रहः।
नोचितोऽथ विबुधैः प्रशस्यते चेद् द्वितीयजनुषोः सुतप्रदः ।।

ज्येष्ठ पुत्र या कन्या का जन्ममास, जन्मनक्षत्र, जन्मतिथि में विवाह उचित नहीं है। किन्तु यदि द्वितीय, तृतीय आदि, पुत्र या कन्या हो, तो दोष नहीं है।

ज्येष्ठद्वन्द्वं मध्यमं सम्प्रदिस्टं त्रिज्येष्ठं चेन्नैव युक्तं कदापि
केचित्सूर्य वह्निगं प्रोज्झय चाहुनै वान्योन्यं ज्येष्ठयोः स्याद्विवाहः।।

दो ज्येष्ठ मध्यम है, तीन ज्येष्ठ सर्वथा वर्जित हैं। किसी आचार्य के मत से कृतिका
नक्षत्र के सूर्य को छोड़कर शेष भाग ज्येष्ठ मारा का शुभ है। ज्येष्ठ पुत्र तथा ज्येष्ठ कल्या का परस्पर विवाह नहीं होता है।

२. ज्येष्ठ संतान का विवाह ज्येष्ठ में नहीं -

जन्मज्यैष्ठ्यमथोदरे निपतनं रेतोनिषेकक्रमा-
द्यद्वक्त्रं प्रथमं तु पश्यति पिता स ज्येष्ठ इत्युच्यते।
त्रिज्यैष्ठ्यं परिवर्जनीयमथ तज्ज्येष्ठं द्वयं मंगलं
रुग्मिण्यार्तवशोधनं त्वितरयोः स्पृश्यावगाहैः कृते ।। (उत्तर कालामृत/कर्मकाण्ड/श्लोक-१८)

यमल जातक हो, तो उनमें बड़ा वह है जिसका बीज पहले पड़ा है, परन्तु इस बात का निर्णय इस प्रकार है कि जिसको पिता ने पहले देखा हो, वह ज्येष्ठ है। त्रिज्येष्ठ से बचना चाहिए अर्थात् ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र अथवा पुत्री का विवाह ज्येष्ठ के महीने में नहीं करना चाहिए। यह नियम उपनयन संस्कार के लिए भी है। इसी प्रकार 'ज्येष्ठ द्वय' को भी छोड़ना चाहिए अर्थात् सबसे बड़े पुत्र का विवाह अथवा अन्य शुभ संस्कार ज्येष्ठ के महीने में नहीं करना चाहिए। भाई-

बहन के लिए किए गए दो शुभ कृत्यों में न्यूनतम दो मास का अन्तर होना चाहिए। अन्य कृत्य अस्पृश्यता न होने की दशा में स्थानान्तर किए जा सकते है।

विवाह-मुहूर्त विचार—

वर-कन्या के जन्मांगों के मिलान के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के दोषों का उल्लेख किया गया है। परन्तु प्रत्येक दोष का कोई न कोई परिहार अवश्य होता है। परिहार का अर्थ है दोष में अपेक्षाकृत न्यूनता, परन्तु दोष, गुण में परिवर्तन नहीं हो जाते अपितु उनकी तीव्रता, न्यूनता में रूपान्तरित हो जाती है। मेलापक सम्बन्धी कुछ बहु चर्चित परिहार अग्रांकित हैं -

१. कन्या की जन्मराशि विषम हो तथा कन्या की राशि से वर की राशि आठवीं हो तो शुभ स्थितियाँ प्रदर्शित होती है। उसी प्रकार यदि कन्या की राशि सम हो तथा वर की राशि कन्या की राशि से छठी हो तो भी स्थितियाँ शुभ होती हैं।

२. नाड़ीदोष कुछ नक्षत्रों में नहीं होता है वे नक्षत्र है- रोहिणी, रेवती, मृगशिरा, पुष्य, कृक्तिका, उ.भा., श्रवण, आर्द्रा, ज्येष्ठा।

३. वर और कन्या का जन्म उपर्युक्त नक्षत्रों में न हो परन्तु उनके जन्मनक्षत्र समान हों तथा उनमें चरणभेद और अंश भेद हो तो नाड़ीदोष का स्वतः ही परिहार हो जाता है। परन्तु यदि वर व कन्या के जन्मनक्षत्र समान हों तथा उनमें चरण भेद न हो तो अत्यधिक दोष होता है। यदि पाद भिन्न हो तो शुभ स्थिति होती है। इनके साथ यदि वर का चरण आगे हो तो शुभता में वृद्धि होती है। यदि वर व कन्या की राशि के स्वामी शुक्र, बृहस्पति व बुध हों तो नाड़ीदोष निरस्त हो जाता है।

४. यदि वर व कन्या के राशियों के स्वामियों या दोनों की चन्द्र नवांश राशि के स्वामियों में मैत्री हो तो सभी दोषों का परिहार हो जाता है।

इसके साथ ही विषकन्या, काकबन्ध्या तथा मंगलीदोष का समन्वय करने के उपरान्त कोई भी मांगलिक कार्य प्रतिपादित किया जाना चाहिए।

पक्ष व तिथि शुद्धि-

हमारे दिव्य ऋषि-मनीषियों ने कृष्ण पक्ष व शुक्ल पक्ष में से शुक्ल पक्ष को समस्त कार्यों हेतु शुभ कहा है। कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि तक, मतान्तर से दशमी तक भी कार्य किये जा सकते हैं। तिथियों को ऋषियों ने विशेष महत्त्व नहीं दिया है। परन्तु रिक्ता तिथि को त्यागना चाहिए। तिथियों में भी चतुर्दशी, अमावस्या तथा शुक्त पक्ष की प्रतिप्रदा त्याज्य होती है।

कार्तिक मास का विशेष नियम-

आचार्यों ने कार्तिक मास की पूर्णिमा से पाँच दिन पहले व पीछे, विवाह में दोष नहीं बताया है अर्थात् तिथिवार, नक्षत्र तथा त्रिबल शुद्धि अविचारणीय होती है। इन तिथियों में बृहस्पति शुक्रास्त होने पर भी विवाह सम्पन्न हो सकता है। परन्तु ग्रहण सूतक तथा चन्द्रबल पर अवश्य विचार कर लेना चाहिए और गोधूलि तथा गोधूलि व लग्न को प्राथमिकता देनी चाहिए।

विवाह-मासादि विचार—

आचार्यों ने माघ, फाल्गुन, बैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ व मार्गीर्ष इन मासों को विवाह हेतु उपयुक्त बताया है। इसके अतिरिक्त आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि तक यदि कर्क संक्राति न हुई हो तो भी विवाह हो सकता है। पौष मास के उत्तरार्ध में यदि मकर संक्रान्ति हो गयी हो तो भी विवाह सम्भव है। अर्थात् विवाह मुहूर्त में मास, सौरस्थिति के आधार पर होता है। अतः मेष, वृष, मिथुन, वृश्चिक, मकर, कुम्भ संक्रान्ति मास विवाह हेतु उपयुक्त होते हैं।

वार-शुद्धि विचार—

महर्षि वशिष्ठ ने सप्ताह के सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्र दिवस को विवाह हेतु शुभ बताया है। रविवार और शनिवार को मध्यम तथा मंगलवार को विशेषकर त्यागना चाहिए, ऐसा कहा है।

नक्षत्र शुद्धि विचार—

समस्त आचार्यों तथा दिव्य मनीषियों ने नक्षत्रों में रोहिणी, उ.भा., उ.षा., उ.फा., मूल, स्वाति, अश्विनी नक्षत्रों को उपयुक्त कहा है।

रोहिण्युत्तररेवत्यो मूलं स्वाती मृगौ मघा। अनुराधा च हस्तश्च विवाहे मंगलप्रदाः ।।
त्रिषु उत्तरादिषु ।।

अर्थात् उ.फा., उ.षा., उ.भा. से अगले दो-दो नक्षत्र भी विवाह में ग्राह्य हैं।

प्रचेतस ऋषि ने पू.फा. की विवाह में ग्राह्यता स्वीकार किया है तथा पुष्य नक्षत्र को सबसे प्रमुख बताया है। एक मत यह भी है कि ब्रह्मा जी का विवाह पुष्य नक्षत्र में हुआ था, तथा यही ब्रह्माजी शम्भु के विवाह के समय पार्वती पर मुग्ध हो गये थे, इस प्रकार यह शापित नक्षत्र है। पुष्य नक्षत्र में जो कार्य किया जाय वह बढ़ोत्तरी को प्राप्त होता है, इसलिए विवाह में यह वर्जित है।

सीताजी सम्पूर्ण जीवन वनवासादि दुःख भोगती रहीं, उनका विवाह पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में हुआ था। इस प्रकार पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र भी विवाह कार्य के लिए त्याज्य है।

एक अन्य मत से मघा को या केवल मघा व मूल के प्रथम चरण मात्र को त्याज्य माना है।

योग शुद्धि विचार—

वैधृति में वैधव्य, व्याघात में व्याधि, शूल में घाव, व्यातिपात में वंश नाश, अतिगण्ड में विषपान व वज्र में मृत्यु होती है। विषकुम्भ में प्राण संशय, गण्ड में रोग, परिधि में पति हानि एवं हर्षण में शोक होता है। हर्षण रहित उक्त ९ योग का वर्जना भी कुछ विद्वानों के अनुसार स्वीकरणीय है।

करण शुद्धि विचार—

विष्टी या भद्रा के सम्बन्ध में सभी विद्वानों ने सर्वसम्मत रूप से इसका पूर्णतया त्याग करने को कहा हैं। शुकनादि चार स्थिर करण भी त्याज्य है। इनका त्याग स्वयमेव हो जाता है, यदि कृष्ण चतुर्दशी, अमावस्या आदि तिथि को छोड़ दिया जाय। **विवाहे करणाः सर्वे शोभना विष्टिवर्जिताः।**

अतः सम्भावित विवाह तिथि का निर्णय, तिथि, वार नक्षत्र व मासादि के योगों के आधार पर किया जाता है। तदुपरान्त जिस तिथि का निर्णय किया गया है, उस तिथि को भी विशेष दस दोषों का निराकरण एवं लग्न का निर्धारण करते हैं। वो दस दोष कोन-कोन से है, उनका अध्ययन आगे किया जा रहा है।

विवाह में विशेष १० दोष निम्नलिखित हैं-

१. लत्ता, २. पात, ३. युति, ४. वेध, ५. जामित्र, ६. वाण पंचक, ७. एकार्गल, ८. उपग्रह, ९. क्रान्तिसाम्य, १०. दग्धा तिथि का त्याग यथासंभव किया जाना चाहिए। यहाँ इसके अतिरिक्त वेध व क्रान्तिसाम्य का विचार करके इनका सर्वत्र त्याग ही किया जाना चाहिए।

१. लत्ता दोष-

इस दोष को लात दोष भी कहते हैं। बृहस्पति जिस नक्षत्र पर हो उससे आगे के छठे नक्षत्र पर सूर्य १२वें नक्षत्र पर, मंगल तीसरे नक्षत्र पर, शनि आठवें पर लात मारता है।

इसी प्रकार पूर्ण चन्द्र अपने नक्षत्र से पिछले २२वें नक्षत्र पर, राहु नौवें पर, बुध सातवें पर, शुक्र पाँचवें नक्षत्र पर लात मारता है। राहु के वक्री होने पर उसका पिछला नक्षत्र सदैव अगला ही समझना चाहिए।

वैसे तो किसी भी ग्रह की लत्ता या लात अच्छी नहीं होती, किन्तु मतान्तर से सिर्फ पाप ग्रहों की लत्ता ही त्याग करने की बात कही गयी है। तात्पर्य इतना है कि विवाह नक्षत्र या. मुहूर्त निश्चय करने के लिए इन दोषों का विचार किया जाता है। हम पंचांग देखते समय पाते हैं कि विवाह मुहूर्त या विवाह नक्षत्र के सामने कुछ खड़ी रेखाएँ लगी हुई हैं। वहाँ पर जो रेखा मुड़ी होती है वही दोष होता है ऐसा समझना चाहिए। यथा जिस दिन पंचांग में विवाह-मुहूर्त के सामने इस प्रकार रेखाएँ लगी है, ।।।५।।।।। यहाँ छठी रेखा मुड़ी है। अतः उस दिन छठा दोष या बुध पंचक दोष है।

उदाहरणार्थ अनुराधा नक्षत्र में विवाह है तो अनुराधा से आगे सातवें धनिष्ठा नक्षत्र में बुध, इसी प्रकार आगे २२वें नक्षत्र में पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्र इत्यादि न पड़े तो लत्ता दोष नहीं होगा।

२. पात दोष-

पात दोष का त्याग प्रायः विवाहादि शुभ कार्यों में करना उचित होता है। इसका दूसरा नाम "चण्डीश चण्डायुध" भी है। इसका सम्बन्ध पंचाग में बताये गये साध्य, हर्षण, शूल, वैधृति , व्यतिपात व गण्ड योगों से है। इन योगों का जो अन्तसमय पंचांग में लिखा हो, उस समय जो नक्षत्र (चिन्न सक्षम या दिन नक्षत्र) होगा, वह पात दोष से दूषित होता है पात दोष का त्याग सिर्फ कौशल देश या कुरु जांगल प्रदेश (कुरुक्षेत्र, राजपूताना) में ही किया जाता है।

३. युति दोष-

युति अर्थात् योग/युति दोष उस समय होता है जब विवाह के समय चन्द्र नवर से पाप ग्रह युति करते हों तो युति दोष का निर्माण होता है। चन्द्रमा यदि अपनी राशि में हो या उच्च का हो तो विशेष प्रभाव नहीं होता है।

कुछ विद्वानों का मानना है कि किसी भी ग्रह की युति हो वह अच्छा नहीं होता है। युति का परिहार केवल चन्द्रमा के बलवान होने से ही होता है।

दारिद्र्यं रविणा कुजेन मरणं सौम्येन नष्टप्रजा ।

दौर्भाग्यं गुरुणां सितेन सहिते चन्द्रेण सापल्यकम ।।

शुभ ग्रह बुध व गुरु दोष कारक नहीं माने जाते हैं। चन्द्रमा और अन्य ग्रह का भी नक्षत्र एक ही हों पर दोनों राशि अलग हों तो भी युति दोष माना जायेगा। युति दोष का विचार बंगाल में किया जाता है।

४. वेध दोष-

वेध दोष का त्याग सर्वत्र किया जाता है। पंचशलाका व सप्तशलाका वेध दो प्रकार से किया जाता है। इस बात को इस प्रकार से समझा जाता है कि यदि सीधी पाँच आड़ी रेखाओं से वेध चक्र बनता है तो पंचशलाका और सात रेखाएँ सीधी व सात आड़ी खींचे तो सप्तशलाका चक्र बनेगा। पंचशलाका वेध का विचार विवाह, वधू प्रवेश, वरण आदि में किया जाता है। इसके अतिरिक्त कार्यों में सप्तशलाका वेध का विचार करना चाहिए।

वधू प्रवेशने दाने वरणे पाणिपीडने ।

धः पंचशलाकाख्योऽन्यत्र सप्तशलाककः ।।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि नक्षत्रों का वेध होता है यदि वे एक ही रेखा पर पड़ते हों। विवाह नक्षत्र का जिसके साथ वेध हो, उस नक्षत्र में यदि कोई ग्रह स्थित हो तो वेध माना जायेगा।

यामित्र दोष विचार -

लग्नाचन्द्रान्मदनभवनगे खेटे न स्यादिह परिणयनम् ।
किं वा बाणाभुगमितलवगे यामित्रं स्यादशुभकरमिदम् ।।

लग्न या चन्द्रमा से सप्तम स्थान में कोई ग्रह हो तो यामित्र दोष होता है। यदि लग्नगत नवमांश या चन्द्रगत नवमांश से ५५ वें नवमांश में ग्रह हो अर्थात् लग्न ग्रह का अन्तर ६ राशि हो तो पूर्ण यामित्र दोष होता है, यह विवाह में अशुभप्रद होता है। साधारण यामित्र कम दोष देनेवाला और पूर्ण यामित्र अधिक दोष देने वाला होता है, एवं शुभग्रह कृत यामित्र स्वल्पदोषप्रद और पापग्रह कृत अधिक दोषप्रद होता है।

बाण दोष विचार -

रसगुण शशिनागाब्ध्याढयसंक्रान्तियातां - शकमिति - रथतष्टाकैर्यदा पञ्चशेषः ।
रूगनल नृपचौरा मृत्यु संज्ञश्च बाणो नवहृतशरशेषे शेषकैक्ये सशल्यः ।।

तात्कालिक सूर्य के भुक्तांशों को ५ स्थान में रखकर क्रम से ६,३,१,८,४ जोड़कर सब में ९ के भाग देने से प्रथम स्थान में ५ शेष तचे तो रोगबाण, द्वितीय स्थान में अग्नि, तृतीय स्थान में राज, चतुर्थ स्थान में चोर और पंचम स्थान में मृत्युबाण होता है।

विशेष - सूर्य के गतांशा के अनुसार भी बाणों का निर्धारण किया जाता है।

जैसे- १,८,१७,२६ इन अंशों में सूर्य हो तो रोगबाण होता है।

२,११,२०२९ इन अंशों में सूर्य रहे तो अग्नि बाण होता है।

४,१३,२२ इन अंशों पर सूर्य हो तो राज बाण जानना चाहिए।

६,१५,२४ इन अंशों पर सूर्य हो तो चौर बाण होता है।

१,१०,१९,२८ इन अंशों में सूर्य हो तो मृत्युबाण समझना चाहिए।

एकार्गल दोष दोष विचार –

व्याघात गण्ड व्यतिपात पूर्वे शूलान्त्यवचे पारिघाति गण्डे।
एकार्गलाख्यो ह्यभिजित समेतो दोषः शशी चेद् विषमर्क्षगोऽर्कात् ।।

व्याघात, गण्ड, व्यतिपात, वज्र, परिघ, अतिगण्ड इन योगों में कोई योग हो उस दिन सूर्याश्रित नक्षत्र से चन्द्राश्रित नक्षत्र की संख्या विषम हो तो एकार्गल दोष होता है यहाँ नक्षत्रों की गणना अभिजित् समेत होती है।

उपग्रह दोष विचार—

शराष्टदिक् शक्रनगातिधृत्या स्तिथिधृतिश्च प्रकृतेश्च पञ्च ।
उपग्रहाः सूर्यभतोऽब्जताराः शुभा न देशे कुरूवह्निकानाम् ।।

यदि सूर्याश्रित नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक गणना करने से

५,८,१०,१४,७,१९,१५,१८,२१,२२,२३, २४, २५ इनमें से कोई संख्या हो तो उपग्रह दोष होता है

या कहलाता है। यह कुरू और वाह्लिक देश में शुभ नहीं होता है।

९. क्रान्तिसाम्य दोष

इस दोष को 'महापात दोष' भी कहते हैं। सूर्य-चन्द्रमा की क्रान्ति समान होने पर क्रान्तिसाम्य दोष होता है। शुभ कार्यों में इस दोष की बड़ी निन्दा की गयी है। इसमें विवाह करना सर्वत्र ही वर्जित है। इस दोष के होने पर यहाँ तक कहा गया है कि क्रान्तिसाम्य दोष में विवाह करने पर पति-पत्नी दोनों का ही निधन हो जाता है। गणित के पातोऽध्याय के अनुसार इसका विचार किया जाना चाहिए।

शस्त्राहतोऽग्निदग्धो वा नागदष्टोऽपि जीवति।
क्रान्तिसाम्यकृतोद्वाहो न जीवति कदाचन ।।

सिंह व मेष, वृष व मकर, तुला व कुंभ, मिथुन व धनु, कर्क व वृश्चिक, कन्या व मीन राशि युगलों में सूर्य व चन्द्रमा रहें तभी इसकी संभावना होती है।

व्यतीपात योग -

जब सायन सूर्य - चन्द्रमा का योग ६ राशि के समान होता है अर्थात् १+५,२+४,४ + २,५ + १, तो दोनों के भिन्न अयन और एक गोल होते हैं तथा दोनों के भुजांश तुल्य होने से क्रान्ति भी तुल्य होती है इसलिए इसे व्यतिपात नाम का महापात कहते हैं।

दग्ध तिथि विचार -

चापान्त्यगे गो घटगे पतङ्गे कर्काजगे स्त्रीमिथुने स्थिते च ।
सिंहालिगे नक्रघटे समाः स्युस्तिथ्यो द्वितीया प्रमुखाश्च दग्धा ।।

सूर्य यदि धुनु या मीन में हो तो द्वितीय, वृष, कुम्भ में हो तो चतुर्थी, कर्क मेष में हो तो षष्ठी, मिथुन कन्या में हो तो अष्टमी, सिंह वृश्चिक में हो तो दशमी और मकर या तुला में हो तो, द्वादशी तिथि दग्ध होती है यह भी विवाहादि शुभ कार्यों में वर्जित है।

लता पात आदि दस दोष निवारण के बिना 'विवाह संस्कार' अहित कारक हो जाता है। विवाह में मुख्य रूप से लता, पात, युति, जामित्र, बाण, एकार्गल, उपग्रह, क्रान्तिसाम्य एवं दग्धा तिथि इन दस दोषों का विचार किया जाता है। इनमें से पापग्रह कृत युति, वेध, मृत्युबाण एवं क्रान्तिसाम्य अपरिहार्य होने से नहीं माने गये हैं।

विवाह में लग्न शुद्धि—

वर-कन्या के विवाह के लिए जो सबसे प्रमुख या जिसको सबसे अधिक प्रधानता दी जानी चाहिए वह है मुहूर्त काल के लग्न की। विवाहादि जैसे मांगलिक कार्य के लिए लग्न और नवांश की शुद्धि प्रमुखतया विचारणीय विषय होना चाहिए।

त्याज्य या वर्जित लग्न—

वर्जित लग्न का विचार वर-कन्या की क्रमशः जन्मराशि व जन्मलग्न से करना उपयुक्त होता है। इसी तरह यदि वर या कन्या किसी का भी जन्मलग्न से अष्टमेश यदि विवाह लग्न में स्थित हो तो उस लग्न में विवाह नहीं करना चाहिए। वर-कन्या की जन्मराशि या जन्मलग्न से अष्टम राशि का लग्न व नवांश यदि बहुत हद तक उपयुक्त भी हो तो भी त्याग करना उचित होता है।

लग्न भंग योग—

किसी भी ग्रह का विवाह लग्न से, लग्न में पापयुक्त या क्षीण चन्द्र तथा अन्य कोई भी पापग्रह अथवा बारहवें शनि, दसवें मंगल, तीसरे शुक्र ग्रह का होना शुभ नहीं होते हैं। ऐसी भी मान्यता है कि सप्तम या अष्टम स्थान ग्रह रहित होने चाहिए या इस बात को इस प्रकार से कह सकते हैं कि कोई भी ग्रह प्रशस्त नहीं माना जाता यदि विवाह लग्न से सप्तम स्थान में कोई भी

ग्रह हो। इसी प्रकार लग्नेश, चन्द्र तथा शुक्र षष्ठ में तथा चन्द्र लग्नेश शुभ ग्रह और मंगल आठवें स्थान में होने पर विवाह-लग्न नहीं बनेगी।

कर्तरी-दोष—

कर्त्तरी दोष लग्न की शुभता में कमी करता है। यदि लग्न के दोनों ओर पापग्रह हों तब कर्त्तरी दोष का निर्माण होता है तथा यदि लग्न के एक ओर शुभ ग्रह तथा दूसरी ओर अशुभ ग्रह हो तो मध्य कत्त्तरी दोष होता है। इसका भी त्याग करना उचित होता है। ठीक इसी प्रकार कर्तरी दोष का विचार चन्द्रमा से भी करना चाहिए। विवाह लग्न से द्वितीय में वक्री पापी ग्रह तथा द्वादश स्थान।

कत्त्तरीभंग-योग—

बृहस्पति बहुत बलशाली होकर लग्न या विवाह लग्न में हो तो पाप कर्त्तरी दोष का प्रभाव कम हो जाता है या कर्त्तरी योग उस स्थिति में भी भंग हो जाता है जब शेष ग्रह शुभ स्थानों में हों। कई अन्य दोषों का शमन उस स्थिति में भी हो जाता है जब केन्द्र (१,४,७,१०) में शुभ ग्रह बलवान हों।

अन्ध, बधिर व पंगु लग्न—

मेष से कन्या तक अन्ध राशि, तुला से मकर तक बधिर व कुम्भ मीन राशियाँ पंगु होती है। ये लग्न किस प्रकार से दोष प्रद होते हैं, इसका विचार निम्न प्रकार से करते हैं।

१,२,५ लग्न दिन में व ३,४,६ रात्रि में अन्ध होते हैं। ७,८ दिन में तथा ९,१० रात में बधिर होते हैं। ११ दिन में व १२ रात में पंगु होती हैं। यदि ये राशियाँ अपने स्वामी या गुरु, बुध से दृष्टयुक्त हों तो उक्त दोष नहीं लगता है। इसी प्रकार चर लग्न, उसमें भी विशेषतया चर नवांश सर्वथा वर्जित करना चाहिए। राशि का अन्तिम नवांश भी विवाह में वर्जित होना चाहिए। लेकिन उक्त स्थिति में वर्गोत्तम स्थिति होने पर लग्न शुभ माना जायेगा।

गोधूलि-लग्न विचार—

ऐसी मान्यता है कि विवाह के लिए सबसे उत्तम लग्न गोधूलि लग्न ही होता है, यहाँ तक कि यदि विवाह का सम्पन्न होना कठिन लग रहा हो तो गोधूलि लग्न में विवाह करना उपयुक्त होता है। गोधूलि लग्न में सभी दोषों का शमन हो जाता है, सिवाय कुलिक क्रान्ति साम्य व १,६,८ भावगत चन्द्रमा इन पाँच स्थितियों का ही शमन नहीं हो पाता है।

कुलिक क्रान्तिसाम्यं च मूर्तीषष्ठाष्टमः शशी। पंच गोधूलिके त्याज्या अन्य दोषाः शुभावहाः।।

यहाँ पर यह उल्लेख करना अनिवार्य है कि गोधूलि लग्न का उपयोग उसी स्थिति में करना चाहिए जब शुद्ध लग्न न मिल पा रहा हो। शुद्ध लग्न उपलब्ध हो और उसका त्याग करके गोधूलि लग्न लेना विशेष उपयुक्त नहीं होता है। बृहस्पतिवार को सूर्यास्त के बाद का व शनिवार को सूर्यास्त से पहले का समय छोड़कर लग्न लेने से कुलिक दोष का भी बचाव हो जाता है।

गोधूलि काल ज्ञात करने के लिए सबसे उपयुक्त विधि यह है कि उस स्थान का पंचांग या स्थानीय पंचांग से सूर्यास्त काल देखकर उसमें १२ मिनट कम करने के पश्चात् जो समय आये, उसे लेकर सूर्यास्त से १२ मिनट आगे तक का कुल २४ मिनट का काल गोधूलि काल होता है। एक अन्य मत यह भी है कि सूर्यास्त से २४ मिनट पहले द २४ मिनट बाद तक का २ घड़ी या ४८ मिनट का कुल समय 'गोधूलि काल' मानते हैं।

विवाह मुहूर्त के दिन का विचार उस स्थिति में ही किया जाता है जब क्रान्ति दोष उपस्थित न हो। इस प्रकार गोधूलि लग्न में ग्रहस्थिति लग्न का विचार करना युक्ति संगत नहीं है, वह भी उस

स्थिति में जब शुद्ध विवाह मुहूर्त का दिन निर्धारित कर लिया गया हो। अतः कहा जा सकता है कि चन्द्रमा मंगल इत्यादि कहीं भी रहे तो भी हानि नहीं होती है। जैसाकि बताया गया है कि विवाह लग्न में सप्तम स्थान में जब किसी भी ग्रह की स्थिति अच्छी नहीं मानी गयी है, उस स्थिति में भी गोधूलि लग्न को ग्राह्य माना गया है, जबकि सूर्य सदा ही गोधूलि काल में सातवें स्थान में रहेगा।

परिणामस्वरूप गोधूलि काल में ग्रहयोगादि का विचार करना उपयुक्त नहीं होगा। केशवार्क ने ऐसा ही कहा है।

गोधूलिकेऽपि विधुमष्टमषष्ठ मूर्ति यन्मोचयन्ति तदयं स्वरुवि प्रपंचः।
पंचांगशुद्धिमयमेव विवाहधिष्ण्ये, यस्मादिदं सततमस्तगते पतंगे ।।

इस बात का समर्थन राजमार्त्तण्डादि ग्रन्थों में भी किया गया है। अतः विवाह मुहूर्त बनने पर गोधूलि काल का लग्न सदैव सबके लिए प्रशस्त कहा गया है।

1.5 सारांश:

इस इकाई के माध्यम से आप यह जान सके होंगे की सनातन परम्परा में विवाह का क्या महत्व है।सनातन धर्म अपनी मान्यताओं के लिए जाना जाता है। यहां पूजापाठ-, वेद, ग्रंथ आदि को बेहद महत्वपूर्ण माना गया है। वेदों में विवाह सहित जीवन के विभिन्न पहलुओं के बारे में बताया गया है। वेदों के अनुसार, विवाह किसी भी व्यक्ति के जीवन में संपन्न होने वाले महत्वपूर्ण संस्कारों में से एक है। इसमें ज्योतिष विज्ञान की सर्वाधिक उपयोगी भूमिका है। पूर्णतः अपरिचित वर-वधू जब दाम्पत्य के सोपान पर पहला पद रखते हैं, तभी उन्हें एक-दूसरे के स्वभाव, व्यवहार का आभास होता है। शादी सिर्फ सन्तान प्राप्ति के लिए नहीं होती है। यह व्यक्ति को आध्यात्मिक विकास और जीवनमृत्यु चक्र से मुक्ति दिलाती है। ऐसा माना जाता है कि विवाह के जरिए - व्यक्ति इस जीवनकाल में अपने कर्तव्यों को पूर्ण रूप से पूरा कर सकता है। विवाह को सनातन परम्परा में मुख्यतः विवाह आठ प्रकार के माने गये है, उनमे से भी प्रथम चार विवाह शुभ व इनमे भी परम दो को अत्यंतशुभ की श्रेणी में रखा गया है।

1. ब्रह्म विवाह, 2. दैव विवाह, 3. आर्ष विवाह, 4. प्राजापत्य विवाह, 5. गांधर्व विवाह, 6. आसुर विवाह, 7. राक्षस विवाह, 8. पैशाच विवाह। ब्रह्म विवाह को सबसे श्रेष्ठ और आदर्श विवाह माना गया है। इस प्रकार के विवाह में कन्या का विवाह उस वर से होता है जो विद्वान, चरित्रवान और योग्य हो। दैव विवाह धार्मिकता का प्रतीक है। इस प्रकार के विवाह में कन्या को यज्ञ या धार्मिक अनुष्ठान करने वाले ब्राह्मण को पत्नी रूप में दान दिया जाता है। आर्ष विवाह में वर पक्ष कन्या के पिता को गाय या अन्य उपहार देकर विवाह करता है। यह विवाह ऋषियों और मुनियों द्वारा स्वीकार किया गया था, यह विवाह समाज में पारिवारिक परम्परओं का पालन करते हुये किया जाता है।जिसमें कन्या की सहमती होती है । गांधर्व विवाह को प्रेम विवाह कहा जा सकता है। इसमें वर और कन्या दोनों की आपसी सहमति से विवाह होता है। इस प्रकार का विवाह तब होता है जब वर, कन्या के परिवार को धन देकर विवाह करता है। राक्षस विवाह में बल और सामर्थ्य का उपयोग होता है। पैशाच विवाह को सबसे अधम और अनैतिक विवाह माना गया है।

अभ्यास प्रश्न-

विवाह कितने प्रकार के होते है।

क. चार ख. पांच ग. आठ घ. दश

अधम विवाह कौन सा है।

क. पैशाच ख. राक्षस ग.आशुर घ. गांधर्व

कन्या के पिता को गाय या अन्य उपहार दिया जाता है,उस विवाह का नाम है

क. ब्रह्म विवाह ख. आर्ष विवाह ग. देव विवाह घ.गांधर्व विवाह

'गोधूलि काल' का समय होता है।

क. 40 मिनट ख. 50 मिनट ग. 58मिनट घ. 48मिनट

किन अंशों में सूर्य रहे तो अग्नि बाण होता है।

क. २,११,२०२९ ख. ११,२०२९ ,२ ग. २०२९, २,११ घ. २९, २,११,२०

1.6 अभ्यासप्रश्नों का उत्तर

ग. क. ख. घ. क.

1.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

मुहूर्तचिंतामणी

मेलापक मीमांशा

मुहूर्त गणपति

1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. वर्तमान समय के आधार पर विवाह के महत्व का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
2. विवाह के प्रकार और उसके गुणदोषों का वर्णन कीजिए।

इकाई.3 मांगलिक विचार

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 ज्योतिष शास्त्र में मंगल ग्रह का परिचय

3.4 मांगलिक विचार

3.5 लग्न चन्द्र एवं सूर्य से मंगल विचार

3.6 मांगलिक दोष परिहार

3.7 मंगल ग्रह से विचारणीय वस्तु तथा भाव फल

3.8 सारांश

3.9 पारिभाषिक शब्दावली

3.10 अभ्यास प्रश्न

3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.12 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रिय अध्येताओं !

प्रस्तुत इकाई 'मांगलिक विचार'से सम्बन्धित है। वेदांगों में ज्योतिषशास्त्र को वेद पुरूष का नेत्र माना गया है। **'ज्योतिषामयनंचक्षुः'**। जो मार्ग दिखाने का कार्य करता है, वह ज्योतिष शास्त्र कहलाता है। सम्पूर्ण ब्रह्मांड में नौ प्रकार के ग्रहों के आधार पर ही मनुष्य को उसके ग्रह दशा के द्वारा फल की प्राप्ति होती है। सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु ग्रहों के माध्यम से ही सही दिशा में मनुष्य का मार्ग प्रशस्त होता है। दुखोंसे मनुष्यों को मुक्ति कैसे प्राप्त हो,इन सभी का ज्ञान जन्मकुंडली के आधार पर निश्चित किया जाता है।प्राचीन ऋषियों ने जातक ग्रंथो में ग्रहों के द्वारा होने वाले दोषों का तथा विवाह से पूर्व जातक की कुंडली में मांगलिक दोष का निवारण कैसे हो सके, किन-किनभावों में बैठकर मंगल दोष का प्रभाव दूर किया जा सके, तथा इनका परिहार कैसे हो, इन सभी का विचार कर मांगलिक दोष समाधान किया गया है। मंगल शब्द कल्याण वाचकहै।ग्रहों में जो सेनापति नाम से जाना जाता है वह मंगलग्रह ही है । सेनापत्ति का कार्य बहुत ही सतर्क रहकर किया जाता है, जिस व्यक्ति की जन्म कुण्डली में मंगलदोष होता है, वह व्यक्तिभिन्न रूप से कार्य करने वाला होता है। उसके नियमों एवं विचारों का प्रभाव अलग होता है। मांगलिक विचार के विषय में भली-भाँति अध्ययन प्रस्तुत इकाई का ध्येय है।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई केअध्ययन के पश्चात् आप—

- मांगलिक योग कैसे बनता है ? यह जान सकेंगे।
- कुंडली में किन-किन भावों से मांगलिक योग बनता हैं ? यह समझ सकेंगे।
- लग्न, शुक्र,एवं चन्द्र से मांगलिक विचार कर सकेंगे ।
- मंगल ग्रह के स्वरुप को जानेंगे।
- मांगलिक दोष के परिहार को समझ सकेंगे।

3.3 ज्योतिष शास्त्र में मंगल ग्रह का परिचय

ज्योतिषशास्त्र में मंगल ग्रह के स्वरुप के बारे में विस्तृत वर्णन किया गया है। जिसे सेना पति के नाम सेजाना जाता हैं। मंगल ग्रह का वर्ण लाल होने के साथ-साथ इसका प्रभाव भी ऐसा ही पड़ता है। जन्मांग कुंडली में 3 और 6 भाव का कारक होने के साथ-साथ पराक्रम, भूमि, शक्ति, उधारता, शत्रु, शासक, विदेश गमन, ख्याति,खान-पान इत्यादि विषयों का विचार तथा ऊर्जा, भाई, भूमि, शक्ति, साहस, पराक्रम और शौर्य का कारक होता है। मंगल ग्रह को मेष और वृश्चिक राशि का स्वामित्व प्राप्त है। यह मकर राशि में उच्च का होता है, जबकि कर्क इसकी नीच राशि है। वहीं नक्षत्रों में यह मृगशिरा, चित्रा और धनिष्ठा नक्षत्र का स्वामी होता है। गरुड़ पुराण के अनुसार मनुष्य का शारीरिक बनावट एवं स्वभावजन्म कुंडली में लग्न भाव में मंगल ग्रह से व्यक्ति के चेहरे में सुंदरता एवं तेज़ का प्रभाव होता है। व्यक्ति उम्र के हिसाब से युवा दिखाई देता है। यह जातक को पराक्रमी, साहसी और निडर बनाता है। लग्न में मंगल के प्रभाव से व्यक्ति अभिमानी भी होता है। वह किसी प्रकार के दबाव में रहकर कार्य नहीं करता है। शारीरिक रूप से

व्यक्ति बलवान होता है। व्यक्ति का स्वभाव क्रोधी होता है। ऐसे जातकों की सेना, पुलिस, इंजीनियरिंग क्षेत्र में रुचि रहती है। मंगल का लग्न भाव होना मंगल दोष भी बनाता है।

बली मंगल का प्रभाव- मंगल की प्रबलता से व्यक्ति निडरता से अपने निर्णय लेता है। वह ऊर्जावान रहता है। इससे जातक की उत्पादक क्षमता में वृद्धि होती है। विपरीत परिस्थितियों में भी जातक चुनौतियों को सहर्ष स्वीकार करता है और उन्हें पराजित भी करता हैं। बली मंगल का प्रभाव केवल व्यक्ति के ही ऊपर नहीं पड़ता है, बल्कि इसका प्रभाव व्यक्ति के पारिवारिक जीवन पर भीदिखाई देता है। बली मंगल के कारण व्यक्ति के भाई-बहन अपने कार्यक्षेत्र में उन्नति करते है।

पीड़ित मंगल के प्रभाव- यदि मंगल ग्रह कुंडली में कमज़ोर अथवा पीड़ित हो तो यह जातक के लिए समस्या उत्पन्न करता है। इसके प्रभाव से व्यक्ति को किसी गम्भीर समस्या का सामना करना पड़ सकता है। पीड़ित मंगल के कारण जातक के पारिवारिक जीवन में भी समस्याएँ आती रहती है। जातक को शत्रुओं से पराजय, ज़मीन सम्बन्धी विवाद, कर्ज़ आदि समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। मंगल ग्रह से पीड़ित व्यक्ति को मंगल ग्रह का उपाय करवाना अति आवश्यक होता है,जिससे उस व्यक्ति को लाभ मिल सकेऔर होने वाले वाली समस्याओं को समय रहते रोका जा सकें।

3.4 मांगलिक विचार

षोडश संस्कारों के अन्तर्गत विवाह नामक 15 वाँ संस्कार महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता है। विवाह से पूर्व ज्योतिषशास्त्र के अनुसार वर और वधू की कुंडली मेलापक का विचार किया जाता है, जो बहुत ही महत्वपूर्ण है, उससे भी महत्वपूर्ण मांगलिक विचार को माना जाता है । वर वधू की कुंडली में मांगलिक दोष क्यों लगता है ? तथा इस दोष के लगने से किस फल की प्राप्ति होती है ? या नुकसान इसका परिहार क्या हो सकता हैं ? इन सभी मुख्य विंदुओं का वर्णन जातक की कुंडली में किया जाता है। प्राचीन काल से लेकर अब तक जो भी प्रामाणिक ग्रंथो का उल्लेख हुआ है, उन सभी ग्रन्थों में जैसे मुहूर्त चिंतामणि, ज्योतिष दर्पण, इत्यादि ग्रंथो में इसका वर्णन किया गया है।भारतीय परम्परा के अनुसार विवाह होने के उपरांत विवाह मेलापक तथा मांगलिक विचार किया जाता रहा है । जिससे की विवाह जीवन सुखपूर्वक हो सकें। अष्टकूटों का विचार कर मांगलिक विचार करना आवश्यक होता है । कुंडली में कुछ मुख्य स्थान होते है, जिसमें मंगल ग्रह के स्थित होने पर मांगलिक दोष होता है। सूर्यादि नौ ग्रहों में मंगल ग्रहका अपना एक अलग ही प्रभाव होता है। भूमि पुत्र होने के कारण भौम ग्रह केन्द्र, त्रिकोण,शुभ स्थानों में रहकर शुभ ग्रहों के साथ रहकर उसका फल भी शुभ होता है, जिसका प्रभाव वर और वधू के जीवन में पड़ता है, मंगल का शुभ होना यानि अनेक प्रकार का लाभ प्राप्त होना- इंजीनियरिंग कार्य, शस्त्र कार्य में वह आगे बढ़ता रहता है । मंगल ग्रह का अशुभ स्थान में रहना दोष कारक माना जाता हैं । इसलिए कुंडली में मांगलिक विचार करना आवश्यक होता है ।भारतीय ज्योतिषशास्त्र में मनुष्य के भूत-भविष्य एवं वर्तमान स्थिति के विषय में जानने के लिए द्वादश भावों की कल्पना की है। प्रत्येक भाव का मनुष्य के जीवन में घटित होने वाली घटनाओं के विषय में, उसके जीवन में आवश्यकताओं के विषय में विचारणीय विषयों के सम्बन्ध में विचार किया जाता रहा है । एवं मनुष्य उन घटनाओं को घटित होने के पूर्व ही जानकारी प्राप्त

कर सकता है। प्रायः व्यक्ति की जन्मपत्री में प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम, एवं बारहवें घर में यदि मंगल की स्थिति हो तो मंगली योग बनता है।

लग्ने व्यये च पाताले जामित्रे चाष्टमे कुजे।
कन्या भर्तृविनाशाय भर्ता कन्या विनाशदः।।

अर्थात् जिस कन्या की कुण्डली में १, ४, ७, ८ या १२वें स्थान में मंगल होतो वह कन्या वर (पति) के लिए वैधव्ययोग कारक होती है, तथा इसी तरह जिस लड़के की कुण्डली में इन्हीं स्थानों में मंगल हो तो वह कन्या के लिए दुख दाई होता है। इसी भाँति लग्न, चन्द्र और कभी-कभी शुक्र की राशि से भी मंगल की उपर्युक्त स्थितियों का विचार किया जाता है। मंगल दोष वाली कन्या का विवाह मंगलीक दोष वाले वर के साथ करने से मंगल का दोष समाप्त हो जाता है।जिससे वर-वधू के मध्य दाम्पत्य जीवनका सुख बढ़ता है-

कुज दोषवती देया कुजदोषवते किल।
नास्ति दोषो न चानिष्टं दम्पत्योः सुखवर्धनम्॥

प्रथम भाव में मंगली योग के विषय में विचार किया जाय तो प्रथम भाव जन्मकुण्डली का महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रथम भाव से व्यक्ति के शरीर से सम्बन्धित समस्त बिन्दुओं के विषय में विचार किया जाता है। यदि मनुष्य का शरीर स्वस्थ है तो मनुष्य सभी कार्यों को करने का उत्साह रखता है। इसी प्रकार से यदि प्रथम भाव पीड़ित है तो व्यक्ति कितना भी साहसी क्यों न हो, बुद्धिमान क्यों न हो, परन्तु वह दुःखी होकर जीवन यापन करता है। इसी प्रकार से यदि मंगल ग्रह की स्थिति प्रथम भाव में रहती है तो ऐसा व्यक्ति क्रूर स्वभाव तथा साहस रखने वाला होता है। चतुर्थ भावजन्मांग चक्र का भाव व्यक्ति के जीवन में मूलभूत सुविधाओं को प्रदान करने वाला होता है, जैसे भूमि, भवन, वाहन आदि लेकिन शरीर में उसका स्थान पेट का स्थान है। प्रायः नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों धारायें एक साथ रहती है। इसलिए सकारात्मकता के कारण चतुर्थ भावस्थ मंगल भूमि, भवन, वाहन को देने वाला होता है। और अशुभ होने से उदर में विकार पैदा करता है। चतुर्थ भाव में स्थित होकर मंगल सप्तम,अष्टम एवं दशम स्थान तथा एकादश भाव को अपनी विशेष दृष्टि से देखता है। तथा उन-उन स्थानों को अपनी दृष्टि से प्रभावित करता है।सप्तम भाव का जन्मांग चक्र में अहम स्थान होता है। इस स्थान से पत्नी, व्यापार आदि का विशेष रूप से विचार किया जाता है। यदि सप्तम भाव में कूर ग्रह की स्थिति हो तो सप्तम भाव पीडित होगा और सप्तम भाव से मिलने वाले सुख-संसाधनों में कमी आने के कारण व्यक्ति प्रभावित होता रहता है। इस भाव को मारक स्थान भी कहा गया है। प्रायः आपने देखा होगा कि व्यक्ति की मृत्यु जीविका, स्त्री,को लेकर अधिक होती है। अष्टम भाव से व्यक्ति की आयु एवं मृत्यु का विचार किया जाता हैं। अष्टम स्थान पर शुभ ग्रहों की दृष्टि एवं अष्टमेश एवं लग्नेश का शुभयोग होने से व्यक्ति दीर्घायु होता है। और यदि इसके विपरीत हो तो अल्पायु योग होता है। महर्षि पाराशर लघु पाराशरी नामक ग्रंथ में कहते हैं-

अष्टम हि आयुषः स्थानम्अष्टमाद अष्टमं च यत्।
तयोरपि व्यवस्थानमारकस्थानमुच्यते।।

ज्योतिषशास्त्र मेलापक द्वारा दम्पति के जीवन में, सुख-दुख, लाभ-हानि एवं मानसिक रूप से विक्षिप्त होने वाली घटनाओं के द्वारा मिलने वाले फल का निरीक्षण एवं परीक्षण करके अन्तिम शिखर पर पहुँच कर उसका मानसिक विवेचन करता रहता हैं। वर एवं कन्या के जन्मांग चक्रों में शुभ एवं अशुभ ग्रह योग की सामंजस्यता दिखाई दे तो जीवन में सुख की प्राप्ति

होती हैं। जन्मकुण्डली में मिलान के समय अरिष्ट योगों से सम्बन्धित विशेष रूप से विचार किया जाता है। क्योंकि यदि वर अथवा कन्या दोनों की कुण्डली में जन्मलग्न से, चन्द्रलग्न से, एवं शुक्र जहाँ बैठा है वहाँ से प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम एवं द्वादश भाव मे मंगल ग्रह की स्थिति हो तो जातक मांगलिक योग से प्रभावित होता है। यदि दोनों की कुंडली में से एक की कुंडली में मांगलिक दोष है परन्तु दूसरी कुंडली में मांगलिक दोष नही है तो वर और वधु की कुंडली नही मिलती है। इस प्रकार की स्थिति होने पर दोनों के जीवन में अधिक समस्या रहती है।

3.5 लग्न, चन्द्र एवं शुक्र से मंगल विचार

वर वधू की कुंडली में लग्न, चन्द्र, एवं शुक्र से मांगलिक विचार भी किया जाता हैं। लग्न से 1,4,7,8,12 , भावों में मंगल ग्रह हो तो मांगलिक दोष होता है। यदि वर वधू की कुंडली में से एक की कुंडली में 1,4,7,8,12, भावों में मंगल ग्रह है, परन्तु दूसरे की कुंडली में इन्ही भावों में मंगल नही है, तो इस अवस्था में शुक्र, चन्द्र, ग्रह से 1,4,7,8,12, भावों में, मंगल हो तो मांगलिक दोष का शमन हो जाता है। कुंडली में इन सभी का विचार करना आवश्यकता होता है।यदि चन्द्रमा लग्न में हो तो जातक बलवान, ऐश्वर्यशाली सुखी व्यावसायी मानवप्रिय स्थूल शरीर, चतुर्थ स्थान में हो तो दान करने वाला, सुखी, उदार, रोग रहित, रागद्वेषवर्जित, कृषक विवाह के पश्चात भाग्योदयी, जलजीवी एवं बुद्धिमान, चन्द्र सातवें स्थान में हो तो सभ्य, नेता, विचारक, प्रवासी, जलयात्रा करने वाला, अभिमानी, व्यापारी, वकील, कामी व्यापार से लाभवाला वाचाल स्वाभिमानी बन्धन से दुखी होने वाला होता हैं। बारहवें भाव में चन्द्रमा हो तो नेत्ररोगी, चंचल, कफरोगी कोधी,एकान्तप्रिय, चिन्तनशील, मृदुभाषी एवं अधिक व्यय करने वाला होता है।

यदि मंगल लग्न में हो तो जातक क्रूर, साहसी, चपल, विचार रहित महत्वकाक्षी, गुप्तरोगी, लौह धातु आदि कष्ट से युक्त एवं व्यवसाय की हानि करने वाला होता हैं,मंगल द्वितीय स्थान में हो तो कटुभाषी, धनहीन, निर्बुद्धि, पशुपालक, कुटुम्ब क्लेशवाला, चोर से मिलने वाला, नेत्र-कर्णरोगी तथा कटु-तिक्तरसप्रिय, तृतीय भाव में मंगल हो तो प्रसिद्ध, शूरवीर, साहसी, सर्वगुणी, बन्धुहीन, बलवान् प्रदीप्त जठराग्निवाला, भ्रातृकष्टकारक एवं कटुभाषी, चतुर्थ में मंगल हो तो वाहन सुखी, सन्ततिवान्, मातृसुखहीन, प्रवासी, अग्निभययुक्त, अल्पमृत्यु प्राप्त करने वाला, कृषक, बन्धुविरोधी एवं लाभयुक्त, पाँचवें भाव में हो तो उग्रबुद्धि, कपटी, व्यसनी, रोगी, उदररोगी, कृशशरीरी, गुप्तांगरोगी, चंचल, बुद्धिमान् एवं सन्तति-क्लेशयुक्त, छठे भाव में हो तो प्रबल जठराग्नि, बलवान्, धैर्यशील, कुलवन्त, शक्ति, शत्रुहन्ता, ऋणी, पुलिस अफसर, दाद रोगी, कोधी, व्रण और रक्तविकारयुक्त एवं अधिक व्यय करने वाला, मंगल सातवें स्थान में हो तो स्त्री-दुखी, वातरोगी, राजभीरू, शीघ्र कोपी, कटुभाषी, धूर्त, मूर्ख, निर्धन, घातकी, धननाशक एवं ईष्यालु, आठवें भाव में हो तो व्याधिग्रस्त, व्यसनी, मद्यपायी, कठोरभाषी, उन्मत, नेत्ररोगी, शस्त्रचोर, अग्निभीरू, संकोची, रक्तविकारयुक्त एवं धनचिन्तायुक्त, नौवें भाव में मंगल हो तो द्वेषी, अभिमानी, क्रोधी, नेता, अधिकारी, ईष्यालु, अल्प लाभ करने वाला, यशस्त्री, असन्तुष्ट एवं भ्रातृविरोधी, दसवें भाव में हो तो धनवान्, कुलदीपक, सुखी, यशस्त्री, उत्तम-वाहनों से सुखी, स्वाभिमानी एवं सन्तति कष्टवाला, ग्यारहवें भाव में हो तो कटुभाषी, दम्भी, झगड़ालू, कोधी, लाभ करने वाला, साहसी, प्रवासी, न्यायवान् एवं धैर्यवान् और बारहवें भाव में मंगल हो तो नेत्ररोगी, स्त्रीनाशक, उग्र, ऋणी, झगड़ालू, मूर्ख व्ययशील एवं नीच प्रकृति का पापी होता है।यदि

शुक लग्न में हो तो जातक दीर्घायु, सुन्दर देही, ऐश्वर्यवान, सुखी, मधुरभाक सवासी,विद्वान, भोगी, विलासी, कामी एवं राजप्रिय, द्वितीय भाव में हो तो धनवान मिष्टान्नमोजी, यशस्त्री, लोकप्रिय सुखी, समयज्ञ, कुटुम्बयुक्त, कवि, साहसी एवं भाग्यवान, तृतीय भाव में शुक्र हो तो सुखी, धनी, कृपण, आलसी, चित्रकार, , विद्वान, भाग्यवान एवं पर्यटनशील, शुक्र चतुर्थभाव में हो तो सुन्दर, बलवान्, परोपकारी, आस्तिक सुखी, व्यवहारदक्ष, पुत्रवान्,दीर्घायु, सातवें भाव में हो तो स्त्री से सुखी, उदार, लोकप्रिय धनिक, चिन्तित एवं भाग्यवान् बारहवें भाव में शुक्र हो तो न्यायशील, आलसी, पतित, धातुविकारी, स्थूल, परस्त्रीरतः बहुभोजी, धनवान, मितव्ययी एवं शत्रुनाशक होता है। शुक ग्रह भौतिक सुखों का प्रदाता है। आज मानव आधुनिक चकाचौंध का जीवन जीना चाहता है। क्योंकि आज व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक दोनों रूप से आलसी हो गया हैं।वह शरीर से थोड़ा सा भी परिश्रम नहीं करना चाहता है, इसलिए वह पैदल नही चलना चाहता हैं ।सामान्य जीवन से अलग मनुष्य की दिनचर्या हो गयी है। वर वधू का मांगलिक विचार लग्न, शुक्र एवं चन्द्र ग्रह से अवश्य करना चाहिए।जिससे की समस्याओं का समाधान हो सके।

3.6 मांगलिक दोष परिहार

यदि लड़की की कुण्डली में जिस स्थान पर मंगल स्थित हो, और लड़के की कुण्डली में उसी स्थान पर शनि, मंगल, सूर्य, राहु आदि कोई पाप ग्रह स्थित हों, तो भौमदोष समाप्त हो जाता हैं। इसी प्रकार लड़के की कुण्डली में भौम दोष होने पर कन्या की कुण्डली में उसी भाव में कोई पाप ग्रह होने से भी भौमदोष समाप्त होता है।

शनिः भौमोऽथवा कश्चित् पापो वा तादृशो भवेत् ।
तेष्वेव भवनेष्वेव भौमदोष विनाश कृत् ॥
भौयेनसदृशो भौमः पापो व तादृशो भवेत्।
विवाहः शुभदः प्रोक्तश्चिरायुः पुत्रपौत्रदः ॥

अर्थात् एक की कुण्डली में मंगल दोष हो, तो दूसरे की कुण्डली में भी उन्हीं स्थानों में शनि आदि पाप ग्रह होने से मंगलिक दोष का प्रभाव क्षीण होकर विवाह में शुभ होता है।

यामित्रे च यदा सौरि लग्ने वा हिबुके तथा।
अष्टमे द्वादशे चैव भौमदोषो न विद्यते ॥

मेष राशि का मंगल लग्न में, वृश्चिक राशि का चौथे भाव में, मकर का सातवें, कर्क देश का आठवें, एवं धनु राशिस्थ मंगल 12वें हो, तो मंगल दोष क्षीण हो जाता है1

अजे लग्ने व्यये चापे पाताले वृश्चिके कुजे ।
घूने मृगे कर्किचाष्टौ भौमदोषो न विद्यते ॥

प्रकारान्तर से, मीन का मंगल 7 वें भाव तथा कुम्भ राशि का मंगल अष्टम में भाव में हो तो मांगलिक दोष समाप्त हो जाता है।यदि द्वितीय भाव में चन्द्र-शुक्र का योग हो, या मंगल गुरु द्वारा दृष्ट हो, अथवा केन्द्र में राहु-मंगल का योग होतो मंगल दोष का प्रभाव कम हो जाता है।

बलान्वित गुरु वा शुक्र लग्न में हो, तो वक्री, नीचस्थ, अस्तंगत अथवा शत्रुक्षेत्री मंगल उपरोक्त दुष्ट स्थानों में होने पर भी भौम दोष नहीं होता-

सबले गुरौ भृगौ वा लग्ने धूनेऽथवाभौमे।
वक्रे नीचारि गृहस्थे वाऽस्तेऽपि न कुजदोषः ॥ मुहूर्त दीपक

इसी प्रकार केन्द्र व त्रिकोण भाव में यदि शुभ ग्रह हों, तथा 3, 6, 11वें भावों में पाप-ग्रह हों तथा सप्तमेश ग्रह सप्तम में ही हो, तो मंगल दोषकारक एवं अनिष्टकारक नहीं होता

केन्द्र कोणे शुभादये च त्रिषडायेऽप्यसङ्ग्रहाः ।
तदाभौमस्य दोषो न मदने मदपस्तथा ।। मुहूर्त चिंतामणि

यद्यपि 1, 2, 4, 7, 8, 11 और 12वें भावों में स्थित मंगल वर-वधू के वैवाहिक जीवन मेंविघटन उत्पन्न करता है, परन्तु यदि मंगल अपने घर (1, 8) का हो, उच्चस्थ (मकर) का मित्र क्षेत्री मंगल दोष कारक नहीं होताहैं ।

तनु धन सुख मदनायुर्लाभ व्ययगः कुजस्तु दाम्पत्यम् ।
विघट्यति तद् गृहेशो न विघटयति तुंगमित्रगेहेवा ।। मुहूर्तचिंतामणि-

यदि वर-कन्या की कुण्डलियों में परस्पर राशिमैत्री हो तो तथा 27 गुण या अधिक मिल रहें होतो भौम दोष का विचार नही करना चाहिए ।

राशिमैत्रं यदा याति गणैक्यं वा यदा भवेत्।
अथवा गुण बाहुल्ये भौम दोषो न विद्यते ।। मुहूर्त्त दीपक-

वर-कन्या की कुण्डली में मांगलिक दोष एवं उसके परिहार का निर्णय अत्यन्त सावधानीपूर्वक करना चाहिए। केवल 1,4, 7,8 आदि भावों में मंगल को देखकर दाम्पत्य जीवन के सुख-दुःख का निर्णय कर देना उपयुक्त नहींहै । इन भावों में मंगल के अतिरिक्त कोई अन्य क्रूर ग्रह भी 1, 2, 7 एवं 12वें स्थानों में हो, तो वह भी परिवारिक एवं वैवाहिक जीवन के लिए अनिष्टकारी होता है।

मंगल ग्रह से विचारणीय वस्तु तथा भाव फल-

व्यक्ति की कुंडली में मांगलिक दोष के साथ साथ द्वादश भावों में मंगल की स्थति को देखकर मुख्य फल का विचार करना चाहिए। तथा भोम से सम्बंधित विचारणीय वस्तुओं का क्या फल हो सकता इसका भी विचार करना चाहिए ।

सत्त्वं भूफलितं सहोदरगुणं क्रौर्यं रणं साहसं
विद्वेषं च महानसाग्निकनकज्ञात्यस्त्रचोरात्रिपून् ।
उत्साहं परकामिनीरतिमसत्योक्तिं महीजाद्वदे-
द्वीर्यं चित्तसमुन्नतिं च कलुषं सेनाधिपत्यं क्षतम् ।।

भौम से व्यक्ति के सत्त्व, भूमि से उत्पन्न पदार्थ खनिज धातु, रत्नादि, सहोदर भाई के गुण, क्रूरता, युद्ध, साहस, विद्वेष, भोजनालय, अग्नि, स्वर्ण, सगोत्रिय, अस्त्र, चोर प्रवृत्ति वाला, व्यवसाय से जीविका प्राप्त करने वाला होता है।

भौमांशके धातुरणप्रहारैर्महानसाद्भूमिवशात्सुवर्णात् ।
परोपतापायुधसाहसैर्वा म्लेच्छाश्रयात्सूचकचोरवृत्त्या ।।

जातक की कुंडली में यदि दशम भाव का अधिपति मङ्गल के नवांश में स्थित हो तो जातक धातु सम्बन्धी व्यवसाय से, युद्ध से, प्रहार से सेना में प्रविष्ट होकर, विद्युत् या अग्नि के संयोग सेसोना और स्वर्ण-निर्मित वस्तुओं के व्यवसाय से, सर्राफ के व्यवसाय से, भोजन बनाने से, भूमि के व्यवसाय से, दूसरों को प्रताड़ित करके, म्लेच्छों के माध्यम से, गुप्तचरी के द्वारा अथवा चौरकर्म से जीविका प्राप्त करने वाला होता है।यदि भोम लग्न-द्वितीय-तृतीय, एवं चतुर्थभाव में हो इस प्रकार के जातक को भावानुसार फल की प्राप्ति होती है । आचार्य मंत्रेस्वर कहते हैं।

क्षततनुरतिक्रूरोऽल्पायुस्तनौ घनसाहसी
बचसि विमुखो निर्विद्यार्थः कुजे कुजनाश्रितः ।
सुगुणधनवाञ्छूरोऽधृष्यःसुखी व्यनुजोऽनुजे
सुहृदि विसुहृन्मातृक्षोणीसुखालयवाहनः ॥

यदि जन्माङ्ग काल में मंगल लग्न में स्थित हो तो जातक का शरीर क्षत, व्रण आदि चिह्नों से युक्त होता है, तथा अत्यन्त क्रूर और अति साहसी होता है।धनभाव में स्थित हो तो जातक कुरूप, विद्या और धन से हीन और दुर्जनों का आश्रित होता है,तृतीयभावस्थ हो तो जातक गुणी, धनी, शूरवीर और उद्धत स्वभाव का तथा सुख का भोग करनेवाला होता है, तथा उसके भाई नहीं होते,यदि भौम चतुर्थ भाव में स्थित हो तो जातक स्वजनों से हीन, मातृसुख, भूमि, भवन, वाहनादि सुखों से रहित होता है।

क्रूरः साहसनिरतः स्तब्धोऽल्पायुः स्वमानशौर्ययुतः क्षतगात्रः सुशरीरो वने लग्नाश्रिते चपलः ।।

अधनः कदशनतुष्टः पुरुषो विकृताननो धनस्थाने । कुजनाश्रयश्च रुधिरे भवति नरो विद्यया रहितः ।।

शूरो भवत्यधृष्यो भ्रातृवियुक्तो मुदान्वितः पुरुषः। भूपुत्रे सहजस्थे समस्तगुणभाजनं ख्यातः ।। बन्धुपरिच्छदरहितो भवति चतुर्थेऽथ वाहनविहीनः । अतिदुःखैः सन्तप्तः परगृहवासी कुजे पुरुषः।।

इसी प्रकार से पञ्चम-षष्ठ-सप्तम-अष्टमभाव में मंगल ग्रह का भावानुसार फल मिलता है-

विसुखतनयोऽनर्थप्रायः सुते पिशुनोऽल्पधीः
प्रबलमदनः श्रीमान् ख्यातो रिपौ विजयी नृपः।
अनुचितकरो रोगार्तोऽस्तेऽध्वगो मृतदारवान्
कुतनुरधनोऽल्पायुश्छिद्रे कुजे जननिन्दितः ॥

यदि मंगल पंचम भाव में स्थित हो तो जातक शारीरिक सुख से दुर्बल, अल्प धन प्राप्त, बातूनी और अल्पबुद्धि होता है,षष्ठ भाव में स्थित हो तो जातक में काम की मात्र थोड़ा अधिक होती है, धनसम्पन्न, विख्यात और विजयी राजा होता है,यदि सप्तम भाव में भौम स्थित हो तो जातक अनुचित कार्य निष्पन्न करने वाला, रोगी, प्रवासी, यायावर और अल्पसंततिवाला हो सकता है,अष्टम भाव में स्थित हो तो जातक दिव्याङ्ग, अल्पधन प्राप्त, अल्पायु और अल्प सम्मान प्राप्त करने वाला हो सकता है।

सौख्यार्थपुत्ररहितश्चलमतिरपि पञ्चमे कुजे भवति।
पिशुनोऽनर्थप्रायः खलश्च विकलो नरो नीचः ।।
प्रबलमदनोदराग्निः सुशरीरो व्यायतो बली षष्ठे।
रुधिरे सम्भवत्ति नरः स्वबन्धुविजयी प्रधानश्च ।।
मृतदारो रोगार्तोऽमार्गरतो भवति दुःखितः पापः।
श्रीरहितः सन्तप्तः शुष्कतनुर्भवति सप्तमे भौमे।।
व्याधिप्रायोऽल्पायुः कुशरीरो नीचकर्मकर्ता च।।
निधनस्थे क्षितितनये भवति पुमान् शोकसन्तप्तः' ॥

यदि मंगल ग्रह नवम भाव में स्थित हो तो जातक राजा का मित्र, निन्दित, पितृहीन और अपराधी वृत्ति वाला होने की सम्भावना हो सकती है, दशम भाव में स्थित हो तो जातक

क्रूरमना, राजा, दानवीर प्रधान और लोकप्रशंसित हो सकता है, एकादश भावगत हो तो शोकरहित, धन से सुखी और शीलवान् हो सकता है,द्वादश भाव में स्थित हो तो जातक नेत्ररोगी, निर्मम, पत्नी सुख से वंचित, बातूनीतथा दुखी हो सकता है।

शुभजनघातको नृपसुहृदपि द्वेष्योऽतातः शुभजनघातको
नभसि नृपतिः कूरो दीता प्रधानजनस्तुतः ।
धनसुखयुतोऽशोकः शूरो भवे सुशीलः कुजे
नयनविकृतः क्रूरोऽदारो व्यये पिशुनोऽधमः ॥

जिस जातक की कुंडली में मांगलिक दोष होता है, उस जातक को भावानुसार अलग अलग रोगों का प्रभाव भी पड़ता है।

तृष्णासृक्कोपपित्तज्वरमनलविषास्त्रार्तिकुष्ठाक्षिरोगान्
गुल्मापस्मारमज्जाविहतिपरुषतापामिकादेह भङ्गान् ।
भूपारिस्तेनपीडां सहजसुतसुहृद्वैरियुद्धं विधत्ते
रक्षोगन्धर्वघोरग्रह भयमवनीसूनुरूर्ध्वाङ्गरोगम्। ।

मंगल ग्रह से होने वाली व्यधियों से होने वाले लाभ और हानि का भावानुसार फल की प्राप्ति होती है। जो अत्यधिक प्यास, रक्त-विकार, पित्तज ज्वर, अग्नि, विष और शस्त्राघात का भय, कुष्ठरोग, नेत्र-विकार, गुल्मरोग, अपस्मार, मज्जा सम्बन्धी विकार, शारीरिक अङ्गविकृति, राजा, शत्रु और मित्र से उत्पीड़न भाई, पुत्र, शत्रु और मित्रों से विवाद कलह, गन्धर्व आदि दुष्टात्माओं से तथा शरीर के ऊपरी भाग में फेफड़े, गले, मुख, नेत्र, कान की बीमारी आदि का मङ्गल के दूषित होने से प्राप्त होने की संभावना रहती है।

कः पितृदूषको गतधनस्तारापतौ सार्कजे'

भारतीय परम्परा में मनुष्य एक दूसरे से प्रेम पूर्वक कैसे रह सकता है, उसके लिये ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कुंडली मेलापक, मांगलिक विचार कर निश्चित करना चाहिए।1,4,7,8 और 12 इन भावों में मंगल के होने से क्या फल प्राप्त होता है, तथा मंगल ग्रह की महादशा में लाभ हानि क्या हो सकती है,इन सभी का विचार करना चाहिए।मंगल की महादशा में यदि भौमान्तर्दशा प्राप्त हो तो उस अवधि में जातंक पित्तप्रकोप के उत्पन्न तीव्र ज्वर से तथा व्रण से पीड़ित होता है।

भौमस्य स्वदशाफलानि हुतभुग्भूपाहवाद्यौर्धनं ।
भैषज्यानृतवञ्चनैश्च विविधैः क्रौर्यैर्धनस्थागमः ।।

भौम महादशा में यदि भौमान्तर्दशा प्राप्त हो तो उस अवधि में जातक पित्तप्रकोप के उत्पन्न तीव्र ज्वर तथा व्रण से पीड़ित होता है, स्वजनों से (वियोग), भूमि धन-सम्पदादि का लाभ, अग्निभयदायाद, शत्रु, राजा, चोर आदि से विरोध करने वाला हो सकता है।

पित्तोष्णरुग्व्रणभयं सहजैर्वियोगः
क्षेत्रप्रवादजनितार्थविभूतिसिद्धिः ।
ज्ञात्यग्निशत्रुनृपचोरजनैर्विरोधो
धात्रीसुतो हरति चेच्छरदं स्वकीयाम् ।।

पराशर मतानुसार – मंगल ग्रह के अशुभ होने से जातक को विपरीत फल प्राप्त होता है। जिस से कुंडली मेलापक में या मांगलिक होने पर इन सभी विपरीत समस्याओंसे ग्रसित होना पड़ता है। शस्त्राघात, अग्नि, चोर, शत्रु और राजप्रकोप का भय, विषपानादि से कष्ट, कुक्षि, एक और

शिर में व्याधिजन्य कष्ट, गुरुजनों और स्वजनों की हानि, स्वयं की हानि अथवा भयंकर विषदा आदि फल भौम की महादशा में यदि राहु की अन्तर्दशा हो तो जातक को अनेक प्रकार के दुखों का सामना करना पड़ सकता है। चन्द्र से 4, 8,12,7स्थानों में मंगल का होना, शुक्र से इन्ही स्थानों में मंगल ग्रह का होना, लग्न से भी इन्ही स्थानों में मंगल ग्रहों के होने पर मांगलिक दोष होता है। तथा इन्ही स्थानों पर मंगल ग्रह होने पर मांगलिक दोष का शमन हो जाता है।यदि दशा, महादशा में मंगल ग्रह की दशा हो तो मांगलिक होने पर भी अधिक कष्ट होने की सम्भावना रहती है। जिसका उपाय अनिवार्य रूप से करना चाहिए । जातक को उपाय करने से लाभ की प्राप्ति होती है ।

3.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने अध्ययन किया कि मांगलिक क्या होता है, कैसे बनता है। इससे होने वाले लाभ तथा हानि क्या क्या हैं, इन सभी का वर्णन किया गया है। वर एवं वधू की कुंडली में मांगलिक योग मंगल ग्रह से बनता है। मंगल ग्रह के स्वरूप का वर्णन 1,4,7,8,12, भावों में मंगल ग्रह के रहनें पर मांगलिक योग बनता है,यदि वर-वधू दोनों की कुंडली में मांगलिक योग है तो दोनों का मंगल दोष समाप्त हो जाता है, ऐसे शास्त्रों के अनुसार कहा गया है, यदि किसी एक की कुंडली में मांगलिक दोष है, दूसरी कुंडली में मंगल दोष नहीं है तो इसके लिए क्या करें इसके लिए शास्त्रानुसार पापग्रह क्रूर ग्रह , शनि, भोम, राहु, केतु 1,4,7,8,12 इन स्थानों में बैठे हो तो मांगलिक दोष समाप्त हो जाता है। केन्द्र भाव में मंगल का क्या फल है, लग्न,शुक्र, चन्द्र से मंगल का विचार करना आवश्यक होता मंगलदोष है, तथा द्वादश भावों में इनका क्या फल है इन सभी का उल्लेख किया गया है कि जातक विवाह के उपरांत सुख पूर्वक अपना जीवन यापन कर सके क्योंकि मंगल दोष होने से विवाह से पूर्व एवं बाद में किसी भी समस्या का सामना न करना पड़े, अत: देखा जाय तो मंगल ग्रह का सप्तम भाव में बैठना अति हानिकारक होता है, जो विवाह में विघ्न उत्पन्न तो करता ही है, वह व्यक्ति अपनी पत्नी के साथ प्रसन्न नहीं रहता है। छोटी छोटी बातों में बार बार द्वन्द होता रहता है। जैसे किसी वधू की कुंडली के चतुर्थ भाव में मंगल बैठा हो तो वह वधू मांगलिक हो गयी वो भी चतुर्थ मंगल , इसी के ठीक विपरीत वर की कुंडली के सप्तम या अष्टम भाव में मंगल ग्रह बैठा हो तो यह अधिक प्रबल मांगलिक होता है। इस स्थिति में मंगल दोष का प्रभाव विवाह के बाद भी रहता हैं, मांगलिक शान्ति के पश्चात् भी मांगलिक का प्रभाव रहता है, आपस में मानसिक तनाव बना रहता जिससे की वर-वधू को अधिक परेशानियां होती हैं। इस परेशानी से कैसे मुक्त हो सकते है, इसके लिए कर्मकांड के माध्यम से मंगल ग्रह का चतुर्थांश जप, स्वर्ण प्रतिमा रखकर विष्णु विवाह, पीपल वृक्ष का पूजन कर सप्तपदी करके मांगलिक शान्ति करना चाहिए । जिससे वो अपने जीवन में सुखपूर्वक रह सकें।

3.8 पारिभाषिक शब्दावली

केन्द्र स्थान	-	1,4,7,10
मन्द	-	धीरे
दोष	-	कष्ट होना
भार्या	-	पत्नी
पाताल	-	चतुर्थ भाव
अष्टम भाव	-	आयु का विचार

वधू	-	स्त्री
त्रिकोण	-	5 और 9 वाँ भाव
मांगलिक	-	1,4,7,8,12 वें भाव मे मंगल का होना
द्यून	-	सप्तम भाव
अज	-	मेष राशि
सोम	-	चन्द्र

3.9 अभ्यास प्रश्न

1. मांगलिक योग कैसे बनता है ?
2. किन-किन ग्रहों से मांगलिक योग बनता है ?
3. कुंडली के किस भाव में मांगलिक दोष होता है ?
4. मांगलिक दोष कब समाप्त होता है ?
5. शुक्र से किन-किन भावों में मंगल दोष रहता है ?
6. चतुर्थ भाव में मंगल का क्या फल है ?
7. हिमगु किस ग्रह को कहते है ?
8. मन्द किस ग्रह का पर्यायवाची है ?
9. भृगु किस ग्रह का नाम है ?
10. शनि,राहुसे किस दोष का शमन होता है ?
11. यदि लग्न में मंगल है, दूसरी कुंडली में नहीं है तो किस ग्रह का विचार करना होगा ?
12. मांगलिक दोष का क्या परिहार है ?
13. प्रबल मांगलिक का विचार किस भाव से किया जाता है ?
14. कितने गुण मिलनें से मांगलिक दोष समाप्त होता है ?
15. मांगलिक दोष होंने पर क्या उपाय करना चाहिए ?

3.10 अभ्यासप्रश्नों के उत्तर

1. 1,4,7,8 और 12 स्थानों में मंगल ग्रह होने से।
2. शुक्र और चन्द्र से ।
3. 1,7,4,12 और 8भावों में।
4. जब 1,4,7,8 और 12 भावों में मंगल को छोडकर पाप ग्रह हो ।
5. 4,8,12 और 1 भावों में ।
6. चतुर्थ भाव में मंगल के होने से सम्पत्ति इत्यादि में कष्ट होता है।
7. चन्द्रमा को।
8. शनि का।
9. शुक्र।
10. मांगलिक दोष का।
11. पाप एवं क्रूर ग्रहों का।
12. केन्द्र एवं त्रिकोण मैं शुभ ग्रह तथा 3,6 और 11भावों में पाप ग्रह हो तो।
13. सप्तम एवं अष्टम भाव से।
14. गुण।

15. विष्णु विवाहएवं पीपल वृक्ष की पूजा।

3.11सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. फलदीपिका, गोपेश कुमार ओझा, प्रकाशन- मोतीलाल बनारसी दास।
2. भारतीय ज्योतिष विज्ञान, सुरकान्त झा।
3. मुहूर्त चिंतामणि , आचार्य रामदैवज्ञ,चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान।
4. मुहूर्त मार्तण्ड,आचार्य देवदत्त जोशी।
5. ज्योतिष दर्पण ।

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. मांगलिक दोष का परिचय देते हुए विस्तार पूर्वक उल्लेख कीजिए।
2. शुक्र, चन्द्र, एवं लग्न से मांगलिक योग का विस्तृत वर्णन कीजिए।
3. ज्योतिष शास्त्र के अनुसार मंगल ग्रह के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
4.1,4,7,8 और12 भावों में स्थित ग्रह फल का विस्तृत उल्लेख कीजिए।
5. मांगलिक दोष शांति का विधिवत प्रतिपादन कीजिए।

खण्ड- चार (Section-D)
ज्योतिषशास्त्र : गोचरफल विचार

इकाई.1 गोचर फल विचार

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 गोचरपरिचय

1.3.1लग्नादिद्वादश भावों में सभी ग्रहों का गोचर फल

1.3.2 ग्रह वेध

1.4 सारांश

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

1.6 बोधप्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

ज्योतिषशास्त्र भारतीय संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, जो हमारे जीवन के विविध पहलुओं को प्रभावित करने वाले खगोलीय घटनाक्रमों का अध्ययन करता है। इस शास्त्र में "ग्रह गोचर" का विशेष स्थान है। गोचर का अर्थ होता है – किसी ग्रह का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करना। जब कोई ग्रह अपनी चाल के अनुसार राशियों में स्थान परिवर्तन करता है, तो उसे ग्रह का गोचर कहा जाता है। यह गोचर व्यक्ति के जीवन में सकारात्मक या नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है, जो उसकी जन्मकुंडली में ग्रहों की स्थिति पर निर्भर करता है।

ज्योतिष में नौ ग्रहों– सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु – का विशेष महत्त्व है। इनका गोचर विभिन्न राशियों में समय-समय पर होता है और प्रत्येक गोचर से भिन्न-भिन्न फल उत्पन्न होते हैं। उदाहरणस्वरूप, शनि का गोचर दीर्घकालीन प्रभाव डालता है, वहीं चंद्रमा का गोचर अल्पकालीन होता है। ग्रहों की यह चाल जातक के जीवन में स्वास्थ्य, करियर, विवाह, शिक्षा और मानसिक स्थिति पर प्रभाव डालती है।

गोचर का अध्ययन व्यक्ति को आने वाले समय के लिए पूर्व सूचना प्रदान करता है, जिससे वह सावधानीपूर्वक निर्णय ले सके और जीवन में संतुलन बना सके। यह जीवन की दिशा को समझने और सही समय पर उचित कदम उठाने में सहायक होता है। इसलिए, ग्रह गोचर केवल एक खगोलीय घटना नहीं, बल्कि जीवन के घटनाक्रमों का दर्पण है, जो मानव जीवन पर सूक्ष्म प्रभाव डालता है। ग्रह गोचर का अध्ययन करने से व्यक्ति आत्मज्ञान, धैर्य और विवेक के साथ अपने जीवन को बेहतर बना सकता है।

1.2उद्देश्य

- गोचर को सम्यक् रूप से जान सकेंगें।
- सूर्यादि ग्रहों का द्वादश भावों में गोचर का फल जान सकेंगे।
- ग्रहों का वेध आप जान जायेगें।
- गोचर का अर्थ और उसके महत्व को समझ लेंगे।

1.3 गोचरपरिचय

ब्रह्माण्ड में स्थित ग्रह अपने-अपने मार्ग पर अपनी-अपनी गति से सदैवभ्रमण करते हुए एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करते रहते हैं। जन्म समय में येग्रह जिस राशि में पाए जाते हैं वह राशि उनकी जन्मकालीन राशि कहलाती है जोकि जन्म कुण्डली का आधार है और जन्म के पश्चात् किसी भी समय वे अपनीगति से जिस राशि में भ्रमण करते हुए दिखाई देते हैं, उस राशि में उनकी स्थितिगोचर कहलाती है । गोचर शब्द 'गम्' धातु से बनता है और उसका अर्थ है 'चलनेवाला'। ब्रह्माण्ड में करोड़ों तारे हैं। वे सब स्थिरप्राय हैं। तारों से ग्रहों की पृथक्ताको दर्शाने के लिए उनका नाम **'गो'** अर्थात् चलने वाला रखा गया। **'चर'**शब्द काअर्थ भी चलना है अर्थात् गतिमय होना। तो **'गोचर'** शब्द का अर्थ हुआ - ग्रहों कानिरन्तर चलना, अर्थात् निरन्तर गतिमय होना है। गोचर ग्रहों के प्रभाव उनके राशिपरिवर्तन के साथ-साथ बदलते रहते हैं। जातक के वर्तमान समय की शुभाशुभजानकारी के लिए गोचर विचार सरल और उपयोगी विचार है । वर्ष भर के समयकी जानकारी गुरु और शनि से मास की सूर्य से और प्रतिदिन की चन्द्रमा के गोचरसे प्राप्त की जा सकती है। वास्तविकता तो यह है कि किसी भी ग्रह का गोचर फलउस ग्रह की अन्य

प्रत्येक ग्रह से स्थिति के अनुरूप ही कहना चाहिए न कि केवलचन्द्रमा की स्थिति से। अष्टक वर्ग में इसी विधि का उल्लेख किया गया है। इसीअष्टक वर्ग पद्धति से ही चन्द्रमा की स्थिति से अन्य ग्रहों की स्थिति का फल लिखाचन्द्रमा से अमुक-अमुक भावों में सूर्य कब अच्छा फल करता है। या किन-किन'भावों में मंगल अच्छा फल करता है आदि-आदि। जन्मकुण्डली में ग्रहों का फल भी बिना चन्द्रकुण्डली से ग्रह स्थिति को देखे सत्य रूपसे नहीं कहा जा सकता। चन्द्र का महत्त्व लग्न से कम नहीं है। (बृहत्पाराशर होराशास्त्र) कहा है :

" एवं चन्द्राच्च विज्ञेयं फलं जातककोविदैः'

अर्थात् ज्योतिष शास्त्र के पंडितों को लग्न की भांति चन्द्र लग्न से भी फलादेशकहना चाहिए।

गोचर में ग्रहों का विचार लग्न से किया जाये अथवा जन्म राशि से - यह एकमहत्त्वपूर्ण प्रश्न है। इस प्रश्न का उत्तर 'ज्योतिर्निबन्ध' का निम्नांकित श्लोक कुछहद तक निर्देशित करता है :

"विवाहे सर्वमाङ्गल्ये यात्रादौ ग्रहगोचरे
जन्मराशेः प्रधानत्वं नामराशिं न चिन्तयेत।"

अर्थात् विवाह और अन्य मंगल कार्यों में, यात्रा आदि में, और ग्रहों के गोचर'विचार में जन्मराशि की प्रधानता है न कि नाम राशि की। दक्षिण भारत के मान्यज्योतिष ग्रन्थ 'फलदीपिका' में भी चन्द्र लग्न से अर्थात् जन्म राशि से गोचर विचारकरने का निर्देश है :

"सर्वेषु लग्नेष्वपि सत्सुचन्द्रलग्नं प्रधानं खलु गोचरेषु।"

अर्थात् सब प्रकार की लग्नों (लग्न, सूर्य लग्न, चन्द्र लग्न) के होते हुए भी गोचरविचार में प्रधानता चन्द्र लग्न ही की है। अर्थात् चन्द्र लग्न का महत्त्व ज्योषिशास्त्रमें कुछ कम नहीं। इसका अनुमान **'जातक पारिजात'**के राजयोग अध्याय 7 केनिम्नलिखित श्लोक 13 से भी हो जाएगा-

"नीचं गतो जन्मनि यो ग्रह स्यात्
तद्शिनाथोऽपि तदुच्चनाथः
सचन्द्रलग्नाद् यदि केन्द्रवर्ती
राजा भवेद् धार्मिको चक्रवर्ती।"

अर्थात् जन्म के समय जो ग्रह नीच राशि में स्थित हो, यदि उस नीच राशि कास्वामी या उस ग्रह के उच्च स्थान का स्वामी चन्द्र लग्न से केन्द्र में हो तो वह जातकचक्रवर्ती राजा होता है। यहाँ केन्द्र स्थिति चन्द्र से कही है जिससे चन्द्र की लग्नरूप से महिमा व्यक्त है। देवकेरलम् में भीलिखा है-

"चन्द्रलग्नं शरीरं स्यात् लग्नं स्यात् प्राणसंज्ञकम्
ते उभे संपरीक्ष्यैव सर्वं नाडी फलं स्मृतम्। "

अर्थात् चन्द्र लग्न शरीर है तथा लग्न प्राण है, इन दोनों का सम्यक् विचार करने केउपरान्त ही कुण्डली का फल कहना चाहिए।

लग्न और चन्द्र लग्न दोनों का एक जैसा ही महत्त्व है। यही कारण है कि उत्तरभारत में यह प्रथा है कि चाहे छोटे ब्योरे वाली जन्मपत्री ही क्यों न हो उसमें लग्नकुण्डली के साथ चन्द्र कुण्डली भी अवश्य बना दी जाती है।

चन्द्र लग्न में लग्न की अपेक्षा क्या विशेषता है, इस ओर पाठकों का ध्यानआकर्षित करना चाहेंगे। अष्टक वर्ग पद्धति में, जिसका कि गोचर एक अंग मात्र है,समस्त ग्रह और लग्न

मिलकर इस बात का निर्णय करते हैं कि वे किसी भी ग्रहविशेष को कहाँ-कहाँ शुभ अंक दे सकते हैं। उनके द्वारा शुभता प्रदान करने का यहकार्य उनके पारस्परिक गुण-दोषों, शत्रुता मित्रता, नैसर्गिक शुभता - अशुभता आदिग्रह प्रदर्शित बातों पर ही निर्भर करता है। शत्रुत्व अथवा मित्रत्व का यह कार्य दोग्रहों ही के बीच में अधिक विचारणीय है न कि किसी ग्रह और लग्न राशि के बीचमें, विशेषतया इसलिए कि लग्न एक नहीं बारह हैं। ग्रहों के लिए यह कैसे संभवथा कि वे अपना शुभ प्रभाव बारह लग्नों से विविध स्थानों पर एक साथ क्रमानुसारव्यक्त कर ही देते । अतः यह इच्छा रखते हुए भी कि ग्रहों का फल गोचर में लग्नसे कहा जाए हम अष्टक वर्ग पद्धति में ऐसा नहीं कर सकते। महर्षियों ने गोचर फलनिर्णय के लिए एक ऐसे संवेदनात्मक ग्रह को अर्थात् चन्द्र को चुना जो ग्रह होने केसाथ-साथ लग्न रूप भी है। बस, इसलिए गोचर में जन्मकालीन चन्द्र को न किलग्न को आधार माना गया है।

गोचर ग्रहों के फल समय

ग्रह	**स्थिति काल**	**फल देने का समय**
सूर्य	1 मास	प्रथम पांच दिन
चन्द्र	सवा 2 दिन	अन्तिम तीन घटी
मंगल	45 दिन	प्रथम आठ दिन
बुध	1 मास	सर्वकाल
गुरू	13 मास	मध्यकाल के दो महीना
शुक्र	1 मास	मध्य सात दिन
शनि	30 मास	अन्तिम छ: मास
राहु	18 मास	अन्तिम दो मास
केतु	18 मास	अन्तिम दो मास

ग्रहों के गोचरफल- प्राप्तिकाल

क्षितितनयपतङ्गौराशिपूर्वत्रिभागे
सुरपतिगुरुशुक्र राशिमध्यत्रिभागे ।
तुहिनकिरणमन्दौ राशिपाश्चान्त्यभागे
शशितनय भुजङ्गौ पाकदौ सार्वकालम् ॥

सूर्य और मङ्गल राशि के प्रथम १०° के संक्रमण काल में, बृहस्पति और शुक्र राशिके १०° से २०° पर्यन्त, चन्द्रमा और शनि राशि के अन्तिम १०० अंशों के संक्रमणावधिमें अपना फल देते हैं। बुध और राहु सम्पूर्ण राशि के संक्रमण काल में फल देते हैं।

1.3.1 लग्नादिद्वादश भावों में सभी ग्रहों का गोचर फल

फलदीपिका के अनुसार लग्नादि भावों में सूर्य संक्रमण फल

जन्मान्यायासदाता क्षपयति विभवान् क्रोधरोगाध्वदाता
वित्तभ्रंशं द्वितीये दिशति न सुखदो वञ्चनामाग्रहं च ।
स्थानप्राप्तिं तृतीये धननिचयमुदाकल्यकृच्चारिहन्ता
रोगान् दत्ते चतुर्थे जनयति च मुहुः स्त्रग्धराभोगविघ्नम् ॥

जन्मराशि में संक्रमित होने पर सूर्य जातक को थकान और धनक्षय कराता है,स्वभाव में चिड़चिड़ापन और रोगार्तता देता है तथा थका देने वाली दुःसाध्य यात्रा कराताहै । जन्मराशि से **द्वितीय भाव** के संक्रमण काल में सूर्य धनक्षय और जातक को कष्ट देताहै। वह दूसरों के द्वारा छला जाता है तथा उसमें दुराग्रह विकसित होता है। जन्मराशि से**तृतीय भाव** के संक्रमण काल मेंजातक को पदोन्नति, धनागम, प्रसन्नता, रोगादि से मुक्तिऔर शत्रुओं का नाश कराता है। **चतुर्थ भाव** के संक्रमण काल में जातक को रोगार्तता तथाविषय-भोगादि में विघ्न उपस्थित करता है।

चित्तक्षोभं सुतस्थो वितरति बहुशो रोगमोहादिदाता
षष्ठेऽर्को हन्ति रोगान् क्षपयति च रिपूञ्छोकमोहान्प्रमार्ष्टि ।
अध्वानं सप्तमस्थो जठरगुदभयं दैन्यभावं च तस्मै
रुक्त्रासावष्टमस्थः कलयति कलहं राजभीतिं च तापम् ॥

जन्मराशि से **पञ्चम भाव** के संक्रमण काल में मानसिक सन्ताप, स्वास्थ्य सम्बन्धीपरेशानी, रोग-व्याधि और मोह की वृद्धि होती है। **षष्ठ भाव** के संक्रमण काल में जातकको रोगादि से मुक्ति, शत्रुओं को शोक, मोहादि और मानसिक सन्ताप से जातक मुक्त होताहै। **सप्तम भाव** के संक्रमण काल में कष्टप्रद यात्राएँ, उदर और गुदामार्ग में रोग तथाअपमानजनक स्थिति उपस्थित होती है। **अष्टम भाव** के संक्रमण काल में जातक भय औररोग, विवाद (कलह), राजकोप एवं अत्यधिक ताप से कष्ट पाता है।

आपद्दैन्यं तपसि विरहं चित्तचेष्टानिरोधं
प्राप्नोत्युग्रां दशमगृहगे कर्मसिद्धिं दिनेशे ।
स्थानं मानं विभवमपि चैकादशे रोगनाशं
क्लेशं वित्तक्षयमपि सुहृद्वैरमन्त्ये ज्वरं च ॥

नवम भाव के संक्रमण काल में सूर्य जातक को विपत्ति और दीनता देता है । स्वजनोंएवं मित्रों से विलगाव और मानसिक कष्ट होता है। **दशम भाव** के सूर्य द्वारा संक्रमण कालमें जातक को बृहत्कार्य में सफलता और उच्चपद की प्राप्ति होती है। **एकादश भाव** मेंसम्मान और वैभवादि की अभिवृद्धि होती है तथा जातक रोगादि से मुक्त होता है । **द्वादश-भाव** के संक्रमण काल में जातक को कष्ट, धन की हानि, स्वजनों से विरोध और ज्वरादिसे भय होता है ॥

जातकाभरण के अनुसार द्वादश भावोंमें रवि के फल

गतिर्भयं श्रीर्व्यसनंच दैन्यं शत्रुक्षयो यानमतीव पीडा ।
कान्तिक्षयोऽभीष्ट वरिष्ठसिद्धिर्लाभो व्ययोर्कस्य फलं क्रमेण ।।

चन्द्र से **प्रथम स्थान** में गोचर सूर्य हो तो प्रवास, **दुसरे** में भय, **तीसरे** में धनलाभ, **चौथे** में व्यसन, **पांचवे** में दरिद्रता, **छठे** मे शत्रुओंका नाश, **सातवें** में प्रवास, **आठवे** में पीडा, **नौवे** मे कांति कम होना, **दसवे** में इच्छित की प्राप्ति, **ग्यारहवे** में लाभ तथा **बारहवें** में खर्च येफल मिलते है।

फलदीपिका के अनुसार लग्नादि द्वादश भावों में गोचर चन्द्रफल

क्रमेण भाग्योदयमर्थहानिं जयं भयं शोकमरोगतां च ।
सुखान्यनिष्टं गदमिष्टसिद्धिं मोदं व्ययं च प्रददाति चन्द्रः ॥

जन्मकालिक चन्द्रराशि से द्वादश भावों में गोचरवश निम्न फल होते हैं। चन्द्रराशिके संक्रमण काल में भाग्योदय, **द्वितीय भाव** के संक्रमण काल में धननाश, **तृतीय भाव** केसंक्रमण काल में विजय, सफलता, **चतुर्थ भाव** के संक्रमण काल में भय, **पञ्चम भाव** केसंक्रमण काल में शोक**, षष्ठ भाव** के संक्रमण काल में नैरोग्यता, **सप्तम भाव** के संक्रमणकाल में सुख, **अष्टम भाव** के संक्रमण काल में अनिष्ट, **नवम भाव** के संक्रमण काल मेंरोग, **दशम भाव** के संक्रमण काल में अभीष्ट की सिद्धि, **एकादश भाव** के संक्रमण कालमें मोद (आनन्द) तथा **द्वादश भाव** के संक्रमण काल में व्ययभार में वृद्धि होती है ॥

जातकाभरण के अनुसार द्वादश भावोंमें चन्द्र के फल

सदन्नसमर्थक्षयमर्थलाभं कुक्षिव्यथां कार्यविघातलाभम् ।
वित्रं रुजं राजभयं सुखंच लाभंच शोकं कुरुते मृगांकः ॥

जन्मराशि से **प्रथम स्थान** में गोचर चन्द्र उत्तम अन्न देता है, **दूसरे** में धनहानि, **तीसरे** में धनलाभ, **चौथे** में पेटदर्द, **पांचवे** में काममें सफलता, **छठे** में काम बिगडना, **सातवें** में लाभ, **आठवें** में रोग, **नौवे** में राजा का भय, **दसवे** में सुख, **ग्यारहवें** में लाभ और **बारहवें**में शोक ये फल मिलते है। पुत्रधर्मधनस्थस्य चन्द्रस्योक्तमसत् फलम्।कलाक्षये परिज्ञेयं कलावृद्धौ तु साधुतत् ॥ दुसरे, पांचवे तथा नौवेंस्थान में चन्द्रका जो अशुभ फल बतलाया है वह चन्द्र के कलाक्षय केसमय का अर्थात कृष्णपक्ष की अष्टमी से शुक्ल पक्ष की पंचमी तक केसमय के चन्द्र का है। शेष तिथियों के चन्द्र के उक्त स्थानों के फलबहुत शुभ होते है क्यों की उस समय चन्द्र की कलाएं अधिक होती है।

फलदीपिका के अनुसार लग्नादि द्वादश भाव में गोचर मंगल का फल

अन्तः शोकं स्वजनविरहं रक्तपित्तोष्णरोगं
लग्ने वित्ते भयमपि गिरां दोषमर्थक्षयं च ।
धैर्ये भौमो जनयति जयं स्वर्णभूषाप्रमोदं
स्थानभ्रंशं रुजमुदरजां बन्धुदुःखं चतुर्थे ॥

जन्मराशि के संक्रमण काल में भौम जातक को मनस्ताप, स्वजन-वियोग, रक्त औरपित्त की विकृति से उत्पन्न व्याधि से कष्ट देता है। **द्वितीय भाव** के संक्रमण काल में भय,वाणीदोष तथा धनक्षय होता है। **तृतीय भाव** के संक्रमण काल में विजय, सफलता,स्वर्णाभूषण और आनन्द का लाभ होता है। **चतुर्थ भाव** के संक्रमण काल में पदच्युति,उदरजन्य व्याधि तथा जातक के स्वजनों पर विपत्ति आती है।

ज्वरमनुचितचिन्तां पुत्रहेतुव्यथां वा
कलयति कलहं स्वैः पञ्चमे भूमिपुत्रः ।
रिपुकलहनिवृत्तिं रोगशान्तिं च षष्ठे
विजयमथ धनाप्तिं सर्वकार्यानुकूल्यम् ॥

पञ्चम भाव में मङ्गल के संक्रमण काल में जातक ज्वर, अनावश्यक पुत्रचिन्ता अथवास्वजनों से कलहजन्य सन्ताप होता है। **षष्ठ भाव** में संक्रमित होने पर मङ्गल शत्रुओं सेकलह की निवृत्ति, नैरुज्यता, विजय, धन का लाभ और सभी कार्यों में अनुकूलता होतीहै ॥

कलत्रकलहाक्षिरुग्जठररोगकृत्सप्तमे
ज्वरक्षतजरूक्षितोविगतवित्तमानोऽष्टमे ।
कुजे नवमसंस्थिते परिभवोऽर्थनाशादिभि-

विलम्बितगतिर्भवत्यबलदेहधातुक्षयैः॥

सप्तम भाव में मङ्गल के संक्रमण काल में जातक का पत्नी से विरोध, नेत्रव्याधि औरउदरव्याधि से कष्ट होता है। **अष्टम भाव** में मङ्गल के संक्रमित होने पर ज्वर, क्षत (घाव,चोट) आदि से रक्तस्राव तथा अर्थ और सम्मान-प्रतिष्ठा की हानि होती है। **नवम भाव** मेंसंक्रमित होने पर पराजय, धनक्षय, शारीरिक दुर्बलता के कारण कार्यक्षमता की हानि, शरीरको पुष्टि प्रदान करने वाले तत्त्वों का क्षय आदि फल होता है ॥

दुश्चेष्टा वा कर्मविघ्नः श्रमः खे द्रव्यारोग्यक्षेत्रवृद्धिश्च लाभे ।
भौमः खेटो गोचरे द्वादशस्थो द्रव्यच्छेदस्ताप उष्णामयाद्यैः ॥

दशम भाव में भौम के संक्रमित होने पर दुराचार में प्रवृत्ति होती है अथवा उसकेकार्यों में विफलता या विघ्न उपस्थित होते हैं तथा जातक अत्यधिक थकान एवं परिश्रान्तिका अनुभव करता है। **एकादश भाव** में संक्रमित होने पर जातक को धन,भूसम्पदादि की वृद्धि होती है। **द्वादश भाव** में मङ्गल के संक्रमण काल में जातक के धन काआरोग्यता,क्षय और तज्जनित सन्ताप से पीड़ित होता है। अत्यधिक उत्ताप से उद्भूत व्याधि से जातकग्रस्त होता है ॥

जातकाभरण के अनुसार द्वादश भावोंमें मंगल के फल

भीति क्षतिं वित्तमरिप्रवृद्धिमर्थ प्रणाशं धनमर्थनाशम् ।
शस्त्रोपघातं च रूजं च रोगं लाभव्यये भूतनयस्तनोति ।।

प्रथम स्थान में भय, **दूसरे** में नुकसान. **तीसरे** में धनलाभ, **चौथे**में शत्रु बढ़ना **पांचवे** मे धनहानि, **छठे** में धनलाभ, **सातवे** मेंधनहानि, **आठवे** में शस्त्रों से आघात, **नौवे** व दसवें में रोग, **ग्यारहवें**में लाभ तथा **बारहवे** में खर्च ये गोचर मंगल के फल है ।

फलदीपिका के अनुसार द्वादश भावों में गोचर से बुध का फल

वित्तक्षयं श्रियमरातिभयं धनाप्तिं
भार्यातनूजकलहं विजयं विरोधम् ।
पुत्रार्थलाभमथ विघ्नमशेषसौख्यं
पुष्टिं पराभवभयं प्रकरोति चान्द्रिः ॥

अपने संक्रमण काल में बुध **जन्मराशि** में धनक्षय कराता है। **द्वितीय** भाव में संक्रमितहोकर धनलाभ कराता है, **तृतीय भाव** के संक्रमण काल में शत्रुभय देता है, **चतुर्थ भाव** मेंसंक्रमित होकर धनलाभ कराता है, **पञ्चम भाव** के संक्रमण काल में स्त्री और पुत्रों से कलहकराता है, **षष्ठ भाव** के संक्रमण काल में विजय प्रदान करता है, **सप्तम भाव** के संक्रमणकाल में विरोध कराता है, **अष्टम भाव** के संक्रमण काल में धन-पुत्रादि का लाभ देता है, **नवमभाव** के संक्रमण काल में जातक के लिए विघ्न उपस्थित करता है, **दशम भाव** के संक्रमणकाल में चतुर्दिक् सुख होता है, **एकादश भाव** के संक्रमण काल में धनलाभ और **द्वादश भाव**के संक्रमण काल में जातक को भय एवं तिरस्कार प्राप्त होता है ॥

जातकाभरण के अनुसार द्वादश भावोंमेंबुधके फल

बन्धुं धन वैरिभयं धनाप्ति पीडां स्थितिं पीडनमर्थलाभम् ।
खेदं सुखं लाभमथार्थ नाशं क्रमात् फल यच्छति सोमसूनुः ।।

गोचर बुध पहले स्थान में बन्धु लाभ,**दूसरे** में धनलाभ, **तीसरे**में शत्रुओं का डर, **चौथे** में धनलाभ, **पांचवे** में कष्ट, **छठे** में स्थिरता, **सातवे** में पीडा **आठवें** में धनलाभ, **नौवे** में खेद, **दसवे** में सुख, **ग्यारहवे**में लाभ तथा **बारहवे** में धनहानि ये फल देता है ।

फलदीपिका के अनुसार द्वादश भावों में गोचर से बृहस्पति का फल

जीवे जन्मनि देशनिर्गमनमप्यर्थच्युतिं शत्रुतां
प्राप्नोति द्रविणं कुटुम्बसुखमप्यर्थे स्ववाचां फलम्।
दुश्चिक्ये स्थितिनाशमिष्टवियुतिं कार्यान्तरायं रुजं
दुःखैर्बन्धुजनोद्भवैश्च हिबुके दैन्यं चतुष्पाद्भयम्॥

जन्मराशि के संक्रमण काल में बृहस्पति देशत्याग और धन की हानि तथा शत्रुताकराता है। जन्मराशि से **द्वितीय भाव** में संक्रमित होकर जातक को धनलाभ और गार्हस्थ्यसुख देता है, उसकी वाणी सारगर्भित होती है। **तृतीय भाव** के संक्रमण काल में पदच्युति,प्रिय व्यक्ति का निधन,व्यवसाय में अवरोध एवं रोगार्तता होती है। **चतुर्थ भाव** के संक्रमणकाल में स्वजनों और बन्धु-बान्धवों के कारण कष्ट, दीनता और चतुष्पादों से भय होताहै॥

पुत्रोत्पत्तिमुपैति सज्जनयुतिं राजानुकूल्यं सुते
षष्ठे मन्त्रिणि पीडयन्ति रिपवः स्वज्ञातयो व्याधयः।
यात्रां शोभनहेतवे वनितया सौख्यं सुताप्तिं स्मरे
मार्गक्लेशमरिष्टमष्टमगते नष्टं धनैः कष्टताम्॥

बृहस्पति द्वारा जन्मराशि से **पञ्चम भाव** के संक्रमण काल में जातक को पुत्रलाभ औरसज्जनों से समागम होता है तथा राजकृपा प्राप्त होती है। **षष्ठ भाव** के संक्रमणावधि मेंजातक शत्रुओं और स्वजनों के द्वारा उत्पीड़ित होता है तथा रोगार्तता से कष्ट पाता है। **सप्तमभाव** केसंक्रमण काल में सदुद्देश्य से यात्रा, भार्या से सुख और पुत्रलाभ होता है। **अष्टम भाव**के संक्रमण काल में कष्टप्रद यात्राएँ, अरिष्ट, धनक्षय और कष्ट आदि फल होते हैं॥

भाग्ये जीवे सर्वसौभाग्यसिद्धिः कर्मण्यर्थस्थानपुत्रादिपीडा।
लाभे पुत्रस्थानमानादिलाभो रिः फे दुःखं साध्वसं द्रव्यहेतोः॥

भाग्य भाव (९वें भाव) में संक्रमित होने पर बृहस्पति सौभाग्य का उदय और सिद्धिकराता है। **दशम भाव** के संक्रमण काल में धन, स्थान और पुत्र की हानि कराता है।**एकादश** भाव के बृहस्पति द्वारा संक्रमण काल में पुत्र, स्थान और सम्मानादि की वृद्धि होतीहै। **द्वादश भाव** में संक्रमित होने पर जातक को कष्ट, धन-सम्पदादि की हानि का भय होताहै॥

जातकाभरण के अनुसार द्वादश भावोंमेंगुरू के फल

भीति वित्तं पीडनं वैरिवृद्धिं सौख्यंशोकं राजमानंच रेगम्।
सौख्यं दैन्यं मानवित्तंच पीडादत्ते जीवोजन्मराशेः सकाशात्ः॥

जन्मराशि से गुरू का परिभ्रमण भय उत्पन्न करता है, **दूसरेस्थान** में धन, **तीसरे** में पीडा, **चौथे** में शत्रुओं की वृद्धि, **पांचवे** मेंसुख, **छठे** में शोक,**सातवें** में सरकारी सन्मान, **आठवें** में रोग, **नौवे**मे सुख या दीनता **दसवे** में सन्मान, **ग्यारहवें** मे धन,**बारहवें** में पीडाये फल मिलते है।

फलदीपिका के अनुसार द्वादश भावों में शुक्र का गोचर - फल

अखिलविषयभोगं वित्तसिद्धिं विभूतिं
सुखसुहृदभिवृद्धिं पुत्रलब्धि विपत्तिम्।
दिशति युवतिपीडां सम्पदं वा सुखाप्ति
कलहमभयमर्थप्राप्तिमिन्द्रारिमन्त्री॥

जन्मराशि के संक्रमण काल में शुक्र समस्त विषयभोग का सुख प्रदान करता है**द्वितीय** भाव में संक्रमित होकर धनलाभ, **तृतीय भाव** में संक्रमित होकर वैभवादि का सुख,**चतुर्थ भाव** में संक्रमित होकर सुख और मित्रों की प्राप्ति, **पञ्चम भाव** में संक्रमित होकरसन्तान-लाभ का सुख, **षष्ठ भाव** के संक्रमण काल में विपत्ति, **सप्तम भाव** के संक्रमण कालमें स्त्री को कष्ट, **अष्टम भाव** के संक्रमण काल में धनलाभ, **नवें भाव** के संक्रमण काल मेंसुख, **दशम भाव** के संक्रमण काल में कलह का भय, **एकादश भाव** के संक्रमण काल मेंनिर्भयता तथा **द्वादश भाव** के संक्रमण काल में जातक को धन का लाभ होता है।

जातकाभरण के अनुसार द्वादश भावोंमेंशुक्रके फल

रिपुक्षयं वित्तमतीव सौख्यं वित्तं सुतप्राप्तिमारिप्रवृद्धिम्।
शोक धनाप्तिं वरवस्त्रलाभं पीडां स्वमर्थच ददाति शुक्रः ।।

जन्मराशि में गोचर शुक्र शत्रुओं का नाश करता है, **दूसरे स्थान**में धन, **तीसरे** में सुख, **चौथे** में धन, **पांचवे** में पुत्रप्राप्ति, **छठे** मेंशत्रुओं की वृद्धि, **सातवे** में शोक, **आठवे** में धनलाभ, **नौवे** मे उत्तमवस्त्रों का लाभ, **दसवे** में पीडा, **ग्यारहवें** तथा **बारहवें भाव** में धनलाभ येफल देता है।

फलदीपिका के अनुसार द्वादश भावों में शनि का गोचर फल

रोगाशौचक्रियाप्तिं धनसुतविहतिं स्थानभृत्यार्थलाभं
स्त्रीबन्ध्वर्थप्रणाशं द्रविणसुतमतिप्रच्युतिं सर्वसौख्यम् ।
स्त्रीरोगाध्वावभीतिं स्वसुतपशुसुहृद्वित्तनाशामयार्ति
जन्मादेरष्टमान्तं दिशति पदवशेनार्कसूनुः क्रमेण ॥

गोचरवश शनि जब जातक के जन्मराशि में प्रवेश करता है तब रोगादि की वृद्धि,स्वजन का निधन, **द्वितीय भाव** के संक्रमण काल में धन-पुत्रादि की हानि, **तृतीय भाव** केसंक्रमण काल में पद (स्थान), भृत्य और धन का लाभ, **चतुर्थ भाव** के संक्रमण काल मेंस्वजन, स्त्री और धन का नाश, **पञ्चम भाव** के संक्रमण काल में धन, पुत्र और बुद्धि कीक्षति, **षष्ठ भाव** के संक्रमण काल में सभी प्रकार के सुख, **सप्तम भाव** के संक्रमण कालमें स्त्री को कष्ट, यात्रा और भय होता है, **अष्टम भाव** के संक्रमण काल में पुत्र, पशु, मित्रऔर धन का विनाश तथा रोगार्तता आदि फल होता है।

दारिद्र्यं धर्मविघ्नं पितृसमविलयं नित्यदुःखं शुभस्थे
दुर्व्यापारप्रवृत्तिं कलयति दशमे मानभङ्गं रुजं वा ।
सौख्यान्येकादशस्थो बहुविधविभवप्राप्तिमुत्कृष्टकीर्तिं
विश्रान्तिं व्यर्थकार्याद्वसुहतिमरिभिः स्त्रीसुतव्याधिमन्त्ये ॥

नवम भाव में शनि के संक्रमित होने पर दरिद्रता, धार्मिक अनुष्ठानादि में बाधा, पिताके समान किसी स्वजन का निधन और कष्ट होता है। **दशम भाव** के संक्रमण काल मेंदुराचार में प्रवृत्ति, मान-प्रतिष्ठादि की हानि और रोगादि से कष्ट होता है। **एकादश भाव** केसंक्रमण काल में सभी प्रकार के सुख, विभव और उत्कृष्ट कीर्ति का लाभ होता है । **व्ययभाव** के संक्रमण काल में शनि जातक को थकान, अनावश्यक निरर्थक कार्य में प्रवृत्ति, शत्रुद्वारा धनक्षय, स्त्री-पुत्रादि को रोगादि भय और कष्ट होता है।

जातकाभरण के अनुसार द्वादश भावोंमेंशनि के फल

भ्रशं क्लेशं शं च शत्रुप्रवृद्धिं पुत्रात सौख्यं सौख्यवृद्धिं च क्रोधम् ।

पीडां सौख्यं निर्धनत्वं धनाप्तिं नानानर्थ भानुसूनुस्तनोति ।।

जन्मराशि में गोचर शनि स्थान से गिराता है, **दूसरे** स्थान मेंकष्ट, **तीसरे** में कल्याण, **चौथे** में शत्रु बढ़ना, **पांचवे** में पुत्र से सुख, **छठे** में सुख, **सातवे** में क्रोध, **आठवे** में पीडा, **नौवे** में सुख, **दसवे** मेंनिर्धनता, **ग्यारहवें** में धनलाभ तथा **बारहवे** में अनेक प्रकार के अनर्थये फल देता है।

फलदीपिका के अनुसार द्वादश भावों में गोचर के राहु का फल

देहक्षयं वित्तविनाशसौख्ये दुःखार्थनाशौ सुखनाशमृत्यून् ।
हानिं च लाभं सुभगं व्ययं च कुर्यात्तमो जन्मगृहात्क्रमेण ।।

गोचरवश राहु जन्मराशि आदि द्वादश भावों में क्रमशः जन्मराशि में शारीरिक क्षति,**द्वितीय भाव** में धनक्षय, **तृतीय भाव** में सुख, **चतुर्थ भाव** में कष्ट, **पञ्चम भाव** में धनहानि,**षष्ठ भाव** में सुख, **सप्तम भाव** में विनाश, **अष्टम भाव** में मृत्यु या मृत्यु तुल्य कष्ट, **नवमभाव** में हानि, **दशम भाव** में लाभ, **एकादश** भाव में सुख और **द्वादश भाव** में व्ययभार मेंवृद्धि आदि फल देता है।

जातकाभरण के अनुसार द्वादश भावोंमेंराहु के फल

हानिं नैःस्वं स्वं च वैरं च शोकं वित्तं वादंपीडनं चापि पापम् ।
वैरं सौख्यं द्रव्यहानिं प्रकुर्याद राहुः पुंसां गोचरो केतुरेव ।।

जन्मराशि में गोचर राहु या केतु हानि करते है, **दुसरे स्थान** मेंनिर्धनता, **तीसरे** में धनप्राप्ति, **चौथे** में वैर, **पांचवे** में शोक, **छठे** मेंधनलाभ, **सातवे** में वादविवाद, **आठवे** में पीडा, **नौवें** में पाप, **दसवें** मेंवैर, **ग्यारहवें** मे सुख तथा **बारहवें** में धनहानि ये फल देते है।

1.3.2 ग्रह वेध

सूर्यो रसान्त्ये खयुगेऽग्निनन्दे शिवाक्षयोर्भौमशनी तमश्च ।
रसाङ्कयोर्लाभशरे गुणान्त्ये चन्द्रोऽम्बराब्धौ गुणनन्दयोश्च ।।
लाभाष्टमे चाद्यशरे रसान्त्ये नगद्वये ज्ञो द्विशरेऽब्धिरामे ।
रसाङ्कयोर्नागविधौ खनागे लाभव्यये देवगुरुः शराब्धौ ।।
द्वयन्त्ये नवांशेऽद्रिगुणे शिवाहौ' शुक्रः कुनागे द्विनगेऽग्निरूपे ।
वेदाम्बरे पञ्चनिधौ गजेषौ नन्देशयोर्भानुरसे शिवाग्नौ ।।
क्रमाच्छुभो विद्ध इति ग्रहः स्यात् पितुः सुतस्यात्र न वेधमाहुः ।
दुष्टोऽपि खेटो विपरीतवेधाच्छुभो द्विकोणे शुभदः सितेऽब्जः ।।

सूर्य छठे-बारहवें, दशवें- चौथे, तीसरे नवें, ग्यारहवें पाँचवें स्थान में क्रमसे शुभ और विद्ध होता है, अर्थात् मनुष्य की जन्मराशि से छठवीं राशि में सूर्य हो तो शुभ फल देनेवालाहोता है। यदि १२वीं राशि में शनि को छोड़कर कोई अन्य ग्रह स्थित हो तो सूर्य विद्ध हो जाताहै, अर्थात् छठवें स्थान का सूर्य उस मनुष्य को शुभफल न देकर अशुभ फल देने वाला हो जाताहै। ऐसे ही १०वीं राशि पर सूर्य शुभ, यदि चौथी राशि पर शनि के अतिरिक्त कोई ग्रह हो तोविद्ध हो जाता है। एवं तीसरे शुभ-नवमस्थ ग्रह से विद्ध, ११वें शुभ पंचमस्थ ग्रह से विद्ध होजाता है।

मंगल, शनि और राहु ये ३ ग्रह, छठी राशि पर शुभ होते हैं, यदि नवीं राशि पर कोई ग्रहहो तो विद्ध हो जाते हैं । यहाँ शनि सूर्य का वेध नहीं होता है। एवं ११ वें शुभपंचमस्थ ग्रह सेविद्ध, तीसरे शुभ बारहवीं राशि पर स्थित ग्रह से विद्ध हो जाते हैं।

चन्द्रमा जन्मराशि से १०वें शुभ-चतुर्थस्थ ग्रह से विद्ध; तीसरे शुभ-नवमस्थ ग्रह से विद्ध;११वें शुभ-आठवें स्थित ग्रह से विद्ध; जन्मराशि का शुभ पाँचवे स्थित से विद्ध; ६वें शुभ-द्वादशस्थ ग्रह से विद्ध; ७वें शुभ-द्वितीयस्थ ग्रह से विद्ध हो जाता है (यहाँ चन्द्र-बुध का वेधनहीं होता है)।

बुध दूसरे शुभ-५वें से विद्ध, चौथे शुभ- ३ रे से विद्ध, ६ठे शुभ- ९मस्थग्रह से विद्ध; ८वेंशुभ-जन्मराशि पर कोई ग्रह हो तो विद्ध, १०वें शुभ-आठवें से विद्ध, ११ वें शुभ - बारहवें स्थितग्रह से विद्ध हो जाता है (यहाँ भी चन्द्र-बुध का वेध नहीं होता है)।

बृहस्पति ५-४, २-१२, ९-१०, ५-३, ११-३ स्थानों में क्रमशः शुभ और विद्ध होता है।

शुक्र १-८, २–७, ३–१, ४-१०, ५-९, ८-५, ९-११, १२-६, ११-३ स्थानों में क्रम से शुभऔर विद्ध होता है।

यहाँ वेध-विचार में पिता-पुत्र का वेध नहीं होता है। जैसा कि पहले (सूर्य-शनि का चन्द्र-बुधका) कहा जा चुका है । दुष्ट ग्रह भी विपरीत वेध से शुभ हो जाता है। सूर्य ६वीं राशि पर शुभ१२वीं राशि से विद्ध होता है, किन्तु जिस स्थिति में इससे उलटा हो अर्थात् १२वें स्थान मेंअशुभ होता है तो छठे स्थान में कोई ग्रह हो तो १२वें का अशुभ फल न देकर शुभदायक होजाता है। इसी भाँति ग्रहों के जो शुभ और विद्ध स्थान बतलाये गये हैं, उनमें विद्धस्थान पर ग्रहरहता है तो अशुभ फलदायक होता है, परन्तु उस विद्धस्थान का जो शुभस्थान है, यदि उसमेंकोई ग्रह रहता है तो शुभस्थानस्थ ग्रह के अशुभत्व केविपरीत अर्थात् शुभफल हो जाता है।शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की दूसरी, पाँचवीं एवं नवम राशि पर शुभ होता है, यदि छठे, आठवेंएवं चौथे स्थान में स्थित किसी ग्रह से विद्ध न हो ॥

बोध प्रश्न

1 गोचर के अनुसार सूर्य का स्थिति काल होता है

(क)3 मास (ख) 1 मास (ग) 2 मास (घ) 10 दिन

2 शनि एक राशि में कितने मास तक रहता है।

(क)30 मास (ख) 12 मास (ग) 24 मास (घ) 10मास

3 गोचर के अनुसार केतु ग्रह का फल देने का समस है।

(क)अन्तिम 4 मास (ख) अन्तिम का 6 मास (ग) अन्तिम का 8 मास (घ) अन्तिम का दो मास

1.4 सारांश

गोचर ज्योतिष शास्त्र का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है, जिसके माध्यम से यह जाना जाता है कि वर्तमान समय में आकाश में स्थित ग्रहों की चाल किसी व्यक्ति की जन्म कुंडली को किस प्रकार प्रभावित कर रही है। जन्म समय पर ग्रहों की स्थिति व्यक्ति के स्वभाव और भाग्य को निर्धारित करती है, जबकि गोचर यह बताता है कि वे ग्रह वर्तमान में किन राशियों में भ्रमण कर रहे हैं और उनके प्रभाव से जीवन में क्या परिवर्तन हो सकते हैं। गोचर के माध्यम से शुभ और अशुभ घटनाओं का अनुमान लगाया जा सकता है, जैसे कि विवाह, संतान, नौकरी, स्थान परिवर्तन, स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं आदि।

हर ग्रह का गोचर काल अलग होता है। चंद्रमा का गोचर सबसे तेज होता है, जो ढाई दिन में राशि बदलता है, जबकि शनि लगभग ढाई वर्षों में एक राशि में भ्रमण करता है। इसी

प्रकार, बृहस्पति का गोचर लगभग एक वर्ष तक एक राशि में रहता है और यह ज्ञान, धर्म, विवाह और संतान से संबंधित फलों को प्रभावित करता है। सूर्य हर महीने राशि परिवर्तन करता है जिसे संक्रांति कहा जाता है। सूर्य का गोचर मान-सम्मान, सरकारी कार्यों और आत्मबल को प्रभावित करता है। मंगल का गोचर साहस, ऊर्जा और क्रोध से जुड़ा होता है तथा यह जीवन में संघर्ष या सफलता दोनों ला सकता है। बुध वाणी, बुद्धि और व्यापार का कारक है और इसका गोचर निर्णय क्षमता को प्रभावित करता है। शुक्र भोग-विलास, प्रेम और सौंदर्य का प्रतीक है, जिसका गोचर जीवन में आकर्षण और रचनात्मकता बढ़ा सकता है।

शनि को न्याय का ग्रह माना गया है और यह व्यक्ति को उसके कर्मों के अनुसार फल देता है। इसकी 'साढ़ेसाती' और 'ढैय्या' जैसी स्थितियां विशेष रूप से चर्चा में रहती हैं क्योंकि ये कालखण्ड व्यक्ति के जीवन में गहरी चुनौतियाँ और परिवर्तन ला सकते हैं। वहीं, राहु और केतु को छाया ग्रह कहा जाता है और ये वक्री चाल चलते हैं। इनका गोचर लगभग 18 महीनों तक एक राशि में रहता है। ये ग्रह अचानक होने वाली घटनाओं, मानसिक भ्रम, विदेश यात्रा और आध्यात्मिक बदलावों से जुड़े होते हैं।

गोचर के प्रभाव को केवल सामान्य राशिफल से समझना पर्याप्त नहीं होता। किसी व्यक्ति की कुंडली के अनुसार ही गोचर का वास्तविक फल पता चलता है, क्योंकि गोचर ग्रह उस व्यक्ति की जन्म राशि और ग्रहों के साथ कैसे संबंध बना रहे हैं, यह मुख्य होता है। उदाहरणस्वरूप, शनि किसी एक व्यक्ति के लिए शुभ हो सकता है जबकि दूसरे के लिए संघर्षों भरा। इसलिए ज्योतिष में गोचर का अध्ययन जन्म कुंडली के आधार पर ही किया जाता है।

इस प्रकार, ग्रह गोचर व्यक्ति के जीवन में घटित होने वाली घटनाओं की समय-सीमा और प्रकृति को जानने का एक सशक्त माध्यम है। यह न केवल वर्तमान परिस्थितियों का विश्लेषण करता है, बल्कि भविष्य की संभावनाओं की दिशा भी दिखाता है।

ग्रह गोचर केवल व्यक्तिगत जीवन पर ही नहीं, बल्कि सामूहिक और वैश्विक घटनाओं पर भी प्रभाव डालता है। जब कोई बड़ा ग्रह जैसे शनि, बृहस्पति, राहु या केतु किसी विशेष राशि या नक्षत्र में प्रवेश करता है, तो वह पूरी दुनिया में किसी न किसी प्रकार के परिवर्तनों की भूमिका बना सकता है। उदाहरण के लिए, बृहस्पति का मेष में गोचर नई शुरुआत, नेतृत्व परिवर्तन और धर्म से संबंधित गतिविधियों को बढ़ावा दे सकता है, जबकि शनि का कुम्भ या मकर में गोचर सामाजिक ढांचे और प्रशासनिक संरचनाओं को प्रभावित करता है।

गोचर केवल ग्रहों की स्थिति नहीं बताता, बल्कि यह ग्रहों के एक-दूसरे के साथ बनते योगों और दृष्टियों का भी विश्लेषण करता है। जब दो ग्रह एक साथ एक ही राशि में आ जाते हैं, तो वह 'योग' बनता है, जैसे गुरु-शनि का योग, जो धार्मिक और सामाजिक व्यवस्था में बदलाव ला सकता है। इसी प्रकार, जब कोई ग्रह किसी अन्य ग्रह पर दृष्टि डालता है, तो वह उस भाव और उससे जुड़े जीवन क्षेत्र को प्रभावित करता है। यही कारण है कि गोचर का फल जानने के लिए 'वर्तमान गोचर ग्रह' और 'जन्म कुंडली के ग्रह' के बीच संबंधों को समझना अत्यंत आवश्यक होता है।

ग्रह गोचर का उपयोग केवल फलादेश तक सीमित नहीं है, बल्कि इसके आधार पर शुभ कार्यों का चुनाव, यात्रा की योजना, निवेश या संपत्ति क्रय जैसे महत्वपूर्ण निर्णय भी लिए जाते हैं। जब ग्रहों की स्थिति अनुकूल होती है, तो सफलता की संभावना अधिक होती है, और जब गोचर प्रतिकूल होता है, तो सावधानी बरतने की सलाह दी जाती है। इसीलिए शुभ मुहूर्त

निर्धारण, विवाह तय करना, संतान सुख की योजना या व्यवसाय विस्तार जैसे निर्णयों में गोचर की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण मानी जाती है।

ज्योतिषशास्त्र में यह भी माना जाता है कि गोचर केवल स्थूल जीवन घटनाओं को नहीं, बल्कि मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक स्तर पर भी प्रभाव डालता है। उदाहरणस्वरूप, चंद्रमा का गोचर मन की स्थिति को प्रभावित करता है, और राहु-केतु का गोचर मानसिक भ्रम, आत्ममंथन और गूढ़ विषयों की ओर झुकाव बढ़ा सकता है। जिन लोगों की कुंडली में आध्यात्मिक ग्रहों का बल अधिक होता है, उनके लिए यह गोचर ध्यान, साधना, और आत्मचिंतन के लिए उपयुक्त समय ला सकता है।

नवग्रहों का यह सतत गति चक्र हमें यह सिखाता है कि परिवर्तन जीवन का अभिन्न हिस्सा है। अच्छे और बुरे समय दोनों ही अस्थायी होते हैं, और ग्रहों की गति हमें यह आश्वासन देती है कि हर कठिन समय के बाद एक शुभ समय भी आता है। गोचर हमें केवल आने वाली घटनाओं के प्रति सचेत नहीं करता, बल्कि आत्मविकास, कर्म सुधार और जीवन को संतुलित करने की प्रेरणा भी देता है।

1.5पारिभाषिक शब्दावली

दौनिक गति- वर्तमान दिन की गति

ग्रह कक्षा – ग्रहों की कक्षा, जिसमें वह भ्रमण करते हैं।

भग्य भाव – नवम भाव

कर्म भाव – दशम भाव

1.6 बोधप्रश्नों के उत्तर

1 (ख)

2 (क)

3 (घ)

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

फलदीपिका	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन , वाराणसी
मुहूर्तचिन्तामणि	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन , वाराणसी
जातकभरण	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन , वाराणसी
जातक पारिजात	
बृहत्पाराशर होराशास्त्र	

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1 ग्रह गोचर कि परिभाषा देते हुए उसके महत्व का वर्णन कीजिए।

2 सूर्यादि ग्रहों के गोचर फल का वर्णन कीजिए।

3 सभी ग्रहों का प्रथम भाव में गोचर फल का वर्णन कीजिए।

इकाई. 2 शनि की साढे साती एवं ढैय्या फल विचार

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 शनि ग्रह का स्वरुप एवं परिचय

2.4 शनि ढैय्या विचार

2.5 शनि साढे साती विचार

2.6 द्वादश राशियों पर शनि साढ़ेसाती का प्रभाव

2.7 शनि साढ़ेसाती फल विचार

2.8 शनि साढ़ेसाती एवं ढैय्या का कर्मकांड के द्वारा उपाय

2.9 शनि कवच फल विचार

2.10 सारांश

2.11पारिभाषिक शब्दावली

2.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.14 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों!

प्रस्तुत इकाई "शनि साढ़ेसाती एवं ढैय्या परिचय" से सम्बन्धित है। शनि की ढैया एवं साढे साती नामक इस इकाई में हमविस्तार पूर्वक शनि की साढ़ेसाती या ढैया किस प्रकार से जातक की कुंडली में देखना चाहिए ? साढ़े साती एवं ढैय्या में क्या अंतर है ? इन बिंदुओं पर चर्चा करेंगे। ज्योतिष शास्त्र में नवग्रहों के अंतर्गत शनि ग्रह का स्थान सातवें स्थान पर आता है। जिसे नवग्रहों में क्रूर ग्रह के नाम से भी जाना जाता है। नवग्रहों में शनि ग्रह ही न्याय करनें वाले तथा न्याय के देवता माने जाते हैं। जिनके प्रभाव से जातक शुभ तथा अशुभ फल के प्रभाव को भोगता रहता है। जो सम्पूर्ण सृष्टि में उथल-पुथल करनें के संकेत भी देते हैं। शनि ग्रह का स्वरूप अलग प्रकार से दिखाई पड़ता हैकुंभ तथा मकर के अधिपति के रुप में भी शनि ग्रह को जाना जाता है। जो अपने प्रभाव से राशियों पर 30 वर्षो में विशेष रूप से प्रभाव डालते हुए शनि की साढेतथा ढैय्या से जातक की राशियों पर प्रवेश करते हुए व्यक्ति को दुख देता रहता है। जिससे मनुष्य तनाव लेकर जीवन पर्यन्त परेशान रहता है।देखा जाय तो शनि ग्रह का प्रभाव सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रकार से व्यक्ति के जीवन में पड़ता है। यदि शनि ग्रह अशुभ होकर गोचर कर रहा हो तो उस जातक को शनि ग्रह का परिहार अवश्य करना चाहिए जिससे वह सकारात्मकता को प्राप्त कर सके। ठीक इसी के विपरीत देखें तो जिस जातककी कुंडली में शनि अशुभ होकर गोचर कर रहा हो परन्तु वह जातक शनि ग्रह का उपाय न करता हो तो उसके ऊपर शनि का अशुभ प्रभाव रहते हुए नकारात्मक फल की प्राप्ति उस जातक को होती है।इस इकाई का मुख्य ध्येय शनि ग्रह के स्वरूप को जानना है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- शनि ग्रह के स्वरुप से अवगत हो सकेंगे।
- शनि की ढैय्या एवं साढ़े साती से परिचित हो सकेंगे।
- साढ़े साती के प्रभाव को जान पाएँगे।
- साढ़े साती के तीन चरणों के विविध राशियों के फल को समझ सकेंगे।
- साढ़े साती के उपायों को जान सकेंगे।

2.3 शनि ग्रह का स्वरुप एवं परिचय

ज्योतिष शास्त्र में शनि ग्रह को न्याय का देवता माना जाता है। जिसके द्वारा किसी भी व्यक्ति को न्याय मिल सके। वह न्याय कैसे मिल सकता है? इसका कारण क्या हो सकता है? इस बारे में शास्त्रों में उल्लेख मिलता है कि जो मनुष्य निष्ठा पूर्वक सत्य का आचरण करता हुआ अपने कार्य को करता हुआ अन्य समाज का कार्य बिना स्वार्थ के करता है।उस व्यक्ति को शनि ग्रह अपनी दशा में सकारत्मक फल की प्राप्ति कराता है। ठीक इसके विपरीत कोई व्यक्ति अनुशासन हीनता,असत्य का मार्ग अपना कर स्वार्थ सिद्ध के लिए कार्य करता है तो शनि ग्रह उस व्यक्ति को नकारात्मक फल तथा असफल कर देता है। इसलिए शनि ग्रह को न्याय का देवता माना जाता है।शनि ग्रह से सम्बंधित वस्तु जैसे- आयुष्य, मृत्यु, भय, पतन ऊँचे स्थान अभवा ऊँचे पद में गिरना, दुःख, दरिद्रता, नौकरी, अपवाद लांछन, कलुष, पाय, अशुचि, निन्दा,

विपति , स्थिरता, निम्नस्तरीय व्यक्तियों का आश्रय, जैस, तन्द्रायता, सण, लौह पदार्थ, दासता, कृषि उपकरण, कारागार आदि का विचार शनि ग्रह से करना चाहिए।

मन्दोऽलसः कपिलदृक् कृशदीर्घगात्रः स्थूलद्विजः परुषरोमकचोऽनिलात्मा।

स्नाय्वस्थ्यसृक् त्वगथ शुक्लवसे च मज्जामन्दार्कचन्द्रबुधशुक्रसुरेज्यभौमाः।।

शनि ग्रह आलस्य से युक्त, भूरे आँख वाला, पतला और लम्बा शरीर, मोटे और बहे दांत, रूखे सुखे बालों से युक्त और वायु प्रकृति वाला शनि का स्वरूप होता है। शनि का सार 'नस' (स्नायु) सूर्य का 'अस्थि' चन्द्र का 'रुधिर' बुध का 'त्वचा' शुक्र का 'वीर्य' और बृहस्पति का 'मज्जा' सार होता है। जातक की कुंडली के जन्मलग्न के नवांश का जो स्वामी होता है उसी ग्रह के स्वरूपानुसार जातक का स्वरूप होता है।शनि ग्रह की आकृति रथ में बैठे हुए किसी देव के समान धनुष लिए हुए दिखाई देती है। जिनका वाहन गृध्र,जिनका कश्यपगोत्र, वर्ण शूद्र है। सौराष्ट्र प्रदेश के अधिपति है। इनका वर्ण कृष्ण है और कृष्णवस्त्र ही धारण किए हुए है। चार हाथों में बाण, वर, शूल और धनुष है। इनके अधिदेवता यमराज और प्रत्यधिदेवता प्रजापति है।

2.4 शनि ढैय्या विचार

अब हम शनि के ढैय्या विचार के बारे में जानते हैं। किसी भी जातक की कुंडली में यदि शनि ढैय्या के बारे में ज्ञात करना हो तो सबसे पहले जातक की कुंडली का विचार करना चाहिए। जिससे यह ज्ञात हो सके की जातक की जन्म राशि या चन्द्र राशि क्या है? जन्म राशि यानि जातक की कुंडली में चन्द्रमा किस राशि में बैठा हुआ हैसे व्यक्ति के राशि का ज्ञान किया जाता है। उदाहरण के लिया किसी जातक का कन्या लग्न वाली कुंडली है तो इस कुंडली में चन्द्रमा मीन राशि यानि सप्तम भाव में बैठा हो तो जातक की मीन राशि होगी। इसी तरह से व्यक्ति के राशि का ज्ञान चन्द्रमा से करना चाहिए। ठीक इसी प्रकार से शनि ग्रह का विचार गोचर कुंडली में जन्म राशि या चन्द्र से किया जाता है। जातक की कुंडली में जन्म लग्न के जितने ग्रह दिखाई देते है। वो सभी जन्म लग्न में एक ही स्थान पर दिखाई देते हैं। परन्तु यही ग्रह गोचर कुंडली में चलाय मान होते हैं। इसलिए किसी भी व्यक्ति कुंडली में फलादेश करने के लिए या शनि कीढैय्या का ज्ञान करने के लिए गोचर कुंडली का विचार करना आवश्यक होता है। जिससे ग्रहों की स्थिति का सही ज्ञान हो सके जो फलादेश करने में सहायक होता हैं। यहाँ हमने जन्म राशि या चन्द्र राशि के बारे में जानने का प्रयास किया। अब हम गोचर कुंडली के माध्यम से शनि ढैय्या के बारे में जानते हैं।किसी भी जातक की कुंडली में शनि ढैय्या के बारे में जानने के लिए उदाहरण रुप में एक कुंडली का अवलोकन किया जा रहा है। जन्मराशि या चन्द्र राशि से पहले वाली राशि तथा आगे वाली राशि साढ़ेसाती कहलाती है। जन्म राशि से 45 अंश पहले 45अंश आगे वाली तीन राशियों पर शनि ग्रह की साढ़ेसाती चलती है। इसी प्रकार से शनि ढैय्या का विचार करते हैं। यहाँ विचार करना आवश्यक है कि किस राशि से शनि 4,8, चल रहे हैं। कुंभ लग्न की कुंडली में शनि कुंभ राशि यानि जन्मराशि पर गोचर कर रहें हैं। परन्तु चतुर्थ कर्क से अष्टम,अष्टम वृश्चिक से चतुर्थ शनि चल रहे हैं तो यहाँ कर्क ओर वृश्चिक पर शनिकी ढैय्या का प्रभाव रहेगा। एक दूसरे प्रकार से भी शनि ढैय्या को समझ सकते हैं। जैसे कुंभ राशि में शनि चौथे भाव में गोचर कर रहें हैं तो चतुर्थ भाव से शनि छठे भाव, दशम भाव, लग्न को देखते हैं तो शनि ग्रह चतुर्थ भाव से गोचर करते हैं तो शनिकी ढैय्या प्रारम्भ होती है। जैसे कुंभ लग्न यानि प्रथम भाव में शनि गोचर कर रहें हैं, यहां पर शनि ग्रह छठे भाव,दशम,लग्न को देखता है, तो छठवें भाव में कर्क राशि को शनि

देख रहा है। वहीं कर्क राशि से अष्टम शनि कुंभ में गोचर कर रहा है। इसी तरह शनि कुंभ राशि प्रथम भाव में गोचर करते हुए दशम भाव वृश्चिक राशि को देख रहा है यहाँ पर वृश्चिक राशि से चतुर्थ शनि गोचर कर रहा है इसी प्रकार से कर्क, तथा वृश्चिक राशि पर शनिका प्रभाव रहेगा।शनि ग्रह चंद्र कुंडली अर्थात जन्म राशि के अनुसार चतुर्थ व अष्टम से गोचर करते हैं तो जातक पर ढैय्या का प्रभाव होता है। ढैय्या का मतलब होता है ढाई वर्ष। यद्यपि शनि ग्रह प्रत्येक राशि में ही ढाई वर्ष तक भ्रमण करता रहता है। शनि ढैय्या का विचारचतुर्थ और अष्टम से ही किया जाता है।क्योंकि शनिदेव प्रत्येक भाव में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के अनुसार फल देते हैं। चतुर्थ और अष्टम भाव को मोक्ष का भाव भी कहा जाता है। चतुर्थ भाव में शनि ढैय्या विचार करने के लिए शनि ग्रह के फल को जानने के लिए सर्वप्रथम यह देखा जाता है कि शनिदेव किस भाव में बैठे हैं और कहाँ-कहाँ शनि ग्रह को 3,7,10 सातवीं व दसवीं पूर्ण दृष्टि पड़ रही है। जिससे उन भावों से संबंधित बातों में जातक को पूर्वकर्मवश अशुभ फल की प्राप्ति होती रहती है। चतुर्थ भाव से शनिदेव छठे भाव को, दशम भाव को तथा लग्न को देखते हैं। अर्थात् जब शनिग्रह चतुर्थ भाव से गोचर करते हैंतो जातक के निजकृत पूर्व के अशुभ कर्मों के फलस्वरूप जातक के भौतिक सुखों में समस्या होती रहती है। यह समस्या कुंडली में शनि ग्रह की शुभ अशुभता को देखकर किया जाता है।अशुभ होने पर शनि जातक को अनेकानेक परेशानियो में डालता है।इसी प्रकार से अष्टम भाव की शनि ढैय्या के बारे में जानते हैं।किसी जातक की जन्म कुंडली में जब शनिदेव चंद्र कुंडली अर्थात जन्म राशि के अनुसार अष्टम भाव से गोचर करता है।तो शनि ग्रह की अष्टम ढैय्या कहलाती है।और वह नया कार्य करने लगता है। परन्तु अष्टम ढैय्या नया कार्य शुरू तो करवाता है परन्तु बीच में ही कार्य में बाधा भी डालता है। इसलिए इन सभी समस्याओ से मुक्त होने के लिए शनि ग्रह का उपाय करना चाहिए।

किसी भी जातक की कुंडली में शनि ग्रह जब कर्क एवं वृश्चिक राशि में भ्रमण करते हैंतो मेष राशि के जातकों पर शनिग्रह की ढैय्या रहती है।इसी प्रकार शनिग्रह सिंह व धनु राशि में गोचर में भ्रमण करते हैंतो वृष राशि के जातकों पर शनिदेव की ढैय्या का प्रभाव रहता है।कन्या व मकर राशि में शनिग्रह के भ्रमणकाल में मिथुन राशि के व्यक्ति पर शनिदेव की ढैय्या का प्रभाव रहता है।तुला एवं कुम्भ राशि में गोचर में शनि ग्रह जब भ्रमण करते हैं,तो कर्क राशि के लोगों पर शनिदेव की ढैय्या का प्रारंभ होताहै।गोचर भ्रमण के समय शनिदेव जब वृश्चिक और मीन राशि में आते हैं तो सिंह राशि वाले जातकों पर शनि ग्रह की ढैय्या रहती है।शनि ग्रह जब धनु और मेष राशि में स्थित होते हैं तो कन्या राशि के जातकों पर शनि ग्रह की ढैय्या रहती है।शनिदेव जब मकर एवं वृष राशि में गोचर में स्थित रहते हुये तुला राशि के जातकों पर शनिदेव की ढैय्या चलती रहती है। जातक के गोचर कुंडली में शनिग्रह जब कुंभ और मिथुन राशि में प्रवेश करते हैं तो वृश्चिक राशि के मनुष्यों पर शनि ग्रह की ढैय्या का प्रभाव रहता है।शनिग्रह जब गोचर में मीन तथा कर्क राशि में स्थित रहते हैं तब धनु राशि के लोगों पर शनि ग्रह की ढैय्या रहती है।जबशनिदेव मेष और सिंह राशि में शनि ग्रह गोचर करता हैतो मकर राशि के जातकों पर शनिग्रह की ढैय्या प्रारम्भ होती है। इसी प्रकार से गोचर में शनिदेव जब वृष और कन्या राशि में आते हैं तब कुम्भ राशि वाले जातकों पर शनि ग्रह की ढैय्या प्रारम्भ होती है।शनिग्रह जब गोचर में मिथुन व तुला राशि में गोचर करता हैतो मीन राशि वाले व्यक्तियों पर शनिग्रह की ढैय्या प्रारम्भ होती है। इसी प्रकार से प्रत्येक राशि में स्थित शनि ढैय्या का विचार करना चाहिए।

2.5 शनि साढे साती विचार

किसी भी जातक की कुंडली में जन्म राशि या चन्द्र राशि से गोचर शनि का विचार किया जाता है। शास्त्रों में शनि ग्रह के स्वरूप के विषय में विस्तृत वर्णन भी प्राप्त होता है। शनि ग्रह को मन्दग्रह के नाम से भी जाना जाता है। जो धीरे-धीरे करके 30 वर्षों का समय बारह राशियों पर शनि की साढ़ेसाती या ढैय्या आने में लगता है। साढ़ेसाती का अर्थ हुआ साढ़े सात वर्षों तक जातक की राशि पर शनि का प्रभाव ढाई-ढाई वर्ष करके रहेगा। यहां पर शनि ग्रह की साढ़ेसाती के विषय में कहा जा रहा है। किसी भी जातक की कुंडली में जन्म राशि या चन्द्र राशि से एक भाव पहले भ्रमण करना प्रारंभ करता हुआ साढ़ेसाती का प्रारंभ होता है। इसी तरह से चन्द्र राशि से एक भाव आगे शनि विचरण काल में साढ़े सात साल का समय लगता है। शनि ग्रह एक राशि में ढाई वर्षों तक शनि का प्रभाव रहता है।यानि जन्म राशि से पहले तथा जन्म राशि से आगे वाले भाव में बैठे राशि पर शनि का प्रभाव होने पर साढ़ेसाती का प्रभाव रहता है। उदाहरण के रूप में देखा जाए तो किसी जातक की कुंभ लग्न की कुंडली में गोचरस्थ शनि कुंभ राशि में स्थित है, चन्द्र राशि से पहले मकर राशि मेंतथा कुंभ राशि से आगे मीन राशि में शनि की साढ़ेसाती रहती है। यहां पर यह देखनें को मिलता है कि जब शनि ग्रह 8 अंश पर पर प्रवेश करता है तो तब शनि साढ़ेसाती प्रारंभ होती है। यहां पर अवलोकन करने के बाद यह देखनें में आता है कि जन्म राशि कुंभ से एक भाव पहले 45 डिग्री एक भाव आगे भी 45डिग्री होने पर शनि की साढ़ेसाती का प्रारंभ होता है।

द्वादशे जन्मे राशौ द्वितीये च शनैश्चरः।
सर्धानि सप्तमवर्षाणि तदा दुःखैर्युतो भवेत।।
रिष्फरूपचनभेषु भास्करि सस्थितों भवति यस्य जन्मभात।
लेचनोदरपदेषु संस्थितिः कथ्यतेरविजलोकजैर्जनैः।।

जन्म राशि से 12-1-2स्थानों में शनि ग्रह स्थित हो तो उसकी साढ़े साती प्रारभ होती है। शनि ग्रह द्वादश हो तो 21/2 वर्ष तक उसकी दृष्टि बनी रहती है। शनिग्रह व्यक्ति के क्रमश नेत्र, उदर,एवं पैरोंमें निवास करता है। इसे शास्त्रों में वृहत कल्याणी दशा के नाम से भी जाना जाता है। चन्द्र राशि से द्वादश,प्रथम,द्वितीय (12-1-2) स्थानों मेंशनि ग्रह होने से साढ़ेसातीप्रारंभ होती है।शनि ग्रह द्वादश हो तो ढाई(21/2) वर्ष तक शनि ग्रह की दृष्टि रहती है। जन्म राशि हो तो ढाई वर्ष तक भोग कहा जाता है। द्वितीयस्थ हो तो पद कहलाता है। अर्थात शनि क्रमश नेत्री उदर एवं पाद में निवास करता है।इसे वृहत कल्याणी दशा भी कहते हैं। शनि ग्रह मेषादि राशियों का भ्रमण प्रायः तीस वर्षो में सम्पन्न कर लेता है। इसके अनुसार एक राशि में लगभग ढाई वर्ष तक शनि ग्रह निवास करता है। साढ़े साती का प्रारम्भ जातक की कुंडली में तब होता है।जब गोचर में शनि जन्म राशि से द्वादश भाव में प्रवेश करता है। द्वादश, लग्न एवं द्वितीय भाव तक साढ़े साती का प्रभाव चलता रहता है। शनि ग्रह जन्म कुंडली के अनुसार फल प्रस्तुत करता है तो शनि की साढ़े साती जानने के लिए जातक की जन्म राशि से शनि के गोचर कुंडली को देखा जाता है। गोचर में जब शनि जन्म रशि से बारवें स्थान पर प्रवेश करता है तो शनि की साढ़े साती प्रारम्भ होती है। शनि ग्रह एक राशि पर लगभग ढाई वर्ष रहता है। ढाई वर्ष बारहवें स्थान पर, ढाई वर्ष जन्म राशि पर, तथा ढाई वर्ष चन्द्र राशि से दूसरे स्थान पर शनि की ढैय्या रहती है।

इन तीन राशियों को मिलाकरसाढ़े सात साल शनि ग्रह की साढ़े साती कहलाती है। शनि की साढ़ेसाती काआरंभ तथा समापन जातक के कुंडली में चंद्रमा के राशि और अशों पर निर्भर करता है। यह साढेसाती जातक की जन्मकुंडली में स्थित चंद्रमा के अंशों से 450अंश पहले प्रारंभ तथा 450अंश आगे तक रहती है। जातक के जीवन में शनि की साढ़ेसाती कब शुभ रहेगी और कब अशुभ रहेगी यह इस बात पर निर्भर करता है कि चंद्रमा किस राशि से गोचर कर रहा है गोचर शनि का संबंध उसकी गोचरित राशि के स्वामी के साथ देखना चाहिए। जैसे शनि यदि सिंह राशि से गोचर करेगा तो शनि का संबंध सिंह राशि के स्वामी सूर्य के साथ देखना होगा जो कि शत्रु संबंध है अतः शनि का गोचर सिंह राशि से कष्टमय होगा इसी तरह सिंह राशि जिस भाव में स्थित होगा उस भाव से संबंधित कष्ट या अभाव बनी रहेगी। इसके विपरीत यदि शनि ग्रह का गोचर मित्र राशि के ऊपर से होता है तो लाभ होगा।

2.6 द्वादश राशियों पर शनि साढ़ेसाती का प्रभाव

द्वादश राशियों पर साढे साती का प्रभाव पड़ता रहता है। शुभाशुभ ज्ञान शनि की नैसर्गिक मैत्री पंचधा मैत्री में ग्रहों की शुभाशुभ स्थिति में फर्क पड़ता है तो साढ़े साती के शुभाशुभ में अंतर आ जाता है। साढ़े साती के उपाय करने के लिए पहले शनि के स्वभाव को जानना होता है। शनि ग्रह को क्रूर ग्रह कहा गया है।जोअपने स्वभाव के अनुसार जातक को तदनुरूप फल की प्राप्ति करता है। यदि शनि की साढ़े साती चल रही हो तथा जिस व्यक्ति की साढ़े साती चल रही हो उस पर प्रभाव अवश्य दिखाता है। मकर और कुम्भ शनि ग्रह की राशियां है। इन राशियों के जातक पर जब शनि की साढे साती आती है तो शनि के शुभ प्रभावों में कमी जरूर आ जाती है। कुण्डली में शनि यदि शुभ व योगकारक हो तो शनि की साढ़े साती का प्रभाव कम पड़ता है।

जातक की कुंडली में शनि यदि बाधक, मारक या अशुभ ग्रह है तो साढ़े साती में शनि की अशुभता और बढ़ जाती है।शनि कुण्डली में जिस भाव में बैठता है उस भाव के फलों में वृद्धि करता है और अपनी तीसरी, सातवीं और दसवीं दृष्टि से जिन भावों को देखता है उन भावों के फलों में कमी आने लगती है। इस चक्र के द्वारा द्वादश राशियों पर शनि साढ़ेसाती के फल को समझ सकते हैं।

जन्म राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृचिक	धनु	मकर	कुंभ	मीन
प्रथम फल	सम	अशुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	अशुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	सम	शुभ	शुभ
द्वितीय फल	अशुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	अशुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	सम	शुभ	शुभ	सम
तृतीय फल	शुभ	शुभ	अशुभ	अशुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	सम	शुभ	शुभ	सम	अशुभ

2.7 शनि साढ़ेसाती का फल

शनि की साढ़े साती में जातक को अनेकानेक समस्याओ से जूझना पड़ता है। कार्य में बाधा शारीरिक अस्वस्थता , मानसिक तनाव, क्रोध, कार्य में मन न लगना, इत्यादि समस्याओं से वह व्यक्ति घिरा रहता है। शनि साढ़े साती के प्रथम चरण का प्रभाव मस्तिक पर रहता हैप्रथम चरण में व्यक्ति आर्थिक रूप अत्यन्त पीड़ित रहता है। व्यक्ति निरूद्देश्य भ्रमण करता है। पिता और माता को कष्ट होता है। नेत्रों की वीमारी रहती है। व्यक्ति का स्नायु तन्त्र तनाव ग्रस्त रहता

है। अभिभावक एवं आत्मीय कष्ट का अनुभव भी करते है। आय एवं लाभ में नुकसान होता रहता है। उस व्यक्ति का कुटुम्ब से वियोग होता रहता है। शनि के प्रथम चरण में जातक को इन सभी समस्याओं से सावधानी रखनी चाहिए।गोचर में शनि जब जन्म राशि पर द्वितीय चरणमें आता है तो जातक को आर्थिक चिन्तायें निरन्तर रहती हैं। शारीरिक सामर्थ्य, मानसिक रूप से अनेकानेक कष्टों से संघर्ष करता रहता है।पारिवारिक तथा व्यावसायिक जीवन अस्त व्यस्त रहता है। तृतीय चरण में शनि जब प्रवेश करता है तो उस व्यक्ति के व्यर्थ के विवाद उत्पन्न होते रहते हैं। उस व्यक्ति का स्वास्थ्य, सन्तति का सुख एवं उनका आयुर्बल भी पूरी तरह प्रभावित दिखाई देता है। शनि साढ़े साती में अलग-अलग प्रकार से फल की प्राप्ति होती है।प्रथम आवृत्ति में शनि का प्रभाव अत्यन्त प्रबल होती है। व्यक्ति कष्ट,अवरोधों, तथा क्षतियों से प्रभावित होता रहता है।द्वितीय आवृत्ति में जातक संयमी होता है।तृतीय चरण में व्यक्ति बहुमुखी आपत्तियों से प्रभावित रहता है। जिन जातको की जन्म कुंडली में शनि शुभ होकर केंद्र में, अपनी उच्च राशि में, स्वराशी में बलवान होकर केंद्र में बेठा हो तो शनि की साढ़े साती का प्रभाव कम होता है। प्रत्येकग्रह उच्चनीचादि प्रभावों से युक्त होकर ही शुभाशुभ परिणाम प्रसारित करता है। शनि जन्मांग में उच्चस्थ हो, स्वराशिस्थ हो, मित्रराशिस्थ हो या मूलत्रिकोणस्थ हो तो परिणामों में अपेक्षया शुभता रहती है। जन्मांग शनि सचल और गोचरीय शनि दुर्बल हो तो परिणाम मध्यम रहता है। दोनों कुंडलियो में जन्म कुंडली एवं गोचर कुंडली में शनि ग्रह निर्बल, हो तो उस व्यक्ति को सभी प्रकार से अत्यधिक कष्टों का सामनाकरना पड़ता है।प्रत्येक ग्रह अपनी दशा में शुभ अशुभ फल प्रदान करता रहता है। चन्द्र ग्रह उस फल का पोषण करता है।यहा पर यह विचार किया जाता है की दशारम्भ के समय चन्द्र किस राशि में बैठाहै यह अति महत्वपूर्ण प्रश्न है। ग्रहों की दशा जब प्रारम्भ होती है तो वह ग्रह उसी प्रकार से फल की प्राप्ति करता है।यहाँ पर गोचर के अनुसार फल का विचार करना चाहिए।अर्थात् यदि शनि की महादशा के प्रारम्भमें गोचरीय चन्द्र मेषादि विभिन्न राशिगत हो तो फल भीअलग-अलग प्राप्त होते है।

सौम्यस्त्रीधनलाभः कुलीरगेन्दौ भवेद्दशारम्भे।
कन्यां दूषयति नरः कुजभवने हन्ति वा युवतिम्।।
सुखधनमानज्ञाप्तिं जीवगृहे दिशाति शीतांशुः।
परिणतवयसमरूपां सौरगृहे वर्धकीं वाऽपि ।।
दुर्गारण्यनिवासं कर्षणगृहकर्मसेतुकर्मान्तम्।
सिंहे शशी प्रकुरूते स्त्रीपुत्रविवादमरतिं च।।
विद्याशास्त्रज्ञानं मित्रप्राप्तिं करोति बुधराशि।
शौकेऽन्नपानमतुलं सौख्यं चन्द्रेऽरिनाशं च ।।

जातक के दशारम्भ में चन्द्र कर्कस्थ हो तो निश्छल नारी से संपर्करहता है।मेष या वृश्चिकस्थ हो तो पत्नी का विनाश एवं अविवाहिता स्त्री से दैहिक सम्पर्क रहता है। चन्द्र कन्या या मिथुनस्थ हो तो मित्र सहयोग एवं प्रखर विद्या योग होता है। तुला या वृषस्थ हो तो शत्रुसंहार, भोजन-भूषण-भोग का सुख प्राप्त होता है। धनु या मीनस्थ हो तो अनुचर सुख संपत्ति प्राप्ति सम्मानप्राप्त होता है।चन्द्र मकर अथवा कुम्भस्थ हो तो कुटिल, प्रौढ़ाअथवा अगम्या नारी से सम्पर्क होता है। चन्द्र सिंहस्थ हो तो अलग प्रान्त में निवास, कृषि कर्म,गृहकार्य, पारिवारिक विवाद बढता रहताहै।सभी राशियों पर शनि की साढ़ेसाती के प्रभाव से अन्तर होना स्वाभाविक होता है।गोचर शनि प्रत्येक राशि में उसके अधिपति के साथ अपने सम्बन्ध के अनुसार ही फल

देता है।जिस राशि में शनि भ्रमण कर रहा है, वह शनि की उच्च, नीच, स्व, मित्र या शत्रु राशि होती है।उस राशि से शनि का क्या सम्बन्ध है, शनि किस भाव का स्वामी है।जन्म कुंडली में शनि की स्थिति का क्या फल हो सकता है। शनि की दशा अन्तर्दशामें यदि किसी जातक की शनि की साढ़े साती चल रही हो तो उस समय उस जातक का विषम परस्थितियों का सामना करना पड़ता है। यदि किसी शुभ ग्रह की दशा चल रही होतो साढ़ेसाती का अशुभ फल स्वयं ही न्यून हो जाता है। यहाँ पर जातक की जन्म कुंडली में शनि किस राशि में भ्रमण कर रहा है, तथा राशि से शनि का क्या संबंध है? राशि के स्वामी की शनि से मित्रता है अथवा शत्रुता? या सम है इनका विचार किया जाता है। किसी व्यक्ति की कुंडली में जन्म कालीन चन्द्रमा से शनि जिस भाव में भ्रमण कर रहा है, उस भाव से किन-किन भावों एवं ग्रहों को अपनी दृष्टि से प्रभावित करेगा। जिस राशि पर साढ़ेसाती शनि की ढैय्या का विचार करना है, उस राशि से शनि किन-किन भावों का अधिपति है? क्या शनि उस राशि के लिए योगकारक है या नही,शनि ग्रह का वृष लग्न के लिए शनि की साढेसाती उत्तनी अनिष्टकारी नहीं होगी, जितनी कर्क या सिंह लग्न के लिए होती है। शनि ग्रह यदि योगकारक होकर शुभ स्थानों बैठा हो तो साढ़ेसाती के समय सम्बद्ध भावों की हानिकम रहती है। जैसे शनि-यदियोगकारक होकर एकादश भावस्थ है, तो व्यापार में हानि नहीं होगी, धन-संबंधी कोई भी हानि नही होती है। यदि वृष लग्न है तो इस स्थिति में नौकरी में अवनतिया अपमानजनक अन्य घटनाएं नहीं होंगी।उसके विपरीत यदि शनि जन्मांग में अशुभ स्थिति में हो तो सम्बन्धित भावों की विशेष हानि होती है। वृश्चिक लग्न हो शनि तृतीयेश व चतुर्थेश होकर अष्टमभावस्थ हो तो साढ़ेसाती शनि में भाइयों के साथ संघर्ष तथा सम्पति में वाद-विवाद की स्थिति रहती है। जातक की सभी जगह आलोचनाऔरमाता के साथ कुछ अनिष्ट होने की स्थिति बनती है, तथा पिता को भी अत्यधिक कष्टों का सामना करना पड़ता है।क्योंकि अष्टम भाव पिता के भाव नवम से द्वादश होता है। इस स्थिति में धन की हानि,मानसिक चिन्ता, क्लेश, सुख का अभाव ये सभी रहती है।इसी प्रकार से जन्मकालीन चन्द्रमा की स्थिति का तथा राशि विशेष के लिए क्या प्रभाव होगा? उस प्रभाव के लिए वृश्चिक लग्न का अष्टमस्थ शनि किस प्रकार, कितनी और कब वृद्धिकारक हो सकता है? इन सभी का विचार जातक की कुंडली में करना चाहिए।यहाँ पर यह भी विचार करना चाहिए की जिस समय शनि एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करता है, उस समय के नक्षत्र और चन्द्रमा की स्थिति जातक के जन्म-नक्षत्र और जन्मकालीन चन्द्रमा के साथ कैसा संबंध स्थापित कर रहा होगायह भी विचार करना आवश्यक होता है।व्यक्ति की साढ़ेसाती आने पर शनि का फल,जन्मकालीन ग्रह स्थितियों के फलाफल में वृद्धि करता है।शनि की साढ़े साती जातक के जीवन में अरिष्टबढाती रहती है।इन सभी कष्टों के निवारण के लिए शनि साढ़े साती का उपाय करने से हीजातक को लाभ प्राप्त होगा।

2.8 शनि साढ़ेसाती एवं ढैय्या का कर्मकांड के द्वारा उपाय

जब किसी भी व्यक्ति की कुंडली में शनि ग्रह की साढ़ेसाती या ढैय्या उसकी जन्मराशि पर चल रही हो तो वह जातक अनेकानेक परेशानियों का सामना करता रहता है। विशेष रुप से जातक की शनि की साढ़ेसाती या ढैय्या चल रही हो तथा उस जातक की दशा अंतर्दशा में शनि चल रहा हो या शनि ग्रह जातक के अशुभ भाव में बैठकर जैसे 2,3,6,8,12 इन भावों मैं बैठकर शत्रु होकर या नीच्च का हो तो इस स्थिति में जातक को चारों तरफ से कठिन परिश्रम, धैर्य विहीन, आलस्य, काम में बाधा, शारीरिक कष्ट मानसिक परेशानी, संपत्ति, गाड़ी इत्यादि से हानि

होती है।जिसका असर उस जातक पर पड़ता है। इस स्थिति में क्या करें या क्या न करें इन सभी बातों की असमंजसता बनी रहती है। जिससे की समस्या बढ़ती रहती है। इन सभी कष्टों से मुक्ति कैसे मिल सके उसके लिए कर्मकांड के माध्यम से सूर्यादि नवग्रहों में शनि ग्रह का शास्त्र सम्मत विधिवत् अनुष्ठान के द्वारा स्वस्तिक वाचन संकल्प, गणपति पूजन,कलश पूजन, स्वस्तिक, पुण्याहवाचन,अभिषेक,षोडशमातृका पूजन,वसोर्धारापूजन, आयुष्य मंत्रजप,नांन्दीश्राद्ध, आचार्य वरण, मंडप द्वार पूजन,मंडप प्रवेश,दिगरक्षणम्, मंडप वास्तुपूजन, तोरण पूजन, द्वार पूजन, न्यासः, शनिपीठ निर्माण, शनि पीठपूजन, शनि ग्रह की मूर्ति पर अभिषेक, प्राण-प्रतिष्ठा,नेत्रोन्मीलनम्, अग्नि स्थापन, ग्रहादिस्थापन,नवग्रह पूजन, योगिनी पूजन, क्षेत्रपाल पूजन, यज्ञ,सभी मंडपों का यज्ञ, पूर्णाहुति,अभिषेक, करनें के पश्चात् शनिकवच, शनि स्तोत्र, शनि मृत्युंजयसस्त्रोत, शनि अष्टोत्तर शतनाम स्त्रोत, शनिसहस्त्रनामावल्या: जप विधि,शन्योष्टर शतनामावली से यज्ञ, से शनि ग्रह का उपाय करनें से शनि ग्रह का दोष समाप्त हो जाता है। जिससे शनि साढ़ेसाती तथा ढैय्या का सही उपाय करके शनि ग्रह की शांति की जाती है। षोडशोपचार पूजन के माध्यम से शनि साढ़े साती,एवं शनि ढैय्या शांति का विधान आगे दिया जा रहा है।

सर्वप्रथम ईशानकोण की ओर पीढ़ पर सफेद वस्त्र बिछाकर नवग्रहमण्डल का निर्माण कर सूर्यादिनवग्रहदेवताओं के निम्न श्लोकों, मन्त्रों एवं वाक्यों के द्वारा उनका आवाहन व स्थापन करना चाहिये।

जपा-कुसुम-सङ्काशं काश्यपेयं महाद्युतिम्।
तमोऽरि सर्वपापघ्नं सूर्यमावाहयाम्यहम्॥

ॐ आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यंच च । हिरण्ययेन सविता रथेनादेवो याति भुवनानि पश्यन्

ॐ भूर्भुवः स्वः कलिङ्गदेशोद्भव काश्यपसगोत्र रक्तवर्ण भो सूर्य! इहागच्छ इह तिष्ठ सूर्याय नमः, सूर्यमावाहयामि स्थापयामि ॥

दधि-शङ्ख-तुषाराभं क्षीरोदार्णवसम्भवम् ।
ज्योत्स्नापतिं निशानाथं सोममावहयाम्यहम् ॥

ॐ इमं देवा असपत्नठ० सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ य महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इमममुष्य पुत्रममुष्ध्यै पुत्रमुस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाठ० राजा ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः यमुनातीरोद्भव आत्रेयसगोत्र शुक्लवर्ण भो सोम! इहागच्छ इह तिष्ठ सोमाय नमः, सोममावाहयामि स्थापयामि ॥

धरणीगर्भसम्भूतं विद्युत्तेजःसम-प्रभम् ।
कुमारं शक्तिहस्तं च भौममावाहयाम्यहम् ॥

ॐ अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् अपा० रेताठ० सि जिन्वति ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः अवन्तिकापुरोद्भव भरद्वाजसगोत्र रक्तवर्ण भो भौम ! इहागच्छ इह तिष्ठ भौमाय नमः, भौममावाहयामि स्थापयामि॥

प्रियङ्गुकलिकाभासं रूपेणाऽप्रतिमं बुधम् ।
सौम्यं सौम्यगुणोपेतं बुधमावाहयाम्यहम्॥

ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्तेसर्ट० सृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः मगधदेशोद्भव आत्रेयसगोत्र हरितवर्ण भो बुध ! इहागच्छेह तिष्ठ बुधाय नमः, बुधमावाहयामि स्थापयामि ॥

देवानां च मुनीनां च गुरुं काञ्चनसन्निभम् ।
वन्द्यभूतं त्रिलोकानां गुरुमावाहयाम्यहम् ॥

ॐ बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्युमद्विभातिकुतुमज्जनेषुयहीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्॥

बृहस्पते इहागच्छ इह तिष्ठ बृहस्पतये नमः, बृहस्पतिमावाहयामि ॐ भूर्भुवः स्वः सिन्धुदेशोद्भव आङ्गिरसगोत्र पीतवर्ण भो गुरु इहागच्छेह तिष्ठ गुरुमावाहयामि स्थापयामि ॥

हिम-कुन्द-मृणालाभं दैत्यानां परमं गुरुम्।
सर्वशास्त्रप्रवक्तारं शुक्रमावाहयाम्यहम्।।

ॐ अन्नात्परिस्नुतो रसं ब्रह्मणा ब्यपिबत्क्षत्त्रं पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानठं० शुक्रमन्धसइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयो मृतं मधु ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भोजकटदेशोद्भव भार्गवसगोत्र शुक्लवर्ण भो शुक्र ! इहागच्छ इह तिष्ठ शुक्राय नमः, शुक्रमावाहयामि स्थापयामि॥

नीलाम्बुजसमाभासं रविपुत्रं यमाग्रजम्।
छायामार्तण्डसम्भूतं शनिमावाहयाम्यहम् ॥

ॐ शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभि-स्त्रवन्तुः नः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सौराष्ट्रदेशोद्भव काश्यपसगोत्र कृष्णवर्ण भो शनैश्चर इहागच्छ इह तिष्ठ शनैश्चराय नमः, शनिश्चरमावाहयामि स्थापयामि॥

अर्द्धकायं महावीर्यं चन्द्रादित्यविमर्दनम्।
सिंहिकागर्भसम्भूतं राहुमावाहयाम्यहम् ॥

ॐ कयानश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखाकयाशचिष्ठया वृता ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः राठिनापुरोद्भव पैठिनसगोत्र कृष्णावर्ण भो राहो! इहागच्छ इह तिष्ठ राहवे नमः,राहुमावाहयामि स्थापयामि॥

पालाशधूम्रसङ्काशं तारकाग्रहमस्तकम् ।
रौद्रं रौद्रात्मकं घोरं केतुमावाहयाम्यहम् ॥

ॐ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे समुषद्भिर जायथाः॥

ॐ भूर्भुवः स्वः अन्तर्वेदिसमुद्भव जैमिनिसगोत्र कृष्णवर्ण भो केतो! इहागच्छ इह तिष्ठ केतवे नमः, केतुमावाहयामि स्थापयामि।

गन्धम्

त्वां गन्धर्वा अखनस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः।
त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत॥

पुष्पम्

ॐ ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवती: प्रसूवरी:।
अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः॥

धूपम्

ॐ धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयन्धूर्वामः।
देवानामसि वह्नितम सस्नितमं पप्रितम जुष्टतमं देवहूतमम् ॥

दीपम्

ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा। अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा॥ ज्योतिः सूर्य: सूर्यो ज्योति: स्वाहा ॥

नैवेद्यम्

नैवेद्य को प्रोक्षित कर गन्ध पुष्प से आच्छादित करें। तदन्तर जल चतुष्कोण का घेरा लगाकर भगवान के सम्मुख भोग लगाये l

ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्ष गुं शीष्णोर्द्यो: समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ2 अकल्पयन्॥

पाद्यम्

ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥
आचमन लेकर नवग्रहों के पेरो में जल अर्पण करे

अर्घ्यम्

ॐ त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि॥
हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि अर्घ्य का जल छोड़े।

आचमनम्

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥
मुखे आचमनीयं जलं समर्पयामी आचमनके लिये जल समर्पित करे।

स्नानीयजलम्

ॐ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूंस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये॥
स्नानीयं जलं समर्पयामि

वस्त्रम्

ॐ युवा सुवासा परिवीत आगात् स उश्रेयान् भवति जायमानः।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो 3 मनसा देवयन्तः॥

आभूषणम्

वज्रमाणिक्यवैदूर्यमुक्ताविद्रुममण्डितम् ।
पुष्परागसमायुक्तं भूषणं प्रतिगृह्यताम् ॥
अलङ्करणार्थ आभूषणानि समर्पयामि

चन्दनम्

त्वां गन्धर्वा अखनस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः।
त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत॥

पुष्पम्

ॐ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते॥
ॐ ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवती: प्रसूवरी:।

अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः ॥

पुष्पं पुष्पमालां च समर्पयामि

धूपम्

ॐ धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयन्धूर्वामः ।

देवानामसि वह्नितम : सस्नितमं पप्रितम जुष्टतमं देवहूतमम् ॥

दीपम्

ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा। अग्निर्वच ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।। ज्योतिःसूर्य: सूर्यो ज्योति: स्वाहा ॥

नैवेद्यम्

नैवेद्य को प्रोक्षित कर गन्ध पुष्प से आच्छादित करें। तदन्तर जल चतुष्कोण घेरा लगाकर भगवान को नेवेद्य का भोग लगाये

ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्ष गुं शीष्णोर्द्यो: समवर्तत ।

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ2 अकल्पयन्।।

ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा। ॐ प्राणाय स्वाहा । ॐ अपानाय स्वाहा । ॐ समानाय स्वाहा । ॐ उदानाय स्वाहा । ॐ व्यानाय स्वाहा । ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा।

आचमनम्

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।

स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥

मुखे आचमनीयं जलं समर्पयामी।

ताम्बूलम्

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।

वसन्तो ऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शब्द्धविः ॥ .

एलालवङ्गपूगीफलयुतं ताम्बूलं समर्पयामि। इलायची, लवंग तथा पूगीफलयुक्त ताम्बूल अर्पित करे।

स्तवपाठ

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय ।

नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते।।

तर्पणम्-भगवान की स्तुति के बाद जल के द्वारा तर्पण करना चाहिये।

नमस्कार:-

नमः सर्वहितार्थाय जगदाधारहेतवे ।

साष्टाङ्गोऽयं प्रणामस्ते प्रयत्नेन मया कृतः ॥

नमस्कारान् समर्पयामि ।

2.9 शनि कवच फल विचार

अस्य श्री शनैश्चर कवच स्तोत्रमंत्रस्य कश्यप ऋषिःअनुष्टुप् छन्दः शनैश्चरो देवता श्री शक्तिः शूं कीलकम् शनैश्चरप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः

नीलांबरो नीलवपुः किरीटी गृध्रस्थितस्त्रासकरो धनुष्मान्।

चतुर्भुजः सूर्यसुतः प्रसन्नः सदा मम स्याद्वरदः प्रशान्तः।।

उसका शरीर नीला है। उन्होंने नीले रंग के कपड़े पहने हैं। वह हमेशा खुश रहता है। भगवान मुझे एक शांत और गंभीर शनिदेव के साथ आशीर्वाद दें, जो पैसे के लालची लोगों के मन में भय पैदा करना चाहते हैं।

श्रुणुध्वमृषयः सर्वे शनिपीडाहरं महत्।
कवचं शनिराजस्य सौरेरिदमनुत्तमम्।।

ब्रह्मा ने सभी ऋषियों से कहा, हे ऋषि सूर्य द्वारा निर्मित हैं, बहुत पवित्र, आध्यात्मिक, महान और बहुत अच्छे शनि। और यह हमें शनि के कारण होने वाली सभी परेशानियों से मुक्त करता है।

कवचं देवतावासं वज्रपंजरसंज्ञकम्।
शनैश्चरप्रीतिकरं सर्वसौभाग्यदायकम्।।

यह ढाल स्वयं शनि का प्रिय है। और इन गोले में उन्हें गंध आती है। यह खोल वज्र की तरह अभेद्य है।

ॐ श्रीशनैश्चरः पातु भालं मे सूर्यनंदनः।
नेत्रे छायात्मजः पातु पातु कर्णौ यमानुजः।।

मैं ॐ कहकर भगवान शनि को नमस्कार करता हूं। सूर्य पुत्र मेरे माथे की रक्षा करें। छाया मेरी आँखों की रक्षा करे। यमुना मेरे कानों की रक्षा करे ।

नासां वैवस्वतः पातु मुखं मे भास्करः सदा।
स्निग्धकंठश्च मे कंठं भुजौ पातु महाभुजः।।

वैवस्वत को मेरी नाक की रक्षा करनी चाहिए, भास्कर को मेरे मुंह की रक्षा करनी चाहिए, मेरे गले को मरहम की रक्षा करनी चाहिए और मेरी भुजा की रक्षा करे ।

स्कंधौ पातु शनिश्चैव करौ पातु शुभप्रदः।
वक्षः पातु यमभ्राता कुक्षिं पात्वसितत्सथा।।

शनि देव मेरे कंधों की रक्षा करे , मेरे हाथों को शुभ, यमभारत को मेरी छाती की रक्षा करनी चाहिए और असिता को मेरे उदर की रक्षा करनी चाहिए।

नाभिं ग्रहपतिः पातु मंदः पातु कटिं तथा।
ऊरू ममांतकः पातु यमो जानुयुगं तथा।।

ग्रहापति को मेरी नाभि की रक्षा करनी चाहिए, मंदा मेरी कमर की रक्षा करे , अंताक को मेरी छाती की रक्षा करनी चाहिए और यम को अपने घुटनों की रक्षा करे ।

पादौ मंदगतिः पातु सर्वांगं पातु पिप्पलः।
अङ्गोपाङ्गानि सर्वाणि रक्षेन्मे सूर्यनंदनः।।

धीरे-धीरे मेरे पैर, पिप्पलाद मेरे शरीर के सभी हिस्सों की रक्षा करें, जबकि शरीर और जननांगों के मध्य को सूर्य द्वारा संरक्षित किया जाना चाहिए।

इत्येतत्कवचं दिव्यं पठेत्सूर्यसुतस्य यः।
न तस्य जायते पीडा प्रीतो भवति सूर्यजः।।

जो कोई भी सूर्यपुत्र के इस पवित्र कवच का पाठ करता है, वह शनि के कष्टों से मुक्त हो जाता है।

व्ययजन्मद्वितीयस्थो मृत्युस्थानगतोऽपि वा
कलत्रस्थो गतोवापि सुप्रीतस्तु सदा शनिः

भले ही शनि जन्मकुंडली में 12 वें भाव (व्यय भाव) में हो, प्रथम भाव (लग्न) में, दूसरे भाव (धन) में, अष्टम भाव में (मृत्यु) या सप्तम पर हो, तो भी प्रतिदिन कहा जाने वाला शुभ फल को देता हैं।

अष्टमस्थे सूर्यसुते व्यये जन्मद्वितीयगे।
कवचं पठते नित्यं न पीडा जायते क्वचित्।।

अष्टम स्थान, व्यय स्थान, पत्रिका में प्रथम स्थान और द्वितीय स्थान शनि के लिए अशुभ है। जो भी वह इस पाठ को नित्य पढ़ता हैवह शनि के अशुभ प्रभाव से मुक्त हो जाता हैं।

इत्येतत्कवचं दिव्यं सौरेर्यनिर्मितं पुरा।
जन्मलग्नास्थितान्दोषान्सर्वान्नाशयते प्रभुः।।

यह शनि कवच बहुत ही पवित्र, आध्यात्मिक और प्राचीन है। जो भी मनुष्य सभी प्रकार के कष्टों से घिरा हुआ है, वह इस शनि कवच के नित्य पाठ करने से मुक्त हो जाता है।

2.10 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों!

शनि साढ़ेसाती एवं ढैय्या परिचय नामक इस इकाई में आपने शनि ग्रह की साढ़ेसाती कब-कब और किस प्रकार से प्रारंभ होती है। इन सभी का विचार किया गया है। शनि ग्रह की दशा में साढ़ेसाती का क्या-क्या प्रभाव होता है इसका कितना फल प्राप्त होगा। इन सभी बिंदुओं का अध्ययन आपने कर लिया होगा। संसार में जो भी मनुष्य जन्म लेता है, उसे ग्रह दशा के प्रभाव से गुजरना पड़ता है। चाहे ग्रह दशा हो या शनि साढ़ेसाती हो इन सभी से उस व्यक्ति को जूझना पड़ता है। अब हम शनि साढ़ेसाती के बारे में जानते है किसी भी जातक की कुंडली में जन्म राशि या चन्द्र राशि से पिछले भाव या आगे भाव तथा लग्न में शनि गोचर कर रहा हो तो साढ़ेसाती प्रारंभ होती है।जिस राशि से शनि चतुर्थ तथा अष्टम भाव में गोचर कर रहा हो वह शनि ग्रह की ढैय्या कहलाती है। ढैय्या साढ़ेसाती में फल भी विपरीत दिखाई देते रहते हैं। जिसका प्रभाव शुभ तथा अशुभ दोनो प्रकार से होता है।

2.11पारिभाषिक शब्दावली

मन्द शनि
साढ़ेसातीसाढे सात साल
न्यायाधीश शनि
कुंभ का स्वामी शनि
ढैय्याढाई साल
गोचरतात्कालिक ग्रह स्थिति
सूर्य सुतशनि

अभ्यास प्रश्न

1. नीला वर्ण किस ग्रह का है ?
2. शनि को अन्य किस नाम से भी जाना जाताहै ?
3. न्याय के देवता कौन है ?
4. आलस्य से युक्त ग्रह कौन सा है ?
5. साढ़ेसाती किसे कहते हैं ?

6. मकर का अधिपति है।
7. साढ़ेसाती कब प्रारंभ होती है ?
8. ढैय्या क्या है ?
9. शनि ग्रह शरीर में कहाँ निवास करता है ?
10. साढ़ेसाती कामेष राशि के प्रथम चरण पर कैसा फल पड़ेगा ?
11. द्वितीय चरण के किस राशि पर शुभ फल पड़ेगा ?
12. विपरीत शनि कौन सा फल देता है ?
13. साढ़ेसाती का उपाय किसके द्वारा करना चाहिए ?

2.12अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. शनि
2. मन्द ग्रह
3. शनि
4. मंद ग्रह
5. साढेसात साल तक जो ग्रह राशि पर अपना अधिकार जमाता हो
6. शनि
7. जब गोचर मैं शनि जहां बैठा हो उस राशि से आगे या पीछे वाली तीन राशियों पर साढ़ेसाती रहती हैं।
8. ढाई वर्ष
9. उदर,नेत्र,पाद एवं स्नायु मैं।
10. सम फल
11. वृष
12. नकारात्मक
13. कर्मकांड के द्वारा

2.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दशाफल दर्पण, लेखक श्री निवास शर्मा
2. फल दीपिका, लेखक आचार्य मंत्रेस्वर
3. ज्योतिष सर्वस्व
4. वृहत पाराशर होरा शास्त्र, लेखक ऋषि पाराशर

2.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. शनि ग्रह के स्वरूप का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।
2. साढ़ेसाती,ढैय्या, को समझाते हुए प्रकाश डालिए।
3. द्वादश राशियों पर शनि के प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।
4. साढ़ेसाती तथा ढैय्या फल को लिखिए।
5. शनि साढ़ेसाती,तथा ढैय्या के फल का विस्तृत विवेचन कीजिए।